२/१५

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रहः

भागः - २/२

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मनिरूपणम्

अन्तःकरणतद्वृत्तिद्रष्टृ नित्यमविक्रियम् ।
चैतन्यं यत्तदात्मेति बुद्ध्या बुध्यस्व सूक्ष्मया ॥ ४५८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्तःकरणतद्वृत्तिद्रष्टृ) अन्तःकरण और उसकी वृत्तियोंका द्रष्टा (नित्यम्) उत्पत्तिविनाशशून्य (अविक्रियम्) विकाररहित (यत्) जो (चैतन्यम्) चैतन्य है (तत्) वह (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (सूक्ष्मया) सूक्ष्म (बुद्ध्या) बुद्धिके द्वारा (बुध्यस्व) जान ॥ ४५८ ॥

भावार्थ-अन्तःकरण और अन्तःकरणकी वृत्तियोंका द्रष्टा (साक्षी) नित्य और विकारशून्य जो चैतन्य है वही आत्मा है, इस तत्त्व को तू अपनी सूक्ष्मबुद्धि से विचार कर समझ ॥ ४५८ ॥

एषः प्रत्यक्स्वप्रकाशो निरंशोऽसङ्गः शुद्धः सर्वदैकस्वभावः ।
नित्याखण्डानन्दरूपो निरीहः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (प्रत्यक्) व्यापक आत्मा (स्वप्रकाशः) स्वयंप्रकाशस्वरूप (निरंशः) निरवयव (असङ्गः) निःसंग (शुद्धः) निर्मल (सर्वदा) सदा (एकस्वभावः) एकस्वभाव (नित्याखण्डानंदरूपः) नित्य-अखण्ड-आनंदस्वरूप (निरीहः) निष्काम (साक्षी) उदासीन (चेताः) ज्ञानस्वरूप (केवलः) अद्वितीय (च) और (निर्गुणः) गुणोंके सम्पर्क से शून्य है ॥ ४५९ ॥

भावार्थ-यह आत्मा दूसरे प्रकाशकी अपेक्षा न रखने वाला, स्वयंप्रकाश निरवयव, निःसङ्ग, निर्मल, सर्वदा अद्वितीय, नित्य अखण्ड आनन्दस्वरूप निष्क्रिय साक्षी, ज्ञानमय, केवल और निर्गुण है ॥ ४५९ ॥

नैव प्रत्यग्जायते वर्द्धते नो किंचिन्नापक्षीयते नैति नाशम् ।
आत्मा नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो नासौ हन्यो हन्यमाने शरीरे ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रत्यक्) आत्मा (न-एव) निश्चय नहीं (जायते) जन्मता है (नो) नहीं (वर्धते) बढ़ता है (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं (अपक्षीयते) क्षीण होता है (नाशम्) नाशको (न) नहीं (एति) प्राप्त होता है (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा(नित्यः) अविनाशी (शाश्वतः) सदा काल

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रहनेवाला (पुराणः) पुरातन [अस्ति] है (असौ) यह (शरीरे) शरीरके (हन्यमाने) मारेजाने पर (न) नहीं (हन्यः) मारने योग्य [भवति] होता है ४६०

भावार्थ—यह आत्मा न जन्म लेता है, न घटता बढ़ता है, न कुछ परिणत होता है, न इसका नाश होता है, यह नित्य है, सदा वर्त्तमान रहता है और पुरातन है तथा शरीरका विनाश होने पर इसका नाश नहीं होता ॥ ४६० ॥

जन्मास्तित्वविवृद्धयः परिणतिश्चापक्षतिर्नाशनम्,
दृश्यस्यैव भवन्ति षड् विकृतयो नानाविधा व्याधयः ।
स्थूलत्वादि च नीलताद्यपि मितिर्वर्णाश्रमादिप्रथा,
दृश्यन्ते वपुषो न चात्मन इमे तद्विक्रियासाक्षिणः ॥ ४६१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(जन्मास्तित्वविवृद्धयः) जन्म, अस्तित्व और वृद्धि (परिणतिः) परिणाम (अपक्षतिः) ह्रास (च) और (नाशनम्) नाश [एताः] ये (षड्) छः (विकृतयः) विकार (च) और (नानाविधाः) नानाप्रकारके (व्याधयः) रोग (दृश्यस्य, एव) दृश्यको ही (भवन्ति) होते हैं (स्थूलत्वादि) स्थूलता आदि (च) और (नीलतादि) नीलपन आदि (अपि) और (वर्णाश्रमादिप्रथा) वर्ण आश्रम आदि की परिपाटी (इमे) ये (वपुषः) शरीरको (दृश्यन्ते) दीखते हैं (च) और (तद्विक्रियासाक्षिणः) उनके विकारोंके साक्षी (आत्मनः) आत्माके (न) नहीं [भवन्ति] होते हैं ॥ ४६१ ॥

भावार्थ—"जायते, अस्ति, वर्द्धते, परिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति" उत्पन्न होना, विद्यमान होना, बढ़ना, रूपान्तर होना, घटना और नष्ट होजाना ये छः भावविकार (जायमान पदार्थोंके विकार) और नानाप्रकारके रोग शरीर आदि दृश्य पदार्थोंके ही हुआ करते हैं, स्थूलता आदि, कृष्णता आदि, नाप तोल और वर्णाश्रम आदिकी परिपाटी ये सब शरीरोंमें ही देखनेमें आते हैं, देह आदिके परिणामोंके साक्षी आत्माके ये धर्म नहीं हैं ॥ ४६१ ॥

अस्मिन्नात्मन्यनात्मत्वमनात्मन्यात्मता पुनः ।
विपरीततयाऽध्यस्य संसरन्ति विमोहतः ॥ ४६२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(विमोहतः) मोहवश (अस्मिन्) इस (आत्मनि) आत्मामें (अनात्मत्वम्) अनात्माके धर्मोंको (पुनः) और (विपरीततया)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विपरीतभावसे (अनात्मनि) अनात्मामें (आत्मताम्) आत्माके धर्मोंको (अध्यस्य) आरोपण करके (संसरन्ति) जन्मते और मरते हैं ॥ ४६२ ॥

भावार्थ—प्राणी भ्रान्तिमें पड़कर (मोहवश) आत्मामें देह इन्द्रिय आदि अनात्मपदार्थोंके धर्मोंका और इससे विपरीत देह इन्द्रिय मन आदिमें आत्माके धर्मोंका अध्यास (आरोपण) करके जन्ममरणके प्रवाहमें गोते खाते रहते हैं ४६२

भ्रांत्या मनुष्योऽहमहं द्विजोऽहं तज्ज्ञोऽहमज्ञोऽहमतीव पापः ।
भ्रष्टोऽस्मि शिष्टोऽस्मि सुखी च दुःखीत्येवं विमुह्यात्मनि कल्पयन्ति॥

अन्वय और पदार्थ—[मूढाः] मूढ़ (भ्रान्त्या) भ्रान्तिके कारण (अहम्) मैं (मनुष्यः) मनुष्य हूँ (अहम्) मैं (द्विजः) द्विज हूँ (अहम्) मैं (तज्ज्ञः) इनका जानकार हूँ (अहम्) मैं (अज्ञः) अज्ञानी हूँ (अहम्) मैं (अतीव) अत्यंत ही (पापः) पापी हूं (भ्रष्टः) पतित (अस्मि) हूँ (शिष्टः) सज्जन (अस्मि) हूँ (सुखी) सुखयुक्त (च) और (दुःखी) दुःखयुक्त [अस्मि] हूं (इति) ये (एवम्) इस प्रकार (विमुह्य) मोहमें पड़ कर (आत्मनि) आत्मामें (कल्पयंति) कल्पनायें करते हैं ॥ ४६३ ॥

भावार्थ—मूढ़ प्राणी भ्रांतिमें पड़ कर मैं मनुष्य हूँ, मैं द्विज हूं मैं ज्ञानी हूं मैं अज्ञानी हूं, मैं पतित हूं, मैं योग्य हूं मैं सुखी हूं, और मैं दुःखी हूं, आत्मामें ऐसी २ कल्पनायें किया करते हैं ॥ ४६३ ॥

अनात्मनो जन्मजरामृतिक्षुधातृष्णासुखक्लेशभयादिधर्मान् ।
विपर्ययेण ह्यतथाविधेऽस्मिन्नारोपयन्त्यात्मनि बुद्धिदोषात्॥४६४

अन्वय और पदार्थ—[जनाः] लोग (बुद्धिदोषात्) बुद्धिके दोषसे (अतथाविधे) जो तैसा नहीं ऐसें (अस्मिन्) इस (आत्मनि) आत्मामें (अनात्मनः) अनात्माके (जन्मजरामृतिक्षुधातृष्णासुखक्लेशभयादिधर्मान्) जन्म, बुढ़ापा, मरण, भूख, प्यास, सुख, दुःख, भय आदि धर्मोंको (विपर्ययेण) विपरीतभावसे (आरोपयन्ति, हि) निश्चितरूपसे आरोपण करते हैं ॥ ४६४ ॥

भावार्थ—प्राणी भ्रान्तिवश, जो जन्म मरण आदि धर्मों वाला नहीं है उस आत्मामें देह इन्द्रियादि अनात्माके जन्म, जरा, मरण भूख, प्यास, सुख, क्लेश आदि धर्मोंका विपरीतभावसे आरोपण करते हैं ॥ ४६४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भ्रान्त्या यत्र यदध्यासस्तत्कृतेन गुणेन वा ।
दोषेणाप्यणुमात्रेण स न संबध्यते क्वचित् ॥ ४६५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भ्रांत्या) भ्रान्तिसे (यत्र) जहाँ (यदध्यासः) जिसका अध्यास होता है (तत्कृतेन) उस अध्यासके किये हुए (गुणेन) गुणसे (वा) वा (दोषेण) दोषसे (अणुमात्रेण) अणुमात्रसे (अपि) भी (सः) वह (क्वचित्) कहीं (न) नहीं (सम्बध्यते) सम्बन्ध पाता है ॥ ४६५ ॥

भावार्थ-भ्रान्तिसे जिस रज्जु आदिके कारणसे जिस सर्प आदिका अध्यास होता है, उस अध्यासके गुण वा दोषसे उस रज्जु आदिका अणुमात्र भी संबंध नहीं होता है ॥ ४६५ ॥

किं मरुन्मृगतृष्णाम्बुपूरेणार्द्रत्वमृच्छति ।
दृष्टि संस्थितपीतेन शङ्खः पीतायते किमु ॥ ४६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मरुत्) पवन (मृगतृष्णाम्बुपूरेण) मरुमरीचिकाके जलप्रवाहसे (आर्द्रत्वम्) गीलेपनको (किम्) क्या (ऋच्छति) पाता है (शङ्खः) शङ्ख (किमु) क्या (दृष्टिसंस्थितपीतेन) दृष्टिमें स्थित पीलेपनके द्वारा (पीतायते) पीला होजाता है ॥ ४६६ ॥

भावार्थ-क्या मरुमरीचिकाके जलसे वायु कभी गीला होसकता है ? कदापि नहीं होसकता। क्या नेत्रमें कमलवायुका पीलापन होनेसे शङ्ख पीला होजाता है ? कदापि नहीं होता ॥ ४६६ ॥

बालकल्पितनैल्येन व्योम किं मलिनायते ।
प्रत्यगात्मन्यविषयेऽनात्माध्यासः कथं प्रभो ॥ ४६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बालकल्पितनैल्येन) अज्ञानीकी कल्पना की हुई नीलतासे (किम्) क्या (व्योम) आकाश (मलिनायते) मलिन होजाता है (प्रभो) हे गुरो (अविषये) जो किसीका विषय नहीं ऐसे (प्रत्यगात्मनि) व्यापक आत्मामें (अनात्माध्यासः) अनात्माका अध्यास (कथम्) कैसे [भवति] होता है ॥ ४६७ ॥

भावार्थ-अज्ञानियोंके नीला नीला कहनेसे क्या आकाश नीला होजाता है ? शिष्यने प्रश्न किया, कि-हे प्रभो ! अविषय व्यापक आत्मामें देह इन्द्रियादि अनात्माका अध्यास कैसे होजाता है ? ॥ ४६७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पुरो दृष्टे हि विषयेऽध्यस्यन्ति विषयान्तरम् ।
तद् दृष्टं शुक्तिरज्ज्वादौ सादृश्याद्यनुबन्धतः ॥ ४६८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हि) क्योंकि [लोकाः] लोग (पुरः) सामने (दृष्टे) देखे हुए (विषये) विषयमें (विषयांतरम्) दूसरे विषयको (अध्यस्यन्ति) आरोपण करते हैं (तत्) वह (सादृश्याद्यनुबन्धतः) सदृशता आदिके कारणसे (शुक्तिरज्ज्वादौ) सीपी रस्सी आदिमें (दृष्टम्) देखा है ॥ ४६८ ॥

भावार्थ—लोग अपने आगे देखे हुए सीपी रस्सी आदि विषयमें रजत (चाँदी) सर्प आदि अन्य विषयका आरोप किया करते हैं, यह अध्यास सदृशता होनेके कारण सीपी रस्सी आदिमें देखनेमें आता है ॥ ४६८ ॥

परत्र पूर्वदृष्टस्यावभासः स्मृतिलक्षणः ।
अध्यासः स कथं स्वामिन् भवेदात्मन्यगोचरे ॥ ४६९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(स्वामिन्) हे प्रभो (परत्र) अन्य पदार्थमें (पूर्वदृष्टस्य) पहले देखे हुएका (अवभासः) ज्ञान (स्मृतिलक्षणः) स्मृतिरूप [अस्ति] है (सः) वह (अध्यासः) अध्यास (अगोचरे) अविषय (आत्मनि) आत्मामें (कथम्) कैसे (भवेत्) होगा ॥ ४६९ ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! अन्य पदार्थमें पहले देखे हुए पदार्थका अवभास (ज्ञान) स्मृतिरूप होता है, वह अध्यास अविषय आत्मामें कैसे हो सकता है ? ॥ ४६९ ॥

नानुभूतः कदाप्यात्माऽननुभूतस्य वस्तुनः ।
सादृश्यं सिध्यति कथमनात्मनि विलक्षणे ॥ ४७० ॥

अन्वय और पदार्थ—(आत्मा) आत्मा (कदापि) कभी भी (न) नहीं (अनुभूतः) जाना गया है (विलक्षणे) भिन्न रूप (अनात्मनि) अनात्मामें (सादृश्यम्) सदृशता (कथम्) कैसे (सिद्ध्यति) सिद्ध हो सकती है ॥ ४७० ॥

भावार्थ—आत्मा कभी भी अनुभूत (ज्ञात) नहीं होता । आत्मा तो शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वरूप है, उसकी अपनेसे सर्वथा भिन्न देह आदि अनात्मपदार्थमें तुल्यता कैसे दिखलायी जा सकती है ? ॥ ४७० ॥

अनात्मन्यात्मताध्यासः कथमेष समागतः ।
निवृत्तिः कथमेतस्य केनोपायेन सिध्यति ॥ ४७१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (अनात्मनि) आत्मभिन्न वस्तुमें (आत्मताध्यासः) आत्मभावका अध्यास (कथम्) कैसे (समागतः) आगया (एतस्य) इसकी (निवृत्तिः) हानि (केन) किस (उपायेन) उपायसे (कथम्) कैसे (सिद्धयति) सिद्ध होती है ॥ ४७१ ॥

भावार्थ-अनात्मा देह इन्द्रिय आदिमें यह आत्माका अध्यास कैसे आगया ? और यह किस उपायसे कैसे दूर होय? ॥४७१ ॥

उपाधियोग उभयोः सम एवेशजीवयोः ।
जीवस्यैव कथं बन्धो नेश्वरस्यास्ति तत्कथम् ॥ ४७२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ईशजीवयोः) ईश्वर और जीव (उभयोः) दोनोंको (उपाधियोगः) उपाधि का सम्बन्ध (समः एव) समान ही है [एवं सति] ऐसा होते हुए (बन्धः) बंधन (जीवस्य, एव) जीवको ही (कथम्) कैसे [भवति] होता है (तत्) वह (इतरस्य) दूसरेको (कथम्) कैसे (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ४७२ ॥

भावार्थ-जीवकी उपाधि अविद्या है और ईश्वरकी माया है, इस प्रकार जीव और ईश्वर दोनोंको ही उपाधिका संबन्ध एकसा है, ऐसा होते हुए भी जीवको ही उपाधिका बन्धन क्यों होता है, ईश्वरको वन्धन क्यों नहीं होता ? ॥ ४७२ ॥

एतत्सर्वं दयादृष्ट्या करामलकवत् स्फुटम् ।
प्रतिपादय सर्वज्ञ श्रीगुरो करुणानिधे ॥ ४७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वज्ञ) सबको जानने-वाले (करुणानिधे) दयासागर (श्रीगुरो) हे गुरुदेव (दयादृष्ट्या) दयाकी दृष्टि करके (एतत्) इस (सर्वम्) सबको (करामलकवत्) हाथमें धरे हुए आमलेकी समान (स्फुटम्) स्पष्ट (प्रतिपादय) वर्णन करिये ॥ ४७३ ॥

भावार्थ-हे इस सब तत्त्वको जानने वाले दयासागर गुरुदेव ! कृपादृष्टि कर के इस विषयका सब तत्त्व हाथमें धरे हुए आमलेके फलकी समान विशदरूपसे दरसा दीजिये ॥ ४७३ ॥

श्रीगुरुरुवाच

न सावयव एकस्य नात्मा विषय इष्यते ।
अस्यास्मत्प्रत्ययार्थत्वादपरोक्षाच्च सर्वशः ॥ ४७४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(श्रीगुरुः) श्रीगुरु (उवाच) बोले (आत्मा) आत्मा (सावयवः) अवयवों वाला (न) नहीं (एकस्य) अद्वितीय (अस्य) इसका (अस्मत्प्रत्ययार्थत्वात्) अहं ज्ञानका विषय होनेके कारणसे (सर्वशः) सर्व प्रकार (अपरोक्षात्, च) अपरोक्ष होनेसे भी (विषयः) विषय (न) नहीं (इष्यते) इष्ट होता है ॥ ४७४ ॥

भावार्थ-शिष्यके प्रश्नको सुन कर श्रीगुरुदेवने कहा, कि-आत्मा सावयव नहीं है और किसीका विषय भी नहीं होता है, क्योंकि—यह आत्मा अद्वितीय है, केवल अहंज्ञानका विषय है और सबको ही सब प्रकारसे प्रत्यक्ष होता है ४७४

प्रसिद्धिरात्मनोऽस्त्येव न कस्यापि च दृश्यते ।
प्रत्ययो नाहमस्मीति न ह्यस्ति प्रत्यगात्मनि ॥ ४७५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मनः) आत्माकी (प्रसिद्धिः) प्रथा (अस्ति, एव) है ही (च) और (अहम्) मैं (न) नहीं (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (प्रत्ययः) ज्ञान (कस्य, अपि) किसीको भी (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है (हि) क्योंकि (प्रत्यगात्मनि) व्यापक आत्मामें [तादृक् ज्ञानम्] तैसा ज्ञान (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ४७५ ॥

भावार्थ-सबको ही आत्माके विषयका ज्ञान है, मैं नहीं हूँ ऐसी प्रतीति किसी को भी नहीं होती, क्यों कि-सर्वत्र व्यापक आत्मामें ऐसा ज्ञान हो ही नहीं सकता

न कस्यापि स्वसद्भावे प्रमाणमभिकांक्ष्यते ।
प्रमाणानाञ्च प्रामाण्यं यन्मूलं किन्तु बोधयेत् ४७६

अन्वय और पदार्थ-(कस्य, अपि) किसीके भी (स्वसद्भावे) आत्माके सद्भावमें (प्रमाणम्) प्रमाण (न) नहीं (अभिकांक्ष्यते) चाहा जाता है (प्रमाणानाम्) प्रमाणोंकी (प्रामाण्यम्) प्रमाणता (यन्मूलम्) जिसके आधार पर है (किन्तु) परन्तु (बोधयेत्) जतादेगा ॥ ४७६ ॥

भावार्थ-अपने अस्तित्वके विषयमें किसीको भी किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होती है, जिसका अवलम्ब लेकर प्रमाणोंकी प्रमाणता सिद्ध होती है, उसके ज्ञानके लिये प्रमाणकी क्या आवश्यकता है ? परन्तु प्रमाण केवल वस्तुको जता देता है ॥ ४७६ ॥

मायाकार्यैस्तिरोभूतो नैव ह्यात्माऽनुभूयते ।
मेघवृन्दैर्यथा भानुस्तथाऽयमहमादिभिः ॥ ४७७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (मेघवृन्दैः) घनघटाओंके द्वारा (भानुः) सूर्य (तथा) तैसे (मायाकार्यैः) मायाके कार्य (अहमादिभिः) अहङ्कार आदि के द्वारा (तिरोभूतः) ढका हुआ (अयम्) यह (आत्मा) स्वस्वरूप (नैव) नहीं (अनुभूयते) अनुभवमें आता है ॥ ४७७ ॥

भावार्थ-जैसे घनघटाओंसे ढका हुआ सूर्य लोगोंके नेत्रोंका विषय नहीं होता, ऐसे ही मायाके कार्य अहङ्कार आदिसे ढका हुआ आत्मा लोगोंके अनुभवमें नहीं आता ॥ ४७७ ॥

पुरःस्थ एव विषये वस्तुन्यध्यस्यतामिति ।
नियमो न कृतः सद्भिर्भ्रान्तिरेवात्र कारणम् ॥ ४७८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सद्भिः) सज्जनों करके (पुरःस्थे) सामने स्थित (विषये) विषयरूप (वस्तुनि) वस्तुमें (अध्यस्यताम्) अध्यास होय (इति) इस प्रकार (नियमः) नियम (न) नहीं (कृतः) किया है (अत्र) इस विषय में (भ्रान्तिः, एव) भ्रान्ति ही (कारणम्) कारण है ॥ ४७८ ॥

भावार्थ-केवल सामने धरी हुई सीपी रज्जु आदि वस्तुमें ही अध्यास होगा, ऐसा कोई नियम शास्त्रके ज्ञाता विद्वानोंने नहीं किया है, इस अध्यासका कारण तो भ्रान्ति ही है ॥ ४७८ ॥

दृगाद्यविषये व्योम्नि नीलतादि यथाऽबुधः ।
अध्यस्यति तथैवाऽस्मिन्नात्मन्यपि मतिभ्रमात् ४७९

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (अबुधः) अज्ञानी (दृगाद्यविषये) चक्षु आदिके अगोचर (व्योम्नि) आकाशमें (नीलतादि) नीलेपन आदिको (अध्यस्यति) आरोपित करता है (तथा, एव) तैसे ही (मतिभ्रमात्) बुद्धि के दोषके कारणसे (अस्मिन्) इस (आत्मनि, अपि) आत्मामें भी (अध्यस्यति) आरोप करता है ॥ ४७९ ॥

भावार्थ-जैसे अज्ञानी पुरुष, नेत्र आदिसे प्रत्यक्ष न होने वाले आकाशमें नीलेपन आदिका आरोपण करते हैं, ऐसे ही भ्रान्तिरूप बुद्धिके दोषके कारणसे आत्मामें भी आरोप किया करते हैं ॥ ४७९ ॥

अनात्मन्यात्मताऽध्यासे न सादृश्यमपेक्षते ।
पीतोऽयं शङ्ख इत्यादौ सादृश्यं किमपेक्षितम् ॥ ४८० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(अनात्मनि) अनात्म वस्तुमें (आत्मताध्यासे) आत्मभावके अध्यासमें (सादृश्यम्) तुल्यताको (न) नहीं (अपेक्षते) अपेक्षा करता है (अयम्) यह (शङ्खः) शङ्ख (पीतः) पीला है (इत्यादौ) इत्यादि में (किम्) क्या (सादृश्यम्) तुल्यत्व (अपेक्षितम्) अपेक्षित होता है ४८०

भावार्थ-देह इन्द्रिय आदि अनात्म वस्तुओंमें आत्माका अध्यास होनेमें किसी प्रकारके सादृश्यकी अपेक्षा नहीं कीजाती। शङ्ख पीला है, इत्यादि स्थलोंमें क्या सादृश्यकी अपेक्षा करते हो ? ॥ ४८० ॥

निरुपाधिभ्रमेष्वस्मिन्नैवापेक्षा प्रदृश्यते ।
सोपाधिष्वेव तद् दृष्टं रज्जुसर्पभ्रमादिषु ॥ ४८१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्मिन्) इस संसारमें (निरुपाधिभ्रमेषु) उपाधि हीन भ्रान्तिस्थलोंमें [सादृश्यस्य] सादृश्यकी (अपेक्षा) अपेक्षा (नैव) निश्चय नहीं (प्रदृश्यते) देखनेमें आती है (सोपाधिषु) उपाधियुक्त (रज्जुसर्पभ्रमादिषु एव) रस्सी सर्प आदिके भ्रमस्थलोंमें ही (तत्) वह (दृष्टम्) देखा है ॥४८१॥

भावार्थ-उपाधिशून्य भ्रान्तिके स्थलमें सादृश्यकी अपेक्षा कभी देखनेमें नहीं आती, रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति होना इत्यादि उपाधियुक्त भ्रान्तिके स्थलोंमें ही सादृश्यकी अपेक्षा देखनेमें आती है। तात्पर्य यह है, कि-भ्रान्ति दो प्रकारकी होती है—सोपाधिक और निरुपाधिक। सीपीमें चाँदीकी और रस्सीमें सर्पकी इत्यादि सोपाधिक भ्रान्ति है और ब्रह्ममें जगत्के अध्यासको निरुपाधिक भ्रान्ति कहते हैं। सीपीमें जो चाँदीकी भ्रान्ति होती है वह चमकके कारणसे होती है, यह चमक ही उपाधि है परन्तु सर्वत्र सदृशता ही अध्यास का कारण होती है यह नहीं कहा जासकता, क्योंकि-जब शखमें पीलेपनकी भ्रान्ति होती है, उस समय कोई सदृशता नहीं होती, इसलिये भ्रान्ति ही अध्यासका कारण है, इस भ्रान्तिके कारणसे ही ब्रह्ममें जगत्का अध्यास होता है ॥ ४८१ ॥

तथापि किञ्चिद्वक्ष्यामि सादृश्यं शृणु तत्परम् ।
अत्यन्तनिर्मलः सूक्ष्म आत्माऽयमतिभास्वरः ॥४८२॥

अन्वय और पदार्थ-(तथापि) तो भी (किञ्चित्) कुछ (सादृश्यम्) सदृशताको (वक्ष्यामि) कहूँगा (तत्परः) सावधान [सन्] होता हुआ (शृणु) सुन (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (अत्यन्तनिर्मलः) अतिस्वच्छ (सूक्ष्मः) सूक्ष्म (अतिभास्वरः) अत्यन्त दीप्तिमान् (अस्ति) है ॥ ४८२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-यद्यपि निरुपाधि ब्रह्ममें सादृश्यकी अपेक्षा नहीं है, तथापि कुछ सादृश्य दिखानेका उद्योग करते हैं, हे शिष्य! सावधान होकर सुन—आत्मा अत्यन्त स्वच्छ, सूक्ष्म और अत्यन्त दीप्तिमान् है ॥ ४८२॥

बुद्धिस्तथैव सत्त्वात्मा साभासा भास्वराऽमला ।
सान्निध्यादात्मवद् भाति सूर्यवत्स्फटिको यथा ॥ ४८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तथैव) तैसे ही (बुद्धिः) अन्तःकरण (सत्त्वात्मा) सात्त्विक स्वभाव (साभासा) चैतन्यके प्रतिविम्वसे युक्त (भास्वरा) तेजयुक्त (अमला) स्वच्छ [अस्ति] है (यथा) जैसे (स्फटिकः) काँच (सूर्यवत्) सूर्यकी समान (भाति) प्रकाशित होता है (सान्निध्यात्) आत्माके अत्यन्त समीपता के कारण से [तद्वत्] तैसे ही [इयम्] यह [बुद्धिः, अपि] अन्तःकरण भी (आत्मवत्) आत्माकी समान (भाति) भासता है ॥ ४८३ ॥

भावार्थ-ऐसे ही बुद्धि भी सत्त्वगुणी स्वभाव वाली; चैतन्यके प्रतिविम्व से युक्त, दीप्त और मलिनतारहित है, जैसे काँच सूर्यकी समान चमकता है, ऐसे ही आत्माकी समीपताके कारणसे बुद्धि भी आत्माकी समान भासती है ॥ ४८३ ॥

आत्माभासा ततो बुद्धिर्बुद्ध्याभासं ततो मनः ।
अक्षाणि मनआभासान्यक्षाभासमिदं वपुः ॥
अत एवात्मताबुद्धिर्देहाक्षादावनात्मनि ॥ ४८४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (बुद्धिः) बुद्धि (आत्मभासा) आत्माकी समान भासने वाली है (ततः) तिससे (मनः) मन (बुद्ध्याभासम्) बुद्धिकी समान भासता है (अक्षाणि) इन्द्रियें (मनआभासानि) मनकी समान भासती है (इदम्) यह (वपुः) शरीर (अक्षाभासम्) इन्द्रियोंकी समान भासता है (अतएव) इस कारण ही (अनात्मनि) जो आत्मा नहीं है ऐसे (देहाक्षादौ) देह इन्द्रिय आदिमें (आत्मताबुद्धिः) आत्मत्वका ज्ञान (भवति) होता है ॥ ४८४ ॥

भावार्थ-अति समीपताके कारणसे और स्वच्छताके कारणसे बुद्धिरूप दर्पण में आत्माका प्रतिविम्व पड़ने पर बुद्धि आत्माकी समान भासने लगती है, आत्म-प्रतिविम्व युक्त बुद्धिकी समीपतासे मन बुद्धिसा भासने लगता है, मनकी अति समीपताके कारणसे इन्द्रिय मनसी भासने लगती है और उन इन्द्रियोंकी अति

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

समी पताके कारण शरीर इन्द्रियोंकी समान भासता है, इस कारणसे ही देह इन्द्रिय आदि अनात्मवस्तुओंमें आत्मतादात्म्यका अध्यास होता है ॥ ४८४ ॥

मूढानां प्रतिबिम्बादौ बालानामिव दृश्यते ।
सादृश्यं विद्यते बुद्धावात्मनोऽध्यासकारणम् ॥ ४८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बालानाम्) बालकोंको (प्रतिबिम्बादौ इव) प्रतिबिम्ब आदिमें जैसे (मूढानाम्) मूढोंको [अध्यासः] अध्यास (दृश्यते) दीखता है (बुद्धौ) बुद्धिमें (अध्यासकारणम्) अध्यासका कारण (आत्मनः) आत्मा की (सादृश्यम्) सदृशता (विद्यते) है ॥ ४८५ ॥

भावार्थ-जैसे बालकोंको प्रतिबिम्बको बिम्बकी समान ही समझते हुए देखते हैं, तैसे ही अज्ञानियोंको भी अनात्मा देह आदिमें आत्मबुद्धि देखते हुए, देखते हैं, बुद्धिमें भी अध्यासका कारण आत्माका सादृश्य विद्यमान है ॥४८५॥

अनात्मन्यहमित्येव योऽयमध्यास ईरितः ।
स्यादुत्तरोत्तराध्यासे पूर्वपूर्वस्तु कारणम् ॥ ४८६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनात्मनि) अनात्मामें (अहम्) मैं (इति, एव) इसप्रकारका ही (यः) जो (अयम्) यह (अध्यासः) अध्यास (ईरितः) कहा है (उत्तरोत्तराध्यासे) अगले २ अध्यासमें (पूर्वपूर्वः, तु) पहला २ ही (कारणम्) कारण (स्यात्) होगा ॥ ४८६ ॥

भावार्थ-अनात्मा देह इन्द्रिय आदिमें जो—मैं स्थूल हूँ, मैं कारण हूँ; मैं बहरा हूँ, इसप्रकारका अध्यास कहा है, उस अगले २ अध्यासमें पहला २ अध्यास ही कारण है, इसप्रकार अध्यास अनादि है ॥ ४८६ ॥

सुप्तिमूर्च्छोत्थितेष्वेव दृष्टः संसारलक्षणः ।
अनादिरेषाऽविद्याऽतः संस्कारोऽपि च तादृशः ॥ ४८७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुप्तमूर्च्छोत्थितेषु, एव) निद्रा और मूर्च्छासे उठेहुए प्राणियोंमें ही (संसारलक्षणः) संसारलक्षण (दृष्टः) देखागया है (अतः) इससे (एषा) यह (अविद्या) अविद्या (अनादिः) आदिशून्य है (च) और (संस्कारः, अपि) वासना भी (तादृशः) तैसी ही है ॥ ४८७ ॥

भावार्थ-निद्रा और मूर्च्छासे उठेहुए प्राणियोंमें ही संसाररूप अध्यास देखने में आता है, इसलिये ही यह अविद्या (अज्ञान) अनादि है और उसका संस्कार (वासना) भी अनादि है ॥ ४८७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अध्यासबाधागमनस्य कारणं शृणु प्रवक्ष्यामि समाहितात्मा ।
यस्मादिदं प्राप्तमनर्थजातं जन्माप्ययव्याधिजरादियुक्तम् ॥ ४८८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अध्यासबाधागमनस्य) अध्यासजनित दुःखके आनेके (कारणम्) हेतुको (प्रवक्ष्यामि) कहूंगा (समाहितात्मा) एकाग्रचित्त [सन्] होता हुआ (शृणु) सुन (यस्मात्) जिससे (इदम्) यह (जन्माप्ययव्याधिजरादियुक्तम्) जन्म मरण रोग बुढ़ापे आदिका से युक्त (अनर्थजातम्) अनर्थों का समूह (प्राप्तम्) पाया है ॥ ४८८ ॥

भावार्थ-मैं तुझे अध्याससे उत्पन्न होने वाले बाधा अर्थात् संसार दुःखका कारण बताता हूं, तू उसको सावधान होकर सुन—जिस अध्यासके कारणसे मनुष्य जन्म मरण रोग और बुढ़ापे आदिके दुःख रूप भाँति २ के अनर्थोंमें फँसा करते हैं ॥ ४८८ ॥

आत्मोपाधेरविद्याया अस्ति शक्तिद्वयं महत् ।
विक्षेप आवृतिश्चेति याभ्यां संसार आत्मनः ॥ ४८९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मोपाधेः) आत्माकी उपाधिरूप (अविद्यायाः) अविद्याकी (महत्) बड़ी भारी (शक्तिद्वयम्) दो शक्तियें (अस्ति) हैं (विक्षेपः) विक्षेप (च) और (आवृतिः) आवरण (इति) ये (याभ्याम्) जिनसे (आत्मनः) आत्माको (संसारः) संसार (भवति) होता है ॥४८९॥

भावार्थ-आत्माकी उपाधिजो अविद्या है, उसकी विक्षेप और आवरण ये दो बड़ीभारी शक्तियें हैं,इन दोनों शक्तियोंसे ही आत्माका संसारमें आगमन होता है ।

आवृतिस्तमसः शक्तिस्तद्ध्यावरणकारणम् ।
मूलाविद्येति सा प्रोक्ता यया संमोहितं जगत् ॥ ४९० ॥

अन्वय और पदार्थ-(आवृतिः) आवरण (तमसः) तमोगुणका (शक्तिः) धर्म है (तत्, हि) वह ही (आवरणकारणम्) आवरणका कारणहै (सा) वह (मूलाविद्या) मूल अविद्या (इति) इस नामसे (प्रोक्ता) कही है (यया) जिसके द्वारा (जगत्) संसार (संमोहितम्) महामोहको प्राप्त है ॥ ४९० ॥

भावार्थ-अविद्याकी सत्त्व रज और तम ये तीन शक्तियें (धर्म) हैं, इनमें तमोगुणका धर्म आवरण है, वही आत्मस्वरूपके आवरणका कारण होरहा है, उसको मूलाऽविद्या नामसे कहागया है और उसके कारण ही यह संसार महामोहमें पड़ा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

है। अविद्या दो प्रकारकी है—मूलाविद्या और तूलाविद्या। समष्टि अविद्याका नाम मूलाविद्या है और प्रत्येक जीवगत व्यष्टि अविद्याका नाम तूलाविद्या है। जिसको तत्त्वज्ञान होजाता है उसकी वह तूलाविद्या नष्ट होजाती है, इसलिये एक की मुक्ति होनेमें सबकी मुक्तिका प्रसंग नहीं आता ॥ ४६० ॥

विवेकवानप्यतियौक्तिकोऽपि, श्रुतात्मतत्त्वोऽपि च पण्डितोऽपि।
शक्त्या यया संवृतबोधदृष्टिरात्मानमात्मस्थमिदं न वेद ॥ ४६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विवेकवान्, अपि) विवेकवाला भी (अतियौक्तिकः, अपि) बड़ी २ युक्तियें जाननेवाला भी (श्रुतात्मतत्त्वः, अपि) आत्माके तत्त्व को सुननेवाला भी (च) और (पण्डितः, अपि) ज्ञानवान् भी (यया) जिस (शक्त्या) शक्ति करके (संवृतबोधदृष्टिः) जिसकी ज्ञानदृष्टि ढकगयी है वह (आत्मस्थम्) आत्मामें स्थित (आत्मानम्) आत्माको (न) नहीं (वेद) जानता है ॥ ४६१ ॥

भावार्थ आत्मा अनात्माके भेदको जाननेवाला विवेकी हो, चाहे युक्तियोंको जाननेवाला बड़ाभारी तार्किक हो, अथवा जिसने उत्तम रूपसे आत्माके स्वरूपको सुना हो ऐसा मनुष्य हो, और चाहे ज्ञानवान् पण्डित ही क्यों न हो, आवरण-शक्तिसे ज्ञानचक्षुके ढकजाने पर इनमेंसे कोईभी अपनेमें विद्यमान (स्वप्रतिष्ठ) आत्माको नहीं जान सकता ॥ ४६१ ॥

विक्षेपनाम्नी रजसस्तु शक्तिः
प्रवृत्तिहेतुः पुरुषस्य नित्यम्।
स्थूलादिलिङ्गान्तमशेषमेतद्
यया सदात्मन्यसदेव सूयते ॥ ४६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(रजसः) रजोगुणकी (विक्षेपनाम्नी) विक्षेप नाम वाली (शक्तिः, तु) शक्ति ही (पुरुषस्य) पुरुषकी (नित्यम्) निरन्तर (प्रवृत्तिहेतुः) प्रवृत्तिका कारण [भवति] होती है (यया) जिस शक्तिके द्वारा (आत्मनि) आत्मामें (एतद्) यह (स्थूलादिलिङ्गान्तम्) स्थूलसे लेकर बुद्धि-पर्यन्त (अशेषम्) सब (असत्, एव) मिथ्या वस्तु ही (सदा) सर्वदा (सूयते) उत्पादित होता है ॥ ४६२ ॥

भावार्थ रजोगुणकी विक्षेप नामवाली शक्ति निरन्तर पुरुषकी प्रवृत्ति

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कारण होती है, जो विक्षेप शक्ति सर्वदा आत्मामें घट पट देह आदि स्थूल वस्तुसे लेकर बुद्धि पर्यन्त सकल मिथ्या वस्तुओंको आरोपित करती है ॥ ४९२ ॥

निद्रा यथा पुरुषमप्रमत्तं,
समावृणोतीयमपि प्रतीचम्
तथाऽऽवृणोत्यावृतिशक्तिरन्त-
र्विक्षेपशक्तिं परिजृम्भयन्ती ॥ ४९३ ॥

अन्वय और पदार्थ (यथा) जैसे (निद्रा) सुषुप्ति (अप्रमत्तम्) सावधान (पुरुषम्) मनुष्यको (समावृणोति) ढकलेती है (तथा) तैसे ही । (विक्षेपशक्तिम्) विक्षेपशक्तिको (परिजृम्भयन्ती) बढ़ाती हुई (इयम्) यह (आवृतिशक्तिः, अपि) आवरण शक्ति भी (प्रतीचम्) जीवात्माको (आवृणोति) ढकलेती है ॥ ४९३ ॥

भावार्थ-जैसे निद्रा अत्यन्त सावधान मनुष्यको भी घेर कर मानो उसके ऊपर परदा डाल देती है, ऐसे ही आवरणशक्ति अन्तःकरणमें विक्षेप शक्तिको बढ़ाती हुई आत्माके ऊपर परदासा डाल देती है ॥ ४९३ ॥

शक्त्या महत्याऽऽवरणाभिधानया
समावृते सत्यमलस्वरूपे ।
पुमाननात्मन्यहमेष एवे-
त्यात्मत्वबुद्धिं विदधाति मोहात् ॥ ४९४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आवरणाभिधानया) आवरण नामवाली (महत्या) बड़ीभारी (शक्त्या) शक्ति करके (अमलस्वरूपे) स्वच्छस्वभाव [आत्मनि] आत्मा के (समावृते, सति) आवरण युक्त हो जाने पर (पुमान्) पुरुष (मोहात्) अज्ञानसे (अनात्मनि) अनात्मामें (एषः) यह (अहम्, एव) मैं ही [अस्मि] हूँ (इति) इस प्रकार (आत्मत्वबुद्धिम्) आत्मपनकी बुद्धिको (विदधाति) करता है ॥ ४९४ ॥

भावार्थ स्वच्छस्वभाव आत्माके ऊपर बड़ी भारी आवरण शक्तिके द्वारा परदासा पड़ जाने पर, पुरुष अज्ञानवश अनात्मा देह आदिमें 'यह मैं ही हूँ' ऐसा मान कर आत्मत्वका ज्ञान स्थापन कर बैठता है ॥ ४९४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा प्रसुप्तिप्रतिभासदेहे
स्वात्मत्वधीरेष तथा ह्यनात्मनः ।
जन्माप्ययक्षुद्भयतृट्श्रमादी-
न्यारोपयत्यात्मनि तस्य धर्मान् ॥ ४६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (प्रसुप्तिप्रतिभासदेहे) सुषुप्ति कालमें भासने वाले देहमें (स्वात्मत्वधीः) यही मेरा आत्मा है ऐसी बुद्धि [भवति] होती है (तथा, हि) तैसेही (एषः) यह पुरुष (तस्य) उस (अनात्मनः) अनात्माके (जन्माप्ययक्षुद्भयतृट्श्रमादीन्) जन्म मरण भूख भय प्यास थकावट आदि (धर्मान्) धर्मों को (आत्मनि) आत्मामें (आरोपयति) आरोपित करता है ॥ ४६५ ॥

भावार्थ-जैसे सुषुप्तिके समय भासने वाले देहमें यही मैं हूँ, ऐसा आत्मत्व ज्ञान होता है, तैसे ही मनुष्य आत्मामें जन्म मरण भूख भय प्यास और परिश्रम आदि अनात्माके धर्मोंका आरोपण कर लेता है ॥ ४६५ ॥

विक्षेपशक्त्या परिचोद्यमानः
करोति कर्माण्युभयात्मकानि ।
भुञ्जान एतत्फलमप्युपात्तं,
परिभ्रमत्येव भवाम्बुराशौ ॥ ४६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-[आत्मा] आत्मा (विक्षेपशक्त्या) विक्षेप शक्ति के द्वारा (परिचोद्यमानः) प्रेरणा किया हुआ (उभयात्मकानि) दोनों प्रकार के (कर्माणि) कर्मोंको (करोति) करता है (उपात्तम्) ग्रहण किये हुये (एतत्फलम्, अपि) इस कर्मके फलको भी (भुञ्जानः) भोगता हुआ (भवाम्बुराशौ) संसारसमुद्रमें (परिभ्रमति, एव) घूमता ही रहता है ॥ ४६६ ॥

भावार्थ-आत्मा विक्षेप शक्तिसे प्रेरित होकर भले और बुरे दोनों प्रकारके कर्मोंको करता है, और उस कर्मसे मिले हुए फलको भोगता हुआ इस संसार-सागरमें घूमा करता है ॥ ४६६ ॥

अध्यासदोषात्समुपागतोऽयम्
संसारबन्धः प्रबलः प्रतीचः ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यद्योगतः क्लिश्यति गर्भवास-
जन्माप्ययक्लेशभयैरजस्रम् ॥ ४६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अध्यासयोगात्) अध्यासके कारणसे (प्रत्यगात्मनः) बलवान् आत्मा को (अयम्) यह (संसारबन्धः) भवबन्धन (समुपागतः) प्राप्त हुआ है (यद्योगतः) जिसके सम्बन्धसे (गर्भवासजन्माप्ययक्लेशभयैः) गर्भवास जन्म मरण दुःख और भयके द्वारा (अजस्रम्) निरन्तर (क्लिश्यति) क्लेश पाता है ॥ ४६७ ॥

भावार्थ-अध्यासके दोपसे बलवान् (नित्य ज्ञानस्वरूप) आत्माको यह संसारबन्धन हुआ है, जिस अध्यासका सम्बन्ध होनेके कारण आत्मा गर्भमें निवास, जन्म, मरण दुःख और भय पाकर निरन्तर क्लेशका अनुभव करता है ॥

अध्यासो नाम खल्वेष वस्तुनो योऽन्यथाग्रहः ।
स्वाभाविकभ्रान्तिमूलं संसृतेरादिकारणम् ॥ ४६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वस्तुनः) वस्तुका (यः) जो (अन्यथाग्रहः) अन्यरूपसे ग्रहण है (एषः) यह (खलु) निश्चय (अध्यासः, नाम) अध्यास नाम का (स्वाभाविकभ्रान्तिमूलम्) स्वाभाविक भ्रमरूप हेतुवाला (संसृतेः) संसार का (आदिकारणम्) मूल कारण [अस्ति] है ॥ ४६८ ॥

भावार्थ-रज्जु आदि वस्तुके सर्पादि रूपसे ज्ञानको अध्यास कहते हैं, अनादि भ्रम ही इसका कारण है और यही संसारका मूल कारण है ॥ ४६८ ॥

सर्वानर्थस्य तद्बीजं योऽन्यथाग्रह आत्मनः ।
ततः संसारसम्पातः सततक्लेशलक्षणः ॥ ४६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मनः) आत्माका (यः) जो (अन्यथाग्रहः) अन्य प्रकारका ज्ञान है (तत्) वह (सर्वानर्थस्य) सकल अनर्थोंका (बीजम्) कारण है (ततः) उससे (सततक्लेशलक्षणः) सर्वदा क्लेशरूप (संसारसम्पातः) संसारकी प्राप्ति [भवति] होती है ॥ ४६९ ॥

भावार्थ-आत्माका अन्य प्रकारका (सुखी दुःखी रूपसे) जानना ही सकल अनर्थोंका कारण है, इस आत्माके अन्यथा ज्ञानसे सदा क्लेशरूप संसारकी प्राप्ति होती है ॥ ४६९ ॥

अध्यासादेव संसारो नष्टेऽध्यासे न दृश्यते ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तदेतदुभयं स्पष्टं पश्य त्वं बद्धमुक्तयोः ॥ ५०० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अध्यासात्, एव) अध्याससे ही (संसारः) संसार [भवति] होता है (अध्यासे) अध्यासके (नष्टे) नष्ट होजाने पर (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है (त्वम्) तू (बद्धमुक्तयोः) बद्ध और मुक्तके (तत्) उस (एतत्) इस (उभयम्) दोनोंको (स्पष्टम्) स्पष्ट (पश्य) देख॥५००॥

भावार्थ-अध्यासके कारणसे संसार है, अध्यासके नष्ट होजाने पर संसार देखनेमें नहीं आता, तू बद्ध और मुक्त दोनोंके संसार और असंसारको स्पष्ट देख ले ॥ ५०० ॥

बद्धं प्रवृत्तितो विद्धि मुक्तं विद्धि निवृत्तितः ।
प्रवृत्तिरेव संसारो निवृत्तिर्मुक्तिरिष्यते ॥ ५०१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रवृत्तितः) प्रवृत्तिमार्गसे (बद्धम्) बन्धनमें पड़ा हुआ (विद्धि) जान (निवृत्तितः) निवृत्तिमार्गसे (मुक्तम्) बन्धनसे छूटा हुआ (विद्धि) जान (प्रवृत्तिः, एव) प्रवृत्ति ही (संसारः) संसार है (निवृत्तिः) निवृत्ति (मुक्तिः) मुक्ति (इष्यते) मानी जाती है ॥ ५०१ ॥

भावार्थ-हे शिष्य ! तू समझ ले, कि-प्रवृत्तिसे जीव बन्धनमें पड़ता है और निवृत्तिसे मुक्ति पाता है, विद्वानोंका मत है, कि-कर्म करनेमें प्रवृत्ति (इच्छा) ही संसार (आवागमन) है और कर्म आदिसे निवृत्ति ही मुक्ति है ॥ ५०१ ॥

आत्मनः सोऽयमध्यासो मिथ्याज्ञानपुरःसरः ।
असत्कल्पोऽपि संसारं तनुते रज्जुसर्पवत् ॥ ५०२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मिथ्याज्ञानपुरः सरः) मिथ्याज्ञानपूर्वक (सः) वह (अयम्) यह (अध्यासः) अध्यास (रज्जुसर्पवत्) रस्सीके सर्पकी समान (असत्कल्पः, अपि) मिथ्या होकर भी (आत्मनः) आत्माके (संसारम्) संसारको (तनुते) फैलाता है ॥ ५०२ ॥

भावार्थ-अध्यासका आदिकारण मिथ्याज्ञान है, वह अध्यास रज्जुमें भासमान सर्पकी समान मिथ्या होने पर भी आत्माके आवागमनरूप संसारका विस्तार कर देता है ॥ ५०२ ॥

उपाधियोगसाम्येऽपि जीववत्परमात्मनः ।
उपाधिभेदान्नो बन्धस्तत्कार्यमपि किञ्चन ॥ ५०३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ—(जीववत्) जीवकी समान (परमात्मनः) परमात्मा का (उपाधियोगसाम्ये, अपि) उपाधिका संवन्ध समान होने पर भी (उपाधि-भेदात्) उपाधिमें भेद होनेसे (वन्धः) वन्धन (तत्कार्यम्, अपि) उसका कार्य भी (किञ्चन) कुछ (नो) नहीं है ॥ ५०३ ॥

भावार्थ—जीवकी समान ही परमात्माको भी उपाधिका संवन्ध है, परन्तु तो भी परमात्माकी उपाधि शुद्ध सत्त्वप्रधान माया है और जीवकी उपाधि मलिन सत्त्वप्रधान अविद्या है, इस उपाधिके भेदसे परमात्माको वन्धन या वन्धनका कार्य दुःखका अनुभव आदि कुछ नहीं होता है ॥ ५०३ ॥

अस्योपाधिः शुद्धसत्त्वप्रधाना
माया यत्र त्वस्य नास्त्यल्पभावः ।
सत्त्वस्यैवोत्कृष्टता तेन वन्धो
नो विक्षेपस्तत्कृतो लेशमात्रः ॥ ५०४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(शुद्धसत्त्वप्रधाना) जिसमें शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान है ऐसी (माया) माया (उपाधिः) उपाधि है (तु) और (यत्र) जिसमें (अल्पभावः) परिच्छिन्नभाव (न) नहीं (अस्ति) है (सत्त्वस्य) सत्त्वगुणकी (एव) ही (उत्कृष्टता) उत्तमता [अस्ति] है (तेन) तिससे (विक्षेपः) विक्षेप (तत्कृतः) उसका किया हुआ (वन्धः) वन्धन (लेशमात्रः) लेशमात्र (नो) नहीं [अस्ति] है ॥ ५०४ ॥

भावार्थ—जीव और ईश्वरको उपाधिका सवन्ध समान होनेपर भी जो जीवको वन्धन होता है और ईश्वरको वन्धन नहीं होता, इसका कारण यह है, कि— केवल सत्त्वगुण प्रधान माया ही जिसकी उपाधि है और जिसमें परिच्छिन्न भाव नहीं है तथा जिसमें सत्त्वगुणकी उत्कृष्टता देखनेमें आती है, उस ईश्वरमें विक्षेप या उस विक्षेपके कारणसे होनेवाला वन्धन आदि कुछ भी नहीं होता है ५०४

सर्वज्ञोऽप्रतिवद्धवोधविभवस्तेनैव देवः स्वयं,
मायां स्वामवलम्ब्य निश्चलतया स्वच्छन्दवृत्तिः प्रभुः ।
सृष्टिस्थित्यदनप्रवेशयमनव्यापारमात्रेच्छया,
कुर्वन् क्रीडति तद्रजस्तम उभे संस्तभ्य शक्त्या स्वया ५०५

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(सर्वज्ञः) सब विषयोंके ज्ञान वाला (अप्रतिरुद्धबोध विभवः) जिसके ज्ञानरूप ऐश्वर्यमें कुछ रुकावट नहीं है, ऐसा ;(देवः) ईश्वर (तेन, एव) तिस कारणसे ही (स्वयम्) अपने आप (निश्चलतया) व्यापार शून्य होनेके कारण (स्वाम्) अपनी (मायाम्) मायाको (अवलम्ब्य) अवलम्बन करके (स्वच्छन्दवृत्तिः) अपने अभिप्रायके अनुसार स्थितिको पाने वाला (प्रभुः) सर्वसमर्थ [सन्] होता हुआ (सृष्टिस्थित्यदनप्रवेशयमनव्यापारमात्रेच्छया) सृष्टि स्थिति प्रलय प्रवेश और नियममें रखनेके व्यापारमात्रकी इच्छासे (स्वया) अपनी (शक्त्या) शक्तिके द्वारा (तत्) उस (रजः) रजोगुण (तमः) तमोगुण (उभे) दोनोंको (संस्तभ्य) रोक कर (कुर्वन्) सृष्टि आदि करता हुआ (क्रीडति) क्रीड़ा करता है ॥ ५०५ ॥

भावार्थ-जो सर्वज्ञ है और जिसके ज्ञानरूप ऐश्वर्यमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं है वही परमेश्वर स्वयं व्यापाररहित होकर भी अपनी मायाका अवलम्बन करता हुआ स्वच्छन्द भावसे विराजमान है और सब कुछ कर सकने वाला प्रभु है तथा सृष्टि, पालन, प्रलय, प्रवेश और नियममें रखनेके व्यापारमात्रकी इच्छासे अपनी शक्तिके द्वारा रज और तम इन दोनों गुणोंको दबा कर सृष्टि स्थिति आदि सब कार्योंको करता हुआ लीला करता रहता है ॥ ५०५ ॥

तस्मादावृत्तिविक्षेपौ किञ्चित्कर्तुं न शक्नुतः ।
स्वयमेव स्वतंत्रोऽसौ तत्प्रवृत्तिनिरोधयोः ॥ ५०६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (आवृत्तिविक्षेपौ) आवरण और विक्षेप (किञ्चित्) कुछ (कर्तुम्) करनेको (न) नहीं (शक्नुतः) समर्थ होते हैं (असौ) वह (स्वयम्, एव) आप ही (तत्प्रवृत्तिनिरोधयोः) उनकी प्रवृत्ति और निवृत्तिमें (स्वतंत्रः) स्वतंत्र है ॥ ५०६ ॥

भावार्थ-इसलिये आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति ईश्वरमें अपना कुछ भी प्रभाव नहीं कर सकतीं, किन्तु ईश्वर ही इन दोनों शक्तियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिके विषयमें स्वतंत्र है ॥ ५०६ ॥

तमेव सा धीकर्मेति श्रुतिर्वक्ति महेशितुः ।
निग्रहानुग्रहे शक्तिरावृत्तिक्षेपयोर्यतः ॥ ५०७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा) वह (श्रुतिः) वेद (तम्, एव) उसको ही

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(धीकर्मा, इति) बुद्धिकर्मा इस नामसे (वक्ति) कहता है (यतः) क्योंकि (महेशितुः) महेश्वरको (आवृतिविक्षेपयोः) आवरण और विक्षेपकी (निग्रहानुग्रहे) प्रवृत्ति और निवृत्ति के विषयमें (शक्तिः) सामर्थ्य [अस्ति] है ५०७

भावार्थ-क्योंकि-महेश्वरमें आवरणशक्ति और विक्षेप शक्तिकी प्रवृत्ति और निवृत्ति करनेकी शक्ति है अर्थात् वह चाहे तो इन शक्तियोंको काम करने देय और न चाहे तो न करने देय, इसलिये ही श्रुतिने उसका 'धी कर्मा' नाम कहा है ५०७

रजसस्तमसश्चैव प्राबल्यं सत्त्वहानतः ।
जीवोपाधौ तथा जीवे तत्कार्यं बलवत्तरम् ॥ ५०८ ॥

अन्वय और पदार्थ (जीवोपाधौ) जीवकी उपाधिमें (तथा) तैसे ही (जीवे) जीवमें (सत्त्वहानतः) सत्त्व गुणका अभाव होनेसे (रजसः) रजकी (च) और (तमसः, एव) तमकी भी (प्राबल्यम्) प्रबलता [भवति] होती है (तत्कार्यम्) उनका काम (बलवत्तरम्) अधिक बलवान् (दृश्यते) दीखता है ॥५०८॥

भावार्थ-जीवकी उपाधिरूप मलिन सत्त्वप्रधान अविद्यामें और देह आदिके अभिमानी जीवमें सत्त्वगुणकी कमी होनेसे रजोगुण और तमोगुणकी प्रबलता होती है तथा इन दोनों गुणोंका कार्य भी अधिकतासे देखने में आता है ॥५०८॥

तेन बन्धोऽस्य जीवस्य संसारोऽपि च तत्कृतः ।
संप्राप्तः सर्वदा यत्र दुःखं भूयः स ईक्षते ॥ ५०९ ॥

अन्वय और पदार्थ (तेन) तिससे (अस्य) इस (जीवस्य) जीवको (बन्धः) बन्धन (च) और (तत्कृतः) उसका किया हुआ (संसारः ,अपि) संसार भी (सर्वदा) सब समय (संप्राप्तः) प्राप्त होता है (यत्र) जिसमें (सः) वह (भूयः) वार २ (दुःखम्) दुःखको (ईक्षते) देखता है ॥ ५०९ ॥

भावार्थ-जीवमें इस रजोगुण तमोगुणकी प्रबलतासे ही जीवको बन्धन और बन्धनसे सदा आवागमन होता है, और इस अवस्थामें जीव वारम्वार दुःखका अनुभव करता है ॥ ५०९ ॥

एतस्य संसृतेर्हेतुरध्यासोऽर्थविपर्ययः ।
अध्यासमूलमज्ञानमाहुरावृतिलक्षणम् ॥ ५१० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अर्थविपर्ययः) पदार्थका अन्यथाभाव रूप (अध्यासः) अध्यास (एतस्य) इसके (संसृतेः) संसारका (हेतुः) कारण है [पण्डिताः]

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ।
कर्मणः कार्यमेवैषा जन्तुमृत्युपरम्परा ॥ ५१२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जन्तुः) प्राणी (कर्मणा) कर्मके द्वारा (जायते) जन्म लेता है (कर्मणा, एव) कर्मके द्वारा ही (प्रलीयते ; नष्ट होता है (एषा) यह (जन्ममृत्युपरम्परा) उत्पत्ति नाशका प्रवाह (कर्मणः, एव) कर्मका ही (कार्यम्) फल है ॥ ५१२ ॥

भावार्थ-जीव कर्मके अनुसार ही जन्मता है और कर्मके अनुसार ही मरता है, यह जन्म मरणका प्रवाह कर्म का ही फल है ॥ ५१२ ॥

नैतस्मात्कर्मणः कार्यमन्यदस्ति विलक्षणम् ।
अज्ञानकार्यं तत्कर्म यतोऽज्ञानेन वर्धते ॥ ५१३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कर्मणः) कर्मके (एतस्मात्) इससे (विलक्षणम्) विलक्षण (अन्यत्) और (कार्यम्) कार्य (न) नहीं अस्ति है (यतः) क्योंकि (तत्) वह (कर्म) कर्म (अज्ञानकार्यम्) अज्ञानका कार्य है (अज्ञानेन) अज्ञान के द्वारा (वर्धते) बढ़ता है ॥ ५१३ ॥

भावार्थ जन्म मरणके प्रवाहके सिवाय कर्मका और कोई विलक्षण (मुक्ति) फल नहीं है क्यों कि कर्म अज्ञानका कार्य है और अज्ञानसे ही बढ़ता है ॥ ५१३ ॥

यद्येन वर्धते तेन नाशस्तस्य न सिध्यति ।
येन यस्य सहावस्था विरोधाय न कल्पते ॥ ५१४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यद्) जो वस्तु (येन) जिसके द्वारा (वर्धते) बढ़ती है (तेन) उस के द्वारा (तस्य) उसका (नाशः) नाश : न ; नहीं (सिध्यति) सम्पादित होता है (येन) जिसके साथ (यस्य) जिसकी (सहावस्था) साथ स्थिति [भवति] होती है [तत्] वह [तस्य] उसके (विरोधाय) विरोधके लिये (न) नहीं (कल्पते) सिद्ध होता है ॥ ५१४ ॥

भावार्थ जो वस्तु जिससे बढ़ती है, उसके द्वारा उसका नाश नहीं होता, जो वस्तु जिसके साथ एकत्र रहती वह उसकी निवर्तक नहीं होती । तात्पर्य यह है, कि कर्मकी उत्पत्ति अज्ञानसे होती है । नित्य-शुद्ध बुद्धस्वरूप आत्मामें ब्राह्मणत्व आदि धर्मका आरोप करके पुरुष ब्राह्मण आदिके लिये विधान किये हुए कर्मोंको करने लगता है, इसलिये अज्ञान ही कर्म का कारण है । अज्ञानसे कर्म बढ़ता है

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जब कर्म अज्ञानजन्य है और अज्ञानसे बढ़ता है तो फिर वह कर्म अज्ञानका निवर्त्तक कैसे हो सकता है ? संसारमें देखते हैं, कि—जो जिससे जन्मता है, या बढ़ता है, वह उसका नाशक नहीं होता। एक बात और भी है, कि—जो जिसके साथ एकत्र रहता है, वह उसका नाश्य या नाशक नहीं हो सकता। प्रकाश अन्धकारका नाशक है, इसलिये वे दोनों एकत्र नहीं रह सकते, परन्तु कर्म और अज्ञान एकत्र रहते हैं इसलिये इन दोनोंमें नाश्य नाशक भाव नहीं है, किन्तु एकमात्र ज्ञान ही अज्ञान का नाशक है ॥ ५१४ ॥

नाशकत्वं तदुभयोः को नु कल्पयितुं क्षमः ।
सर्वं कर्माविरोध्येव सदा ज्ञानस्य सर्वदा ॥ ५१५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(कः, नु) कौन (तदुभयोः) उन दोनोंके (नाशकत्वम्) नाशकपनेको (कल्पयितुम्) कल्पना करने को (क्षमः) समर्थ है (सर्वम्) सब (कर्म) कर्म (सदा) सब समय (अज्ञानस्य) अज्ञानका (सर्वदा) नियत रूपसे (अविरोध एव) विरोध न करने वाला ही है ॥ ५१५ ॥

भावार्थ—कर्म और अज्ञान इन दोनोंमें कर्म अज्ञानका नाश कर देगा, इसकी कल्पना भी कौन कर सकता है ? किसी समय भी अज्ञानके साथ कर्मका विरोध देखने में नहीं आता ॥ ५१५ ॥

ततोऽज्ञानस्य विच्छित्तिः कर्मणा नैव सिध्यति ।
यस्य प्रध्वंसजनको यत्संयोगोऽस्ति तत्क्षणे ॥ ५१६ ॥
तयोरेव विरोधित्वं युक्तं भिन्नस्वभावयोः ।
तमःप्रकाशयोर्यद्वत् परस्परविरोधिता ॥ ५१७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ततः) तिससे (कर्मणा) कर्मके द्वारा (अज्ञानस्य) अज्ञानका (विच्छित्तिः) नाश (नैव) कदापि नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है (तत्क्षणे) उस क्षणमें (यत्संयोगः) जिसका संयोग (यस्य) जिसका (प्रध्वंसजनकः) नाशका कारण (अस्ति) है (भिन्नस्वभावयोः) पृथक् २ स्वभाव वाले (तयोः, एव) उन दोनोंका ही (विरोधित्वम्) विरोधिपना (युक्तम्) उचित है (यद्वत्) जैसे (तमःप्रकाशयोः) अन्धकार और प्रकाशका (परस्परविरोधिता) आपसमें विरोधीपन [अस्ति] है ॥ ५१६ ॥ ५१७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-इसलिये कर्मसे अज्ञानका नाश नहीं हो सकता, उस क्षणमें जिस ज्ञान का संयोग कर्मके नाशका हेतु है, उन ज्ञान कर्म दोनोंका ही विरोध होना उचित है, जैसे कि—अन्धकार और प्रकाशमें परस्पर विरोध देखते हैं। तात्पर्य यह है कि—हम ऐसी एक सामान्य व्याप्ति (नियम) देखते हैं, कि—समान काल में जिसका संयोग जिसके नाशका कारण होता है मनमें परस्पर विरोध देखने में आता है, जैसे कि—प्रकाश और अन्धकार का। प्रकाश और अन्धकार परस्पर विरुद्ध पदार्थ हैं, जिस समय प्रकाशका संयोग होता है, उस समय अन्धकारका विध्वंस होजाता है, इसलिये प्रकाश अन्धकारके नाशका कारण है, इसलिये प्रकाश और अन्धकारमें परस्पर विरुद्धता विद्यमान है, ऐसे ही जब ज्ञानका सम्बन्ध होता है, तब अज्ञानका नाश होता है, अतः ज्ञान अज्ञानके नाशका कारण है ॥५१७॥

अज्ञानज्ञानयोस्तद्वदुभयोरेव दृश्यते।
न ज्ञानेन विना नाशस्तस्य केनापि सिध्यति ॥ ५१८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तद्वत्) तैसेही (उभयोः) दोनों (अज्ञानज्ञानयोः) अज्ञान ज्ञानका (एव) ही [विरोधः] विरोध (दृश्यते) दीखता है (ज्ञानेन, विना) ज्ञानके सिवाय (तस्य) उसका (नाशः) नाश (केन, अपि) किसी से भी (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ५१८ ॥

भावार्थ-अन्धकार और प्रकाशकी समान अज्ञान और ज्ञान इन दोनोंका भी परस्पर विरोध देखने में आता है, ज्ञानके सिवाय किसीसे भी अज्ञानका नाश नहीं हो सकता ॥ ५१८ ॥

तस्मादज्ञानविच्छित्त्यै ज्ञानं सम्पादयेत्सुधीः।
आत्मानात्मविवेकेन ज्ञानं सिध्यति नान्यथा ॥ ५१९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (सुधीः) बुद्धिमान् (अज्ञानविच्छित्त्यै) अविद्याके नाशके लिये (ज्ञानम्) ज्ञान को (सम्पादयेत्) प्राप्त करे (आत्मानात्मविवेकेन) आत्मा और अनात्माके विवेकके द्वारा (ज्ञानम्) ज्ञान (सिध्यति) सिद्ध होता है (अन्यथा) और प्रकारसे (न) नहीं ॥ ५१९ ॥

भावार्थ-इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य अज्ञानके नाशके लिये ज्ञान को प्राप्त करे, वह तत्त्वज्ञान आत्मा और अनात्मपदार्थके भेद ज्ञानसे उत्पन्न होता है, और किसी प्रकारसे नहीं ॥ ५१९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

युक्त्यात्मानात्मनोस्तस्मात्करणीयं विवेचनम् ।
अनात्मन्यात्मताबुद्धिग्रन्थिर्येन विदीर्यते ॥ ५२० ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (युक्त्या) युक्तिके द्वारा (आत्मानात्मनोः) आत्मा और अनात्माका (विवेचनम्) विवेक (करणीयम्) करना चाहिये (येन) जिससे (अनात्मनि) अनात्मामें (आत्मबुद्धिग्रन्थि) आत्मज्ञान रूप गाँठ (विदीर्यते) खुल जाती है ॥ ५२० ॥

भावार्थ-इसलिये उस तत्त्वज्ञानको पानेके निमित्त युक्तिके द्वारा आत्मा और अनात्मा (देह आदि) का विवेक करना चाहिये, जिस विवेकके द्वारा अनात्मा देह आदिमें आत्मबुद्धि रूप गाँठ पड़ रही है, वह गाँठ खुल जाती है ॥ ५२० ॥

आत्मानात्मविवेकार्थं विवादोऽयं निरूप्यते ।
येनात्मानात्मनोस्तत्त्वं विविक्तं प्रस्फुटायते ॥ ५२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मानात्मविवेकार्थम्) आत्मा और अनात्माके विवेकके लिये (अयम्) यह विवादः) विवाद (निरूप्यते) निरूपण किया जाता है (येन) जिसके द्वारा (आत्मानात्मनोः) आत्मा और अनात्माका (तत्त्वम्) यथार्थ स्वरूप (विविक्तम्) पृथक् २ (प्रस्फुटायते) स्पष्ट होता हैं ॥

भावार्थ-आत्मा और अनात्मा देहादिका विवेक होनेके लिये वादिप्रतिवादियोंके विवादको दिखाते हैं, कि—जिस विवादसे आत्मा और अनात्माका यथार्थ स्वरूप पृथक् २ प्रकट होजाता है ॥ ५२१ ॥

मूढा अश्रुतवेदान्ताः स्वयं पण्डितमानिनः ।
ईशप्रसादरहिताः सद्गुरोश्च बहिर्मुखाः ॥ ५२२ ॥
विवदन्ति प्रकारं तं शृणु वक्ष्यामि सादरम् ।

अन्वय और पदार्थ-(अश्रुतवेदान्ताः) जिन्होंने वेदान्तको नहीं सुना है वे (स्वयम्) आपही (पण्डितमानिनः) पण्डित माननेवाले (ईशप्रसादरहिताः) ईश्वरके अनुग्रहसे शून्य (च) और (सद्गुरोः) श्रेष्ठ गुरुसे (बहिर्मुखाः) पलटे हुए (मूढाः) मूढ पुरुष (विवदन्ति) विवाद करते हैं (तम्) उस (प्रकारम्) रीतिको (वक्ष्यामि) कहूँगा (सादरम्) आदरकेसाथ (शृणु) सुन ॥ ५२२ ॥

भावार्थ-जिन्होंने वेदान्त शास्त्र को नहीं सुना, जो आपही अपनेको बड़ा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बुद्धिमान् समझते हैं, जिनके ऊपर ईश्वरका अनुग्रह नहीं है, और जिन्होंने श्रेष्ठ गुरुकी सेवा नहीं की है, ऐसे मूढ़ पुरुष आत्माके विषयमें जैसा वाद विवाद करते हैं, वह रीति मैं सुनाता हूँ आदरके साथ सुन ॥ ५२२ ॥

पुत्रात्मवादः ।

अत्यन्तपामरः कश्चित्पुत्र आत्मेति मन्यते ॥ ५२३ ॥
आत्मनीव स्वपुत्रेऽपि प्रबलप्रीतिदर्शनात् ।
पुत्रे तु पुष्टे पुष्टोऽहं नष्टे नष्टोऽहमित्यतः ॥ ५२४ ॥
अनुभूतिबलाच्चापि युक्तितोऽपि श्रुतेरपि ।
आत्मा वै पुत्रनामास्तीत्येवं च वदति श्रुतिः ॥ ५२५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कश्चित्) कोई (अत्यन्तपामरः) अति मूढ़ (आत्मनि, इव) अपने आत्मामें जैसे (स्वपुत्रे, अपि) अपने पुत्रमें भी (प्रबलप्रीतिदर्शनात्) प्रबल प्रीति दीखनेसे (तु) और (पुत्रे, पुष्टे) पुत्रके पुष्ट होने पर (अहम्) मैं (पुष्टः) पुष्ट होगया (नष्टे) मरने (अहम्) मैं (नष्टः) मर गया (इत्यतः) ऐसा माननेके कारण (च) और (अनुभूतिबलात्, अपि) अनुभवके बलसे भी (युक्तितः, अपि) युक्तिसे भी (च) और (वै) निश्चय (पुत्रनामा) पुत्र नाम वाला (आत्मा) आत्मा (अस्ति) है (एवम्) ऐसा (श्रुतिः) श्रुति (वदति) कहती है (इति) इस कारण (श्रुतेः, अपि) वेदके प्रमाणसे भी (पुत्रः) पुत्र (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (मन्यते) मानता है ॥ ५२३—५२५ ॥

भावार्थ कोई अत्यन्त मूढ़ पुरुष अपने आत्माकी समान पुत्रमें भी प्रबल प्रीति देखकर ऐसा मानता है कि—पुत्रके पुष्ट होने पर मैं पुष्ट हो गया, पुत्रके नष्ट होने पर मैं नष्ट होगया ऐसा भाव हुआ करता है, इस कारणसे, इस अनुभव से, युक्तिसे श्रुति कहती है कि—पुत्र नाम वाला आत्मा है, इस वेदके प्रमाणसे भी पुत्रको ही आत्मा मानता है ॥ ५२३ ॥ ५२४ ॥ ५२५ ॥

दीपाद्दीपो यथा तद्वत्पितुः पुत्रः प्रजायते ।
पितुर्गुणानां तनये बीजांकुरवदीक्षणात् ॥ ५२६ ॥
अतोऽयं पुत्र आत्मेति मन्यते भ्रान्तिगह्वरः ।

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (दीपात्) दीपक से (दीपः) दीपक [प्रज्वाल्यते] प्रकाशित किया जाता है (तद्वत्) तैसे ही (पितुः) पितासे (पुत्रः) पुत्र (प्रजायते) उत्पन्न होता है (तनये) पुत्रमें (पितुः) पिताके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(गुणानाम्) गुणोंके (बीजांकुरवत्) बीजके गुण अंकुरमें दीखने को समान (ईक्षणात्) देखने से (अतः) इससे (अयम्) यह (पुत्रः) पुत्र (आत्मा) आत्मा [अस्ति] है (इति) ऐसा (भ्रान्तिमत्तमः) अत्यन्त भ्रान्तिमें पड़ा हुआ मनुष्य (मन्यते) मानता है ॥ ५२६ ॥

भावार्थ जैसे एक दीपकसे दूसरा दीपक प्रज्वलित कर लिया जाता है, ऐसे ही पितासे पुत्र भी उत्पन्न हो जाता है, जैसे अंकुरमें बीजके गुण देखनेमें आते हैं, ऐसे ही पुत्रमें पिताके गुण देखे जाते हैं इस कारणसे अत्यन्त भ्रान्ति में पड़ा हुआ मूढ़ मनुष्य मानता है कि—पुत्र ही आत्मा है ॥ ५२६ ॥

देहात्मवादः

तन्मतं दूषयत्यन्यः पुत्र आत्मा कथन्त्विति ॥ ५२७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्यः, तु) दूसरा तो (पुत्रः) पुत्र (कथम्) कैसे (आत्मा) आत्मा [भवितुम्, अर्हति] हो सकता है (इति) इस प्रकार (तन्मतम्) उसके मतको (दूषयति) दूषित करता है ॥ ५२७ ॥

भावार्थ-परन्तु दूसरा वादी कहता है, कि—पुत्र आत्मा कैसे हो सकता है ? और वह पुत्रात्मोवादी के मतमें दोष दिखलाता है ॥ ५२७ ॥

प्रीतिमात्रात्कथं पुत्र आत्मा भवितुमर्हति ।
अन्यत्रापीक्ष्यते प्रीतिः क्षेत्रपात्रधनादिषु ॥ ५२८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रीतिमात्रात्) प्रेममात्रसे (पुत्रः) पुत्र (कथम्) कैसे (आत्मा) आत्मा (भवितुं, अर्हति) हो सकता है (अन्यत्र) पुत्रसे अन्य (क्षेत्रपात्रधनादिषु, अपि) भूमि पात्र धन आदिमें भी (प्रीतिः) प्रेम (ईक्ष्यते) देखनेमें आता है ॥ ५२८ ॥

भावार्थ-पुत्रमें बड़ाभारी प्रेम होता है, केवल इस कारणसे ही पुत्र आत्मा कैसे हो सकता है ? क्यों कि—पुत्र के सिवाय भूमि, पात्र, धन आदिमें भी प्राणीका प्रेम देखते हैं ॥ ५२८ ॥

पुत्राद्विशिष्टा देहेऽस्मिन् प्राणिनां प्रीतिरिष्यते ।
प्रदीप्ते भवने पुत्रं त्यक्त्वा जन्तुः पलायते ॥ ५२९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्मिन्) इस (देहे) देहमें (प्राणिनाम्) प्राणियोंकी (पुत्रात्) पुत्रसे (विशिष्टा) अधिक (प्रीतिः) प्रीति (इष्यते) मानी जाती है

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(भवने, प्रदीप्ते) घरके जलने पर (जन्तुः) प्राणी (पुत्रम्) पुत्रको (त्यक्त्वा) छोड़कर (पलायते) भागजाता है ॥ ५२९ ॥

भावार्थ-इस देहमें पुत्रसे अधिक प्रीति देखनेमें आती है, देखो-यदि घरमें आग लगजाती है तो प्राणी इस पुत्रको छोड़कर अपने देहको लेकर भागता है ५२९

तं विक्रीणाति देहार्थं प्रतिकूलं निहन्ति च ।
तस्मादात्मा तु तनयो न भवेच्च कदाचन ॥ ५३० ॥

अन्वय और पदार्थ-[जनः] प्राणी (देहार्थम्) देहके लिये (तम्) उस पुत्रको (विक्रीणाति) वेच डालता है (च) और (प्रतिकूलम्) अपना अनिष्ट करने वालेको (निहन्ति) मारडालता है (तस्मात्, च) इसकारणसे भी (तनयः,तु) पुत्र तो (कदाचन) कभी भी (आत्मा) आत्मा (न) नहीं (भवेत्) होगा ५३०

भावार्थ-प्राणी अपने देहकी रक्षाके लिये पुत्रको वेच डालता है तथा अपना अनिष्टकारी हुआ तो उसको मार भी डालता है, इसलिये भी पुत्र कभी आत्मा नहीं होसकता ॥ ५३० ॥

गुणरूपादिसादृश्यं दीपवन्न सुते पितुः ।
अव्यङ्गाज्जायते व्यङ्गः सुगुणादपि दुर्गुणः ॥ ५३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुते) पुत्रमें (दीपवत्) दीपककी समान (पितुः) पिताके (गुणरूपादिसादृश्यम्) गुण रूप आदिकी तुलना (न) नहीं [भवति] होती है (अव्यङ्गात्) पूर्ण अङ्गोंवालेसे (व्यङ्गः) हीनाङ्ग (अपि) और (सुगुणात्) श्रेष्ठ गुणोंवालेसे (दुर्गुणः) दुर्गुणी (जायते) उत्पन्न होता है ५३१

भावार्थ-एक दीपकसे प्रकट हुआ दूसरा दीपक जैसे पहले दीपककी समान ही गुण वाला होता है, तैसे पुत्रमें पिताकी समान रूप गुण आदि देखनेमें नहीं आते, देखो पूर्ण अंगोंवाले पितासे काँणा बहरा आदि हीनांग और श्रेष्ठ गुणों वाले पितासे दुर्गुणी पुत्र उत्पन्न होजाता है ॥ ५३१ ॥

आभासमात्रास्ताः सर्वा युक्त्योऽप्युक्तयोऽपि च ।
पुत्रस्य पितृवद् गेहे सर्वकार्येषु वस्तुषु ॥ ५३२ ॥
स्वामित्वद्योतनायास्मिन्नात्मत्वमुपचर्यते ।
श्रुत्या तु मुख्यया वृत्त्या पुत्र आत्मेति नोच्यते ॥ ५३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वाः) सब (ताः) वे (युक्तयः, अपि) युक्तियें

भी (उक्तयः, अपि) वाक्य भी (आभासमात्राः) आभासमात्र हैं (पितृवत्) पिताकी समान (गेहे) घरमें (सर्वकार्येषु) सकल कार्यों में, (वस्तुषु) वस्तुओं में (पुत्रस्य) पुत्रके (स्वामित्वद्योतनाय) प्रभुत्वको सूचित करनेके लिये (अस्मिन्) इस पुत्रमें (आत्मत्वम्) आत्मभाव (उपचर्यते) आरोपण करलिया है (तु) और (श्रुत्या) श्रुतिके द्वारा (पुत्रः) पुत्र (आत्मा) आत्मा है (इति) यह बात (मुख्यया) मुख्य (वृत्त्या) वृत्तिके द्वारा (न) नहीं (उच्यते) कही जाती है ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥

भावार्थ-पुत्रात्मवादीने जो युक्तियें दिखाई हैं और प्रमाणवाक्य कहे हैं, वे सब आभासमात्र हैं वास्तविक युक्ति नहीं है, युक्तिसी भासती है, अतः युक्ति नहीं है, किन्तु युक्त्याभास हैं, और प्रमाणवाक्य वाक्याभास हैं, जैसे घरमें सकल कार्य और सकल पदार्थों पर पिताकी प्रभुता है ऐसेही पुत्र की भी प्रभुता है, यह बात सूचित करनेके लिये पुत्रमें आत्म शक्तिका उपचार (गौण प्रयोग) किया है। श्रुतिनेभी मुख्य वृत्ति (अभिदाशक्ति) से पुत्र को आत्मा नहीं कहा है ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥

औपचारिकमात्मत्वं पुत्रे तस्मान्न मुख्यतः ।
अहंपदप्रत्ययार्थो देह एव न चेतरः ॥ ५३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (पुत्रे) पुत्रमें (औपचारिकम्) गौण (आत्मत्वम्) आत्मपना [अस्ति] है (मुख्यतः) मुख्यभावसे (न) नहीं (देहः,एव) देहही (अहंपदप्रत्ययार्थः) अहं शब्दके ज्ञानका विषय है (इतरः) दूसरा (न, च) नहीं है ॥ ५३४ ॥

भावार्थ-इसलिये पुत्रमें जो आत्मत्वका प्रयोग है वह गौण है, मुख्य नहीं है, केवल एक देह ही अहं शब्दके ज्ञानका विषय (आत्मा) है, पुत्र आदि और कोई नहीं है ॥ ५३४ ॥

प्रत्यक्षः सर्वजन्तूनां देहोऽहमिति निश्चयः ।
एष पुरुषोऽन्नरस-मय इत्यपि च श्रुतिः ॥ ५३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (देहः) शरीर [अस्मि] हूँ (इति) यह (निश्चयः) निश्चय (सर्वजन्तूनाम्) सकल प्राणियों को (प्रत्यक्षः) प्रत्यक्ष है (च) और (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष (अन्नरसमयः) अन्नके रसका विकार है (इति) ऐसी (श्रुतिः, अपि) श्रुति भी (अस्ति) है ॥ ५३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-देह ही मैं (अहम्पदवाच्य) हूँ, ऐसा प्रत्यक्ष निश्चय सबही प्राणियों को होता है यह पुरुष अन्नके सारांशका विकाररूप है, यह बात श्रुतिने भी कही है ॥ ५३५ ॥

पुरुषत्वं वदत्यस्य स्वात्मा हि पुरुषस्ततः ।
आत्माऽयं देह एवेति चार्वाकेन विनिश्चितम् ॥ ५३६ ॥

अन्वय और पदार्थ-[श्रुतिः] श्रुति (अस्य) इस देह के (पुरुषत्वम्) पुरुषपनेको (वदति) कहती है (ततः) तिससे (पुरुषः) पुरुष (स्वात्मा हि) स्वस्वरूप ही [अस्ति] है (अयम्) यह (देहः, एव) देहही (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (चार्वाकेन) चार्वाकने (विनिश्चितम्) निश्चय किया है ॥५३६॥

भावार्थ-श्रुतिने इस शरीर को पुरुषपद से कहा है, इसलिये पुरुष (देह) ही आत्मा है, इस प्रकार चार्वाकने निश्चय किया है, कि—यह दृश्यमान देह ही आत्मा है ॥ ५३६ ॥

इन्द्रियात्मवादः

तन्मतं दूषयत्यन्योऽसहमानः पृथग्जनः ।
देह आत्मा कथं नु स्यात्परतन्त्रो ह्यचेतनः ॥ ५३७ ॥

अन्वय और पदार्थ (असहमानः) न सहता हुआ (अन्यः) दूसरा (पृथग्जनः) पण्डितोंसे पृथक् पुरुष (तन्मतम्) उस देहात्मवादी के मतको (दूषयति) दूषित करता है (नु) अरे (देहः) देह (आत्मा) आत्मा (कथम्) कैसे (स्यात्) होगा (हि) क्योंकि (परतन्त्रः) परवश (अचेतनः) जड़ (अस्ति) है ॥ ५३७ ॥

भावार्थ-पण्डितोंसे बहिष्कृत दूसरा मूर्ख पुरुष, देहात्मवादी के मतको न सह कर उसके मतमें दोष दिखाता है, कि—देह आत्मा कैसे हो सकता है ? क्यों, कि—वह तो इन्द्रियों के अधीन और जड़ है ॥ ५३७ ॥

इन्द्रियैश्चाल्यमानोऽयं चेष्टते न स्वतः क्वचित् ।
आश्रयश्चक्षुरादीनां गृहवद् गृहमेधिनाम् ॥ ५३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (इन्द्रियैः) इन्द्रियों करके (चाल्यमानः) चलाया जाता हुआ (चेष्टते) चेष्टा करता है (स्वतः) स्वयं (क्वचित्) कहीं (न) नहीं [अयम्] यह (गृहमेधिनाम्) गृहस्थोंके (गृहवत्) घरकी समान (चक्षुरादीनाम्) चक्षु आदिका (आश्रयः) आश्रय है ॥ ५३८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-इस देहको इन्द्रियें चलाती हैं तब चेष्टा करता है, अपने आप कोई व्यापार नहीं कर सकता, जैसे घर गृहस्थोंका आश्रय है, ऐसे ही देह इन्द्रियोंका आश्रय है ॥ ५३८ ॥

बाल्यादिनानावस्थावान् शुक्रशोणितसम्भवः ।
अतः कदापि देहस्य नात्मत्वमुपपद्यते ॥ ५३९ ॥

अन्वय और पदार्थ-[देहः] देह (बाल्यादिनानावस्थावान्) बालकपन आदि नाना अवस्थाओं वाला (शुक्रशोणितसंभवः) वीर्य और रजसे उत्पत्ति वाला [अस्ति] है (अतः) इसलिये (देहस्य) देहका (आत्मत्वम्) आत्मा होना (कदापि) कभी भी (न) नहीं (उपपद्यते) सिद्ध होता है ॥ ५३९ ॥

भावार्थ-इस शरीरमें बालक जवानी आदि अनेकों अवस्थायें आती हैं और चलीजाती हैं तथा यह पिताके वीर्य और माताके रजसे उत्पन्न होता है, इसलिये यह देह आत्मा कदापि नहीं हो सकता ॥ ५३९ ॥

बधिरोऽहञ्च काणोऽहं मूक इत्यनुभूतितः ।
इन्द्रियाणि भवन्त्यात्मा येषामस्त्यर्थवेदनम् ॥ ५४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (बधिरः) बहरा (अहम्) मैं (काणः) काणा (च) और (मूकः) गूंगा [अस्मि] हूं (इति) ऐसे (अनुभूतितः) अनुभवसे (इन्द्रियाणि) इन्द्रियें (आत्मा) आत्मा (भवन्ति) होती हैं (येषाम्) जिनको (अर्थवेदनम्) विषयोंका ज्ञान (अस्ति) है ॥ ५४० ॥

भावार्थ-मैं सुननेकी शक्तिसे हीन बहरा हूं, मैं नेत्रविहीन काणा हूँ और मैं वाक्शक्तिशून्य गूंगा हूँ, ऐसा अनुभव होनेके कारण इन्द्रियें ही आत्मा हो सकती हैं, क्योंकि-इन्द्रियोंको विषयोंका ज्ञान है ॥ ५४० ॥

इन्द्रियाणां चेतनत्वं देहे प्राणाः प्रजापतिम् ।
एतमेत्येत्यूचुरिति श्रुत्यैव प्रतिपद्यते ॥ ५४१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(देहे) शरीरमें (प्राणाः) इन्द्रियें (एतम्) इस (प्रजापतिम्) प्रजापतिको (एत्य) प्राप्त होकर (इति) इसप्रकार (ऊचुः) बोलीं (इति) इस (श्रुत्या, एव) श्रुति करके ही (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंका (चेतनत्वम्) चेतनपना (प्रतिपाद्यते) सिद्ध कियाजाता है ॥ ५४१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-शरीरमेंकी इन्द्रियोंने प्रजापतिके पास जा कर यह बात कही, इस श्रुतिसे भी इन्द्रियोंका चेतन (आत्मा) होना सिद्ध होता है ॥ ५४१ ॥

यतस्तस्मादिन्द्रियाणां युक्तमात्मत्वमित्यमुम् ।
निश्चयं दूषयत्यन्योऽसहमानः पृथग्जनः ॥ ५४२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि श्रुति ऐसा कहती है (तस्मात्) जिससे (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंका (आत्मत्वम्) आत्मा होना (युक्तम्) उचित है (इति) ऐसे (अमुम्) इस (निश्चयम्) निश्चयको (असहमानः) न सहता हुआ (अन्यः) दूसरा (पृथग्जनः) मूढ़ पुरुष (दूषयति) दूषण देता है ॥ ५४२ ॥

भावार्थ-क्योंकि---श्रुतिने ऐसा कहा है, इसलिये इन्द्रियों का आत्मा होना उचित ही है, दूसरा मूढ़ पुरुष इस निश्चयको न सहकर इसमें दोष दिखाता है ५४२

माध्यात्मवादः

इन्द्रियाणि कथन्त्वात्मा करणानि कुठारवत् ।
करणस्य कुठारादेश्चेतनत्वं न हीक्ष्यते ॥ ५४३ ।

अन्वय और पदार्थ-(तु) किन्तु (इन्द्रियाणि) इन्द्रियें (कथम्) कैसे (आत्मा) आत्मा [भवेयुः] होजायँगी (कुठारवत्) कुठारकी समान (करणानि) करण [सन्ति] हैं (कुठारादेः) कुठार आदि (करणस्य) करण का (चेतनत्वम्) चेतनपना (नहि) नहीं (ईक्ष्यते) देखनेमें आता है ॥ ५४३ ॥

भावार्थ-इन्द्रियें आत्मा कैसे होसकती हैं ? वे तो वृक्ष काटने के कुठारकी समान करण हैं, कुठार आदि करणोंका चेतनपना कहीं भी देखनेमें नहीं आता ॥४३

श्रुत्याधिदेवतावाद इन्द्रियेषूपचर्यते ।
न तु साक्षादिन्द्रियाणां चेतनत्वमुदीर्यते ५४४

अन्वय और पदार्थ-(श्रुत्या) श्रुति करके (अधिदेवतावादः) इन्द्रियों के अधिष्ठात्री देवताका कथन (इन्द्रियेषु) इन्द्रियोंमें (उपचर्यते) गौण भावसे प्रयोग किया जाता है (साक्षात्) प्रत्यक्ष रूपसे (चेतनत्वं तु) चेतनपना तो (न) नहीं (उदीर्यते) कहा जाता है ॥ ५४४ ॥

भावार्थ-श्रुतिमें जो इन्द्रियोंके कहने और उत्तर पानेकी बात देखनेमें आती है यह साक्षात् इन्द्रियोंकी बात चीत नहीं है, किन्तु उन इन्द्रियोंके अधिष्ठात्री देव-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ताओंका संवाद इन्द्रियोंमें आरोपित कर लिया गया है, श्रुतिने इन्द्रियोंकी साक्षात् चेतनता कहीं नहीं कही है ॥ ५४४ ॥

अचेतनस्य दीपादेरर्थाभासकता यथा ।
तथैव चक्षुरादीनां जडानामपि सिध्यति ॥ ५४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अचेतनस्य) जड़ (दीपादेः) दीपक आदिका (यथा) जैसे (अर्थाभासकता) पदार्थका प्रकाशकपना है (तथा, एव) तैसे ही (जड़ानाम्) जड़ (चक्षुरादीनाम्, अपि) चक्षु आदिकोंका भी (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ५४५ ॥

भावार्थ-इन्द्रियोंको विषयोंका ज्ञान होता है, अतः इन्द्रियें आत्मा हैं, यह जो युक्ति दी थी, उसमें दोष दिखाते हैं, कि—अचेतन दीपक आदि जैसे घट पटादि पदार्थोंको प्रकाशित करते हैं, ऐसे ही अचेतन चक्षु आदि इन्द्रियें भी विषयोंको प्रकाशित कर देती हैं ॥ ५४५ ॥

इन्द्रियाणां चेष्टयिता प्राणोऽयं पञ्चवृत्तिकः ।
सर्वावस्थास्ववस्थावान् सोऽयमात्मत्वमर्हति
अहं क्षुधावान् तृष्णावान् इत्याद्यनुभवादपि ॥ ५४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (पञ्चवृत्तिकः) पाँच वृत्तियों वाला (प्राणः) मुख्य प्राण (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंका (चेष्टयिता) चेष्टा करानेवाला है (सर्वावस्थासु) सब अवस्थाओंमें (अवस्थावान्) अवस्था वाला (सः) वह (अयम्) यह (आत्मत्वम्) आत्मा न होनेको (अर्हति) योग्य है (अहम्) मैं (क्षुधावान्) भूखा हूं (तृष्णावान्) प्यासा हूं (इत्यादि) ऐसा २ (अनुभवात्, अपि) अनुभव होनेसे भी [प्राणः, आत्मा] प्राण आत्मा है ५४६

भावार्थ-प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान इन पाँच वृत्तियों वाला मुख्य प्राण इन्द्रियोंको चेष्टा कराता है, बालकपन जवानी आदि सब अवस्थाओंमें अवस्थाओं वाला यह प्राण आत्मा हो सकताहै, मैं भूखसे घबड़ा रहा हूं, मैं प्याससे व्याकुल हूँ, ऐसा २ अनुभव होनेसे भी प्राण को आत्मा कहा जा सकता है ॥ ५४६ ॥

श्रुत्याऽन्योऽन्तर आत्मा प्राणमय इतीर्यते यस्मात् ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्मात्प्राणात्मत्वं युक्तं नो क्वापि करणसंज्ञानाम् ५४७

अन्वय और पदार्थ-(यस्मात्) जिससे (श्रुत्या) श्रुतिके द्वारा (अन्यः) दूसरा (अन्तरः) भीतरका (आत्मा) आत्मा (प्राणमयः, इति) प्राणमय इस नाम वाला (ईर्यते) कहा जाता है (तस्मात्) तिससे (प्राणात्मत्वम्) प्राण का आत्मा होना (युक्तम्) उचित है (करणसंज्ञानाम्) करण नाम वालोंका (क्वापि) कहीं भी (नो) नहीं ॥ ५४७ ॥

भावार्थ-अन्नमय कोशसे और भी भीतर स्थित जो प्राणमय कोश है, वही आत्मा है, यह बात श्रुतिने भी कही, इसलिये प्राण ही आत्मा है, इन्द्रियें आत्मा नहीं हैं ॥ ५४७ ॥

मतमात्मवादः

एवं निश्चयमेतस्य दूषयत्यपरो जड़ः ।

भवत्यात्मा कथं प्राणो वायुरेवैष आन्तरः ॥ ५४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अपरः) दूसरा (जड़ः) मूढ़ (एतस्य) इसके (एवम्) ऐसे (निश्चयम्) निश्चयको (दूषयति) दूषण देता है (प्राणः) प्राण (कथम्) कैसे (आत्मा) आत्मा (भवति) हो सकता है (एषः) यह (आन्तरः) भीतरका (वायुः एव) पवन ही है ॥ ५४८ ॥

भावार्थ- दूसरा मूढ़ मनुष्य प्राणात्मवादी के ऐसे निश्चयमें दोष दिखाता है, यह कहता है, कि--प्राण आत्मा कैसे हो जायगा, प्राण तो आत्मासे उत्पन्न हुआ भीतरी पवन है ॥ ५४८ ॥

वहिर्यात्यन्तरायाति भस्त्रिकावायुवन्मुहुः ।

न हितं वाहितं वा स्वमन्यद्वा वेद किञ्चन ॥ ५४९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भस्त्रिकावायुवत्) धौंकनी के वायुकी समान (मुहुः) वार २ (वहिः) बाहर (याति) जाता है (अन्तः) भीतरको (आयाति) लौट आता है (हितम्) हितको (वा) वा (अहितम्) अहितको (वा) या (स्वम्) अपने आपको (वा) या (अन्यद्) दूसरेको (किञ्चन) कुछ भी (न) नहीं (वेद) जानता है ॥ ५४९ ॥

भावार्थ-जैसे लुहारकी धौंकनीका वायु वार २ वाहर को आता है और भीतरको चला जाता है, ऐसे ही यह, प्राणवायु भी एक वार देहसे बाहर चला

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आता है, और फिर देहके भीतर जा पहुंचता है, यह हित, अहितको, अपने आपको अथवा दूसरेको कुछ भी नहीं जानता है ॥ ५४९ ॥

जडस्वभावश्चपलः कर्मयुक्तश्च सर्वदा ।
प्राणस्य भानं मनसि स्थिते सुप्ते न दृश्यते ॥ ५५० ॥

अन्वय और पदार्थ-[एषः] यह [प्राणः] प्राण (जडस्वभावः) जड स्वभाव वाला (चपलः) चपल (च) और (सर्वदा) सबकाल में (कर्मयुक्तः) कर्म करने वाला है (सुप्ते) सो जाने पर (मनसि, स्थिते) मनके विद्यमान होते हुए (प्राणस्य) प्राण का (भानम्) भान (न) नहीं (दृश्यते) दीखताहै ५५०

भावार्थ-प्राण अचेतन, चञ्चल और सदा क्रियाशील है, सोये हुए मनुष्य का मन तो स्थित रहता है, परंतु प्राण की ज्ञानशक्ति देखने में नहीं आती ॥५५०॥

मनस्तु सर्वं जानाति सर्ववेदनकारणम् ।
यत्तस्मान्मन एवात्मा प्राणस्तु न कदाचन ॥ ५५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तु) परंतु (मनः) मन (सर्वम्) सबको (जानाति) जानता है (यत्) क्योंकि (सर्ववेदांतकारणम्) सब विषयों के ज्ञान का हेतु है (तस्मात्) तिससे (मनः, एव) मन ही (आत्मा) आत्मा है (तु) और (प्राणः) प्राण (कदाचन) कभी (न) नहीं है ॥ ५५१ ॥

भावार्थ—क्योंकि-मन सब विषयों को जानता है और सब विषयों के ज्ञानका कारण है, इसलिये मन ही आत्माहै, प्राण कभी आत्मा नहीं होसकता ५५१

संकल्पवानहं चिंतावानहञ्च विकल्पवान् ।
इत्याद्यनुभवादन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः ॥ ५५२ ॥
इत्यादिश्रुतिसद्भावाद्युक्ता मनस आत्मता ।
इति निश्चयमेतस्य दूषयत्यपरो जडः ॥ ५५३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्, संकल्पवान्) मैं संकल्प करता हूँ (चिंतावान्) चिंता करता हूँ (च) और (अहम्) मैं (विकल्पवान्) विकल्प करता हूँ (इत्याद्यनुभवात्) ऐसे २ अनुभव से (अन्यः) दूसरा (अंतरः) भीतर का (मनोमयः) मनोमय (आत्मा) आत्मा है (इत्यादिश्रुतिसद्भावात्) इत्यादि श्रुतिप्रमाण होनेसे (मनसः) मनका (आत्मा) आत्मा होना (युक्तम्) उचित

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

है (एतस्य) इसके (इति) ऐसे (निश्चयम्) निश्चयको (अपरः) दूसरा (जड़ः) जड़ मनुष्य (दूषयति) दूषित करता है ॥ ५५३ ॥

भावार्थ—मैं इसप्रकार सङ्कल्प करता हूँ, मैं अमुक विषयकी चिंता करता हूँ, मैं 'यह ठीक है या नहीं, इसप्रकार विकल्प करता हूँ, ऐसा अनुभव होने से तथा प्राणमय कोशकी अपेक्षा भीतर और एक मनोमय कोश नामका आत्मा है, ऐसा वेदवाक्य होने से मनको आत्मा कहना उचित ही है, परंतु दूसरा अज्ञानी मनुष्य मन आत्मवादी के इस सिद्धांत में भी दोष दिखाता है ॥ ५५३ ॥

॥बुद्ध्यात्मवादः॥

कथं मनस आत्मत्वं करणस्य दृगादिवत् ।
कर्तृप्रयोज्यं करणं न स्वयन्तु प्रवर्त्तते ॥ ५५४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(दृगादिवत्) चक्षु आदि की समान (करणस्य) करण (मनसः) मनका (आत्मत्वम्) आत्मा होना (कथम्) कैसे [भवितुं, अर्हति] होसकता है (कर्तृप्रयोज्यम्) कर्त्ता से प्रेरित होने वाला (करणम्) करण (स्वयं, तु) अपने आप तो (न) नहीं (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होता है ॥५५४॥

भावार्थ—मन भी चक्षु आदि इंद्रियों की समान एक इंद्रिय है वह आत्मा कैसे होसकता है ? करण को कर्त्ता कर्म में लगाता है, करण अपने आप किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता ॥ ५५४ ॥

करणप्रयोक्ता यः कर्त्ता तस्यैवात्मत्वमर्हति ।
आत्मा स्वतंत्रः पुरुषो न प्रयोज्यः कदाचन ॥ ५५५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (करणप्रयोक्ता) करणका प्रयोग करानेवाला (कर्त्ता) कर्त्ता है (तस्य, एव) उसका ही (आत्मत्वम्) आत्मपना (अर्हति) योग्य है। (स्वतन्त्रः) स्वतंत्र (पुरुषः) पुरुष (आत्मा) आत्मा होता है (प्रयोज्यः) परवश चेष्टावाला (कदाचन) कभी, (न) नहीं ॥ ५५५ ॥

भावार्थ—जो करण (कार्यसाधक) का चेष्टा करानेवाला और कर्त्ता होता है वही आत्मा कहा जासकता है, स्वतंत्र पुरुष (शरीर इन्द्रियादि में व्यापक) ही आत्मा है, पराधीन होकर चेष्टा करने वाले देह इन्द्रियादि करण कभी आत्मा नहीं होसकते ॥ ५५५ ॥

अहं कर्त्ताऽस्म्यहं भोक्ता सुखीत्यनुभवादपि ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बुद्धिरात्मा भवत्येव बुद्धिधर्मो ह्यहंकृतिः ॥ ५५६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (कर्त्ता) कर्तृत्व शक्तिवाला (अहम्) मैं (भोक्ता) भोगनेवाला (सुखी) सुखका अनुभव करनेवाला (अस्मि) हूँ (इति) ऐसे (अनुभवात्, अपि) अनुभवसे भी (बुद्धिः) बुद्धि (आत्मा) आत्मा (भवति) होती है (हि) क्योंकि (अहंकृतिः) अहङ्कार (बुद्धिधर्मः, एव) बुद्धि का ही धर्म है ॥ ५५६ ॥

भावार्थ-मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं सुखी हूँ, इत्यादि अनुभवसे बुद्धि को आत्मा कहा जासकता है, क्यों कि-अहङ्कार बुद्धिका ही धर्म है ॥ ५५६ ॥

अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमय इति वदति निगमः ।
मनसोऽपि च भिन्नविज्ञानमयं कर्तृरूपमात्मानम् ५५७

अन्वय और पदार्थ-(अन्यः) इससे दूसरा (अन्तरः) भीतर का (विज्ञानमयः) विज्ञानमय (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (निगमः) वेद (वदति) कहता है (च) और (मनसः, अपि) मनसे भी (भिन्नम्) पृथक् (कर्तृरूपम्) कर्त्तारूप (विज्ञानमयम्) विज्ञानमय (आत्मानम्) आत्माको [वदति] कहता है ॥ ५५७ ॥

भावार्थ-मनोमय कोशसे पृथक् भीतर विज्ञानमय नामका आत्मा है, ऐसा श्रुतिने भी कहा है तथा मनसे जुदा रूप कर्त्तापन [विज्ञानमय] आत्मा है ऐसा भी कहा है ॥ ५५७ ॥

विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च ।
इत्यस्य कर्तृता श्रुत्या मुखतः प्रतिपाद्यते ॥
तस्माद्युक्तात्मता बुद्धेरिति बौद्धेन निश्चितम् ॥ ५५८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञानम्) विज्ञान (यज्ञम्) सङ्कल्पको (तनुते) फैलाता है (च) और (कर्माणि, अपि) कर्मोंको भी (तनुते) फैलाता है (इति) इस प्रकार (श्रुत्या) श्रुतिके द्वारा (अस्य) इस बुद्धिका (कर्तृता) कर्त्तापन (मुखतः) कण्ठरव से (प्रतिपाद्यते) वर्णन किया जाता है (तस्मात्) तिससे (बुद्धेः) बुद्धिका (आत्मता) आत्मा होना (युक्ता) उचित है (इति) ऐसा (बौद्धेन) बौद्ध ने (निश्चितम्) निश्चय किया है ॥ ५५८ ॥

भावार्थ-बुद्धि संकल्प करती है और भाँति २ के कर्म करती है, यह बात

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

श्रुतिने भी कण्ठ खोल कर स्पष्ट कही है, इसलिये बुद्धिका आत्मा होना उचित ही है, ऐसा बौद्धने निश्चय किया है ॥ ५५८ ॥

मज्ञानात्मवादः

प्राभाकरस्तार्किकश्च तावुभावप्यमर्षया ।

तन्निश्चयं दूषयतो बुद्धिरात्मा कथं त्विति ॥ ५५९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राभाकरः) प्रभाकरके मतवाला (च) और (तार्किकः) नैयायिक (तौ) वे (उभौ, अपि) दोनों ही (अमर्षया) असहनशीलतासे (बुद्धिः) बुद्धि (कथं, तु) कैसे (आत्मा) आत्मा [भवितुं, अर्हति] होसकती है (इति) इस प्रकार (तन्निश्चयम्) उसके निश्चयको (दूषयतः) दूषित करते हैं ॥

भावार्थ-प्रभाकरके मतवाले और नैयायिक ये दोनोंही असहिष्णुताके कारण बुद्धि आत्मा कैसे होसकती है ?, यह कहते हुए बुद्ध्यात्मवादीके सिद्धान्तमें दोष दिखलाते हैं ॥ ५५९ ॥

बुद्धेरज्ञानकार्यत्वाद्विनाशित्वात्प्रतिक्षणम् ।

बुद्ध्यादीनाञ्च सर्वेषामज्ञाने लयदर्शनात् ॥ ५६० ॥

अज्ञोऽहमित्यनुभवादास्त्रीबालादिगोचरात् ।

भवत्यज्ञानमेवात्मा न तु बुद्धिः कदाचन ॥ ५६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बुद्धेः) बुद्धिके (अज्ञानकार्यत्वात्) अज्ञानका कार्य होनेसे (प्रतिक्षणम्) क्षण २ में (विनाशित्वात्) नाशवाली होनेसे (च) और (बुद्ध्यादीनाम्) बुद्धि आदि (सर्वेषाम्) सबका (अज्ञाने) ज्ञानाभाव में (लयदर्शनात्) नाश देखनेसे (अहम्) मैं (अज्ञः) ज्ञानहीन हूँ (इति) ऐसा (आस्त्रीबालादिगोचरात्) स्त्री बालकों तकके गोचर (अनुभवात्) अनुभव होनेसे (अज्ञानं, एव) अज्ञान ही (आत्मा) आत्मा (भवति) होता है (बुद्धिः,तु) बुद्धि तो (कदाचन) कभी (न) नहीं ॥ ५६० ॥५६१॥

भावार्थ-बुद्धिके आत्मा न होनेमें युक्ति दिखाते हैं,कि-बुद्धि अज्ञानका कार्य है, प्रतिक्षणमें विनष्ट हुआ करती है, बुद्धि आदि सब वस्तुओंका अज्ञानमें लय होना देखते हैं और मैं अज्ञानी हूँ, ऐसा अनुभव स्त्री और बालकों तक सबको ही होता है, इसलिये ही अज्ञान ही आत्मा है, बुद्धि कभी आत्मा नहीं हो सकती ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विज्ञानमयादन्यं त्वानन्दमयं परं तथात्मानम् ।
अन्योऽऽन्तर आत्मानन्दमय इति वदति वेदोऽपि ५६२

अन्वय और पदार्थ–(तु) परन्तु (अन्यः) विज्ञानमय कोशसे अन्य (आन्तरः) भीतर स्थित (आनन्दमयः) आनन्दमय (आत्मा) आत्मा है (इति) इस प्रकार (वेदः, अपि) वेद भी (विज्ञानमयात्) विज्ञानमयसे (अन्यम्) भिन्न (तथा) तैसेही (परम्) श्रेष्ठ (आनन्दमयम्) आनन्दमय (आत्मानम्) आत्माको (वदति) कहता है ॥ ५६२ ॥

भावार्थ–बुद्धिसे अन्य भीतर आनन्दमय आत्मा है, इस प्रकार वेद बुद्धिरूप विज्ञानमय कोशसे भिन्न तथा उत्तम आनन्दमय आत्माको बताता है ॥ ५६२ ॥

दुःखप्रत्ययशून्यत्वादानन्दमयता मता ।
अज्ञाने सकलं सुप्तौ बुद्ध्यादि प्रविलीयते ॥ ५६३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(दुःखप्रत्ययशून्यत्वात्) दुःखकी प्रतीतिसे शून्य होनेके कारण (आनन्दमयता) आनन्दरूपता (मता) मानी गई है (सुप्तौ) निद्राकालमें (बुद्ध्यादि) बुद्धि आदि (सकलम्) सब (अज्ञाने) अज्ञानमें (प्रविलीयते) लीन होजाता है ॥ ५६३ ॥

भावार्थ—अज्ञानमें दुःख की प्रतीति नहीं होती, इसलिये अज्ञानको आनन्दमय कहा है, क्योंकि–सोने पर सुषुप्तिमें बुद्धि आदि सब वस्तुओंका अज्ञानमें लय होजाता है, तात्पर्य यह है, कि–अज्ञानका अर्थ है–ज्ञानाभाव, परन्तु श्रुतिमें आत्मा को आनन्दमय कहा है, अज्ञान और आनन्दमय एक कैसे होसकते हैं ? अज्ञानको आत्मा माननेवालेके मतसे इसका यह उत्तर है, कि—श्रुतिमें जिस आनन्दकी बात कही है उसका अर्थ है–दुःखका अभाव । मोक्ष वा सुषुप्तिमें आनन्द नहीं होता है, किन्तु दुःख नहीं होता इसलिये आनन्द शब्दका प्रयोग किया जाता है, लोकमें भी ऐसा प्रयोग देखनेमें आता है । " भाराद्यपगमे सुख्यहं संवृत्तः " बोझा दूर होजाने पर मैं सुखी होगया, ऐसा कहते हैं । वास्तवमें बोझा हट जाने पर दुःख दूर होजाता है, उसके ही लिये सुख शब्दका प्रयोग किया जाता है । इसलिये आनन्द शब्दका अर्थ है–दुःखज्ञानका अभाव ॥ ५६३ ॥

दुःखिनोऽपि सुषुप्तौ तु आनन्दमयता ततः ।
सुप्तो किञ्चिन्न जानामीत्यनुभूतिश्च दृश्यते ॥ ५६४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ—(ततः) तिससे (दुःखिनः, अपि) दुःखी पुरुषको भी (सुषुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (तु) तो (आनन्दमयता) आनन्दरूपता [भवति] होती है (सुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (जानामि) जानता हूँ (इति) ऐसा (अनुभूतिः, च) अनुभव भी (दृश्यते) दीखता है ॥

भावार्थ-इसलिये सुषुप्ति कालमें दुःखी पुरुषको भी आनन्दमयता होती है, मैं कुछ नहीं जानता, ऐसा अनुभव सुषुप्तिकालमें होता है ॥ ५६४ ॥

यत एवमतो युक्ता ह्यज्ञानस्यात्मता ध्रुवम् ।
इति तन्निश्चयं भाट्टा दूषयन्ति स्वयुक्तिभिः ॥ ५६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि (एवम्) ऐसा है (अतः) इसलिये (अज्ञानस्य) अज्ञानका (आत्मता) आत्मा होना (ध्रुवम्) निश्चय (युक्ता हि) उचित ही है (इति) इस प्रकार (तन्निश्चयम्) उनके निश्चयको (भाट्टाः) भट्ट-मतवाले (स्वयुक्तिभिः) अपनी युक्तियोंसे (दूषयन्ति) दूषित करते हैं ५६५ ॥

भावार्थ-क्योंकि-इस प्रकार युक्तियोंसे अज्ञानका आत्मा होना सिद्ध किया है, इसलिये भट्टमत वाले इस सिद्धिमें दोष दिखाते हैं ॥ ५६५ ॥

भाट्टमतेनाज्ञानात्मवादः

कथमज्ञानमेवात्माऽज्ञानं चाप्युपलभ्यते ।
ज्ञानाभावे कथं विद्युरज्ञोऽहमिति चात्मताम् ॥
अस्वाप्सं सुखमेवाऽहं न जानाम्यत्र किञ्चन ॥ ५६६ ॥
इत्यज्ञानमपि ज्ञानं प्रबुद्धेषु प्रदृश्यते ।
प्रज्ञानघन एवानन्दमय इत्यपि च श्रुतिः ॥ ५६७ ॥
प्रब्रवीत्युभयात्मत्वमात्मनः स्वयमेव सा ॥
आत्मातश्चिज्जडात्मतनुः खद्योत इव संमतः ॥ ५६८ ॥

अन्वय और पदार्थ (अज्ञानं, एव) अज्ञान ही (आत्मा) आत्मा (कथम्) कैसे [भवितुं, अर्हति] हो सकता है (ज्ञानं, च, अपि) ज्ञान भी (उपलभ्यते) पाया जाता है (ज्ञानाभावे) ज्ञानके न होने पर (अहम्) मैं (अज्ञः) ज्ञान-हीन हूँ (इति) यह (च) और (आत्मताम्) आत्मत्वको (कथम्) कैसे (विद्युः) जानें (अहम्) मैं (सुखं, एवं) सुखपूर्वक ही (अस्वाप्सम्) सोया

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(अत्र) इस विषय में (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (जानामि) जानता हूँ (इति) इस प्रकार (अज्ञानम्, अपि) अज्ञान भी (ज्ञानम्) ज्ञानरूप (प्रबुद्धेषु) जागे हुओंमें (प्रदृश्यते) दीखता है (च) और (प्रज्ञानघनः) ज्ञानमूर्त्ति (आनन्दमयः) आनन्दमय है (इति) इस प्रकार (सा) वह (श्रुतिः, अपि) श्रुति भी (स्वयं, एव) अपनेआपही (उभयात्मत्वम्) ज्ञानाज्ञान रूपत्व को (प्रब्रवीति) कहती है (अतः) इस कारण (आत्मा) आत्मा (खद्योतः, इव) पटवीजनेकी समान (चिज्जड़तनुः) चेतन और जड़स्वभाव (सम्मतः) माना गया है ॥ ५६६ ॥ ५६७ ॥ ५६८ ॥

भावार्थ-आत्मा ज्ञानाज्ञान स्वरूप है, इस विषयमें भट्टमत वाले युक्ति देते हैं, कि-यदि केवल अज्ञानको ही आत्मा माना जाय तो-मैं अज्ञ हूँ, मैं नहीं जानता इस अज्ञानका ज्ञान कैसे होगा ? जब अज्ञानविषयक ज्ञान होता है तब केवल अज्ञानको आत्मा नहीं कहा जासकता, किन्तु ज्ञानाज्ञानको ही आत्मा कहना चाहिये, मैं सुखसे सोया, मुझे कुछ भी नहीं मालूम हुआ, ऐसा अज्ञानविषयक ज्ञान जागे हुए मनुष्योंमें देखने में आता है । प्रज्ञानघन ही आनन्दमय है, यह श्रुति स्वयं आत्माको ज्ञान अज्ञान उभयरूप कहती है, इसलिये आत्मा खद्योत (पटवीजने) की समान चैतन्य और जड़स्वभाव है अर्थात् जैसे पटवीजना क्षणभर को प्रकाश कर देता है इसलिये चेतन है और फिर अगले क्षणमें उसका प्रकाश नहीं रहता इसलिये वह जड़ भी है, इस प्रकार ही ज्ञान और अज्ञान दोनोंका अनुभव होनेसे आत्मा ज्ञानाज्ञानरूप है ॥ ५६६ ॥ ५६७ ॥ ५६८ ॥

शून्यात्मवादः

न केवलाज्ञानमयः घटकुड्यादिवज्जड़ः ।
इति निश्चयमेतेषां दूषयत्यपरो जड़ः ॥ ५६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-[आत्मा] आत्मा (घटकुड्यादिवत्) घड़े दीवार आदिकी समान (जड़ः) अचेतन (केवलाज्ञानमयः) केवल अज्ञानमय (न) नहीं है (इति) ऐसा कहता हुआ (अपरः) दूसरा (जड़ः) मूढ़ (एतेषाम्) इनके (निश्चयम्) सिद्धान्तको (दूषयति) दूषित करता है ॥ ५६९ ॥

भावार्थ-घट दीवार आदिकी समान जड़, केवल अज्ञानमात्र आत्मा नहीं हो सकता, ऐसा कहता हुआ दूसरा मूढ़ पुरुष भट्टमतवादीके सिद्धान्तमें दोष दिखाता है ॥ ५६९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ज्ञानाज्ञानमयस्त्वात्मा कथं भवितुमर्हति।
परस्परविरुद्धत्वात्तेजस्तिमिरवत्तयोः ॥ ५७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(तु) किन्तु (तेजस्तिमिरवत्) तेज और अन्धकार की समान (तयोः) उनके (परस्परविरुद्धत्वात्) आपसमें विरुद्ध होनेके कारण (ज्ञानाज्ञानमयः) ज्ञान अज्ञानमय (आत्मा) आत्मा (कथम्) कैसे (भवितुं, अर्हति) होसकता है ॥ ५७० ॥

भावार्थ-परन्तु प्रकाश और अन्धकारकी समान ज्ञान अज्ञान परस्पर विरोधी हैं, दोनों एकत्र रह ही नहीं सकते, फिर आत्मा ज्ञानाज्ञानरूप कैसे हो जायगा ?

सामानाधिकरण्यं वा संयोगो वा समाश्रयः।
तमःप्रकाशवज्ज्ञानाज्ञानयोर्न हि सिध्यति ॥ ५७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) क्योंकि (तमःप्रकाशवत्) अन्धकार और प्रकाशकी समान (ज्ञानाज्ञानयोः) ज्ञान और अज्ञानका (सामानाधिकरण्यम्) एक अधिकरणमें होना (वा) या (संयोगः) संयोग (वा) या (समाश्रयः) समान आश्रय (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ५७० ॥

भावार्थ-अन्धकार और प्रकाशकी समान ज्ञान और अज्ञानका एक अधिकरण नहीं होसकता अर्थात् जहाँ अन्धकार रहे वहाँ ही प्रकाश भी रहे या जहां ज्ञान रहे वहां ही अज्ञान भी रहे यह नहीं होसकता अथवा इनका संयोग अथवा एक आश्रय भी नहीं होसकता ॥ ५७१ ॥

अज्ञानमपि विज्ञानं बुद्धिर्वाऽपि च तद्गुणाः।
सुषुप्तौ नोपलभ्यन्ते यत्किञ्चिदपि चापरम् ॥ ५७२ ॥
मात्रादिलक्षणं किन्तु शून्यमेवोपलभ्यते।
सुषुप्तौ नान्यदस्त्येव नाऽहमप्यासमित्यनु ॥ ५७३ ॥
सुप्तोत्थितजनैः सर्वैः शून्यमेवानुस्मर्यते।
यत्ततः शून्यमेवात्मा न ज्ञानाज्ञानलक्षणः ॥ ५७४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अज्ञानम्) ज्ञानाभाव-विपर्यय (ज्ञानं, अपि) ज्ञान भी (अपि वा) या (बुद्धिः) ज्ञान (च) और (तद्गुणाः) ज्ञान और अज्ञान के गुण (सुषुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (न) नहीं (उपलभ्यन्ते) पाये जाते हैं (च)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अथवा (अपरम्) और (यत्किञ्चित्, अपि) जो कुछ भी (मात्रादिलक्षणम्) प्रमाता आदिरूप (किं, नु) क्या होता है ? (शून्यं एव) शून्य ही (उपलभ्यते) पायाजाता है (सुषुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (अन्यत्) और कुछ (न-अस्ति-एव) होता ही नहीं (अहं, अपि) मैं भी (न) नहीं (आसम्) था (यत्) क्योंकि (इति) ऐसा (अनु) पीछे (सर्वैः) सब (सुप्तोत्थितजनैः) सोकर उठे हुए मनुष्यों करके (शून्यं, एव) शून्य ही (अनुस्मर्यते) फिर स्मरण कियाजाता है (ततः) तिससे (शून्यम्, एव) शून्य ही (आत्मा) आत्मा है (ज्ञानाज्ञान-लक्षणः) ज्ञान अज्ञानरूप (न) नहीं है ॥ ५७२ ॥ ५७३ ॥ ५७४ ॥

भावार्थ—'मैं नहीं जानता' ऐसे अज्ञानके विषयका ज्ञान, भावविषयक ज्ञान और इनके धर्म अर्थात् ज्ञानका धर्म प्रकाश तथा अज्ञानका धर्म आवरण सुषुप्ति-कालमें प्रतीत नहीं होते और जो कुछ प्रमाता, प्रमेय, प्रमिति आदि हैं वह भी शून्य-रूप ही होता है, क्योंकि—सुषुप्तिकालमें और कोई वस्तु नहीं थी, मैं भी नहीं था, ऐसा सोकर उठेहुए सब ही मनुष्योंको स्मरण होता है, इसलिये शून्य ही आत्मा है, ज्ञानाज्ञानरूप आत्मा नहीं होसकता ॥ ५७२ ॥ ५७३ ॥ ५७४ ॥

वेदेनाप्यसदेवेदमग्र आसीदिति स्फुटम् ।
निरूप्यते यतस्तस्माच्छून्यस्यैवात्मता मता ॥ ५७५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यतः) क्योंकि (वेदेन, अपि) वेदके द्वारा भी (इदम्) यह जगत् (अग्रे) सृष्टिसे पहिले (असत्, एव) शून्य ही (असीत्) था (इति) ऐसा (स्फुटम्) स्पष्ट (निरूप्यते) वर्णन कियाजाता है (तस्मात्) तिससे (शून्यस्य) शून्यका (आत्मता) आत्मा होना (मता) माना गया है ५७५

भावार्थ—केवल युक्तिसे ही शून्यका आत्मा होना सिद्ध नहीं है, किन्तु इस विषयमें वेदका प्रमाण भी है—यह जगत् उत्पत्तिसे पहिले असत् (शून्य) था, इसप्रकार श्रुतिने भी शून्यका आत्मा होना स्पष्ट कहा है, अतः शून्यको ही आत्मा कहना चाहिये ॥ ५७५ ॥

असन्नेव घटः पूर्वं जायमानः प्रदृश्यते ।
न हि कुम्भः पुरैवान्तः स्थित्वोदेति बहिर्मुखः ॥ ५७६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पूर्वम्) पहिले (असत्, एव) अभाववाला ही (घटः) घड़ा (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (प्रदृश्यते) दीखता है (हि) क्योंकि—(पुरा, एव) पहिले ही (कुम्भः) घड़ा (अन्तः) मट्टी के भीतर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(स्थित्वा) स्थित होकर (बहिर्मुखः) बाहर को मुख किये हुए (न) नहीं (उदेति) उदित होता है ॥ ५७६ ॥

भावार्थ-पहले घट नहीं था और उत्पन्न होकर लोगों के नेत्रोंके सामने आ-जाता है, उत्पत्ति से पहिले घड़ा मट्टी के भीतर धरा हुआ था और उत्पत्तिके समय वह बाहर को मुख करके निकल पड़ा हो, ऐसा नहीं होता है ॥ ५७६ ॥

यत्तस्मादसतः सर्वं सदिदं समजायत ।
ततः सर्वात्मना शून्यस्यैवात्मत्वं समर्हति ॥ ५७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) क्योंकि [एवं, अस्ति] ऐसा है (तस्मात्) तिससे (इदम्) यह (सर्वम्) सब (सत्) सत् वस्तु (असतः) शून्य से (समजायत) उत्पन्न हुआ था (ततः) तिससे (सर्वात्मना) सब प्रकार (शून्यस्य, एव) शून्यका ही (आत्मत्वम्) आत्मा होना (समर्हति) हो सकता है ।५७६।

भावार्थ-क्योंकि-घड़ा मट्टीके भीतरसे धराहुआ नहीं निकल आता है, इसलिये यह सब दीखने वाले घट पट आदि सत् पदार्थ शून्यसेही उत्पन्न हुए हैं, इस लिये सब प्रकारसे शून्य ही आत्मा हो सकता है ॥ ५७७ ॥

इत्येवं पण्डितंमन्यैः परस्परविरोधिभिः ।
तत्तन्मतानुरूपाल्पश्रुतियुक्त्यनुभूतिभिः ॥ ५७८ ॥
निर्णीतमतजातानि खण्डितान्येव पण्डितैः ।
श्रुतिभिश्चाप्यनुभवैर्बाधकैः प्रतिवादिनाम् ॥ ५७९ ॥
यतस्तस्माच्च पुत्रादेः शून्यांतस्य विशेषतः ।
सुसाधितमनात्मत्वं श्रुतियुक्त्यनुभूतिभिः ॥ ५८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि (इति) यह (एवम्) इस प्रकार (परस्परविरोधिभिः) आपसमें विरोध रखने वाले (पण्डितंमन्यैः) पण्डितमानी पुरुषोंके द्वारा (तत्तन्मतानुरूपाल्पश्रुतियुक्त्यनुभूतिभिः) उन २ मतोंके अनुकूल थोड़ से वेदप्रमाण युक्ति और अनुभवों करके (प्रतिवादिनाम्) प्रतिवादियोंके (निर्णीतमतजातानि) निर्णय किये हुए सकल मत (पण्डितैः) पण्डितों करके (श्रुतिभिः) श्रुतियोंके द्वारा (अनुभवैः) अनुभवोंके द्वारा (च) और (बाधकैः, अपि) बाधक तर्कोंके द्वारा भी (खण्डितानि, एव) खण्डित कर ही दिये गये

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

हैं (तस्मात्) तिससे (श्रुतियुक्त्यनुभूतिभिः) श्रुति युक्ति और अनुभवों के द्वार (पुत्रादेः) पुत्रसे लेकर (शून्यांतस्य,तु) शून्यपर्यंतका तो (अनात्मत्वम्) आत्मा न होना (विशेषतः) विशेषरूपसे (सुसाधितम्) उत्तम प्रकारसे सिद्ध करदिया गया ॥ ५७८ ॥ ५७९ ॥ ५८० ॥

भावार्थ-इसप्रकार आपसमें कलह करनेवाले पण्डिताभिमानी पुरुषोंने जो अपने २ मतके अनुकूल कुछ वेदप्रमाण युक्तियें और अनुभव दिखाकर अपने २ मतका निर्णय किया था, विद्वानोंने श्रुति युक्ति अनुभव और बाधक तर्कके द्वारा प्रतिवादियोंके उन सब मतोंका खण्डन करदिया है। इसलिये श्रुति, युक्ति और अनुभवके द्वारा पुत्रसे लेकर शून्य पर्यंत सब पदार्थोंका आत्मा न होना विशेष रूपसे सिद्ध करदिया ॥ ५७८ ॥ ५७९ ॥ ५८० ॥

न हि प्रमाणांतरबाधितस्य याथार्थ्यमङ्गीक्रियते महद्भिः ।
पुत्रादिशून्यान्तमनात्मतत्वमित्येव विस्पष्टमतः सुजातम् ५८१

अन्वय और पदार्थ-(महद्भिः) महात्माओं करके (प्रमाणान्तरबाधितस्य) अन्य प्रमाण के द्वारा बाधितवस्तु का (याथार्थ्यम्) यथार्थपना (नहि) नहीं (अंगीक्रियते) स्वीकार किया जाता है (अतः) इस लिये (पुत्रादिशून्यान्तः) पुत्रसे लेकर शून्य पर्यंत (अनात्मतत्त्वम्) आत्मतत्त्व नहीं है (इति, एव) ऐसा ही (विस्पष्टम्) स्पष्ट रूपसे (सुजातम्) सिद्ध होगया ॥ ५८१ ॥

भावार्थ-जिस वस्तुमें कोई प्रमाण बाधा डालदेय उसको महापुरुष यथार्थ वस्तु नहीं मानते, इसलिये पुत्रसे लेकर शून्य पर्यंत कोई भी आत्म पदार्थ नहीं है, यह स्पष्टरूपसे निर्णय होगया ॥ ५८१ ॥

शिष्य उवाच-

सुषुप्तिकाले सकले विलीने शून्यं विना नान्यदिहोपलभ्यते ।
शून्यं त्वनात्मा न ततः परः कोऽप्यात्माभिधानस्त्वनुभूयतेऽर्थः ५८२

अन्वय और पदार्थ-(शिष्यः) शिष्य (उवाच) बोला (सुषुप्तिकाले) सुषुप्तिकालमें (समस्ते) सकलके (विलीने) विलीन होजाने पर (इह) इस संसारमें (शून्यम्, विना) शून्यके सिवाय (अन्यत्) और कुछ (न) नहीं (उपलभ्यते) भास होता है (तु) किन्तु (शून्यम्) शून्य (अनात्मा) आत्मा नहीं है (ततः) तिससे (परः) अन्य (आत्माभिधानः) आत्मा नामवाला

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(कोऽपि) कोई भी (अर्थः, तु) पदार्थ तो (न) नहीं (अनुभूयते) अनुभव में आता है ॥ ५८२ ॥

(भावार्थ)–शिष्यने बूझा, कि–जब सुषुप्तिके समय सब पदार्थ कारणमें लय होजाते हैं, इस जगत्में शून्यके सिवाय और कोई वस्तु उपलब्ध नहीं होती, परन्तु शून्य तो आत्मा है नहीं, और शून्यके सिवाय आत्मा नामक और किसी पदार्थ का अनुभव नहीं होता, इससे सिद्ध होता है कि–आत्मा नामका कोई पदार्थ है ही नहीं ॥ ५८२ ॥

यद्यस्ति आत्मा किमु नोपलभ्यते
सुप्तौ यथा तिष्ठति किं प्रमाणम् ।
किं लक्षणोऽसौ स कथं न बाध्यते,
प्रबाध्यमानेष्वहमादिषु स्वयम् ॥ ८३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(च) और (यदि) जो (आत्मा) स्वरूप (अस्ति) है [तर्हि] तो (किमु) क्यों (न) नहीं (उपलभ्यते) जाना जाता है (सुप्तौ) सुषुप्तिमें (यथा) जिसप्रकार (तिष्ठति) विद्यमान रहता है [तत्र] उसमें (किम्) क्या (प्रमाणम्) प्रमाण है (असौ) यह आत्मा (किंलक्षणः) किस लक्षण वाला है (अहमादिषु) अहङ्कार आदिके (प्रबाध्यमानेषु) बाधित होने पर (सः) वह आत्मा (स्वयम्) आप (कथम्) क्यों (न) नहीं (बाध्यते) बाधित होता है ? ॥ ५८३ ॥

(भावार्थ)—यदि आत्मा कोई पदार्थ है तो वह प्रतीत क्यों नहीं होता सुषुप्तिकालमें आत्मा रहता है, इसका भी प्रमाण क्या है ? आत्माका लक्षण क्या है ? अहङ्कार आदिके बाधित होने पर भी आत्मा स्वयं बाधित क्यों नहीं होता ? ।

एतत्संशयजातं मे हृदयग्रन्थिलक्षणम् ।
छिन्धि युक्तिमहाखड्गधारया कृपया गुरो ॥ ५८४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(गुरो) हे गुरुदेव ! (मे) मेरे (हृदयग्रन्थिलक्षणम्) हृदयकी गाँठरूप (एतत्) इस (संशयजातम्) संदेहोंके समूहको (कृपया) कृपा करके (युक्तिमहाखड्गधारया) युक्तिरूप बड़ी भारी तलवारकी धारसे (छिन्धि) काट दीजिये ॥ ५८४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-हे गुरुदेव ! आप कृपा करके मेरे अन्तःकरण की गाँठरूप इन सकल सन्देहोंको युक्तिरूप बड़ीभारी तलवारकी धारसे काट दीजिये ॥ ५८४ ॥

गुरुरुवाच—

अतिसूक्ष्मतरः प्रश्नस्तवाऽयं सदृशो मतः ।
सूक्ष्मार्थदर्शनं सूक्ष्मबुद्धिष्वेव प्रदृश्यते ॥ ५८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गुरुः) गुरु (उवाच) बोले (अयम्) यह (अतिसूक्ष्मतरः) अत्यन्त ही सूक्ष्म (प्रश्नः) प्रश्न (तव) तेरे (सदृशः) तुल्य (मतः) माना गया है (सूक्ष्मबुद्धिषु एव) सूक्ष्मबुद्धियोंमें ही (सूक्ष्मार्थदर्शनम्) सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान (प्रदृश्यते) देखनेमें आता है ॥ ५८५ ॥

भावार्थ-गुरुदेवने उत्तर दिया, कि-यह अति-सूक्ष्म प्रश्न तेरे योग्य ही है, क्योंकि-सूक्ष्म-पदार्थका ज्ञान सूक्ष्मबुद्धि पुरुषोंमें ही देखनेमें आता है ॥ ५८५ ॥

शृणु वक्ष्यामि सकलं यद्यत्पृष्टं त्वयाऽधुना ।
रहस्यं परमं सूक्ष्मं ज्ञातव्यञ्च मुमुक्षुभिः ॥ ५८६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्वया) तूने (अधुना) इस समय (सूक्ष्मम्) दुरवगाह (च) और (मुमुक्षुभिः) मुमुक्षुओं करके (ज्ञातव्यम्) जानने योग्य (परमम्) श्रेष्ठ (रहस्यम्) तत्त्व (यत् ; यत्) जो जो (पृष्टम्) पूछा है (सकलम्) सब (वक्ष्यामि) कहूँगा (शृणु) सुन ॥ ५८६ ॥

(भावार्थ)-हे शिष्य ! तूने इस समय सूक्ष्म और जिसको मुमुक्षु पुरुष भी जानना चाहते हैं ऐसा जो कुछ परम गुप्त तत्त्व पूछा है, उस सबको मैं कहता हूं, सुन—

शून्यवादनिरासः ।

बुद्ध्यादिसकलं सुप्तावनुलीनं स्वकारणे ।
अव्यक्ते वटवद्बीजे तिष्ठत्यविकृतात्मना ॥ ८७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (बीजे) बीजमें (वटवत्) वटके वृक्षकी समान (स्वकारणे) अपनी उपादान कारण (अव्यक्ते) मायामें (अनुलीनम्) लयको प्राप्त हुआ (बुद्ध्यादि) बुद्धि आदि (सकलम्) सब (अविकृतात्मना) अविकारीभावसे (तिष्ठति) स्थित होता है ॥ ५८७ ॥

(भावार्थ)-जैसे बीजमें बड़का वृक्ष अव्यक्तभावसे (दीखता नहीं इस प्रकारसे) रहता है, ऐसे ही सुषुप्तिके समय बुद्धि आदि सब पदार्थ अपनी उपादान कारण मायामें लीन होकर अविकारी अवस्थामें विद्यमान रहते हैं ॥ ५८७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तिष्ठत्येव स्वरूपेण न तु शून्यायते जगत् ।
क्वचिदंकुररूपेण क्वचिद्बीजात्मना वटः ॥
कार्यकारणरूपेण यथा तिष्ठत्यदस्तथा ॥ ८८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(जगत्) प्रपञ्च (स्वरूपेण) अपने रूपसे (तिष्ठति, एव) निश्चय ही स्थित रहता है (तु) किन्तु (शून्यायते, न) शून्य नहीं होजाता है (यथा) जैसे (वटः) वटवृक्ष (क्वचित्) कहीं (अंकुररूपेण) अंकुररूपसे (क्वचित्) कहीं (बीजात्मना) बीजरूपसे (तथा) तैसे ही (अदः) यह जगत् (कार्यकारणरूपेण) कार्य-कारण-रूपसे (तिष्ठति) स्थित रहता है ॥ ५८८ ॥

भावार्थ—जगत् अपने रूपमें विद्यमान रहता है, कभी भी शून्यरूपसे प्रतीत नहीं होता है। जैसे वड़का वृक्ष कहीं अंकुररूपमें रहता है तो कहीं बीजरूपमें स्थित रहता है, ऐसे ही यह जगत् कभी तो कार्य (व्यक्त) रूपमें और कभी कारण (अव्यक्त) रूपमें विद्यमान रहता है ॥ ५८८ ॥

अव्याकृतात्मनाऽवस्थां जगतो वदति श्रुतिः ।
सुषुप्त्यादिषु तद्भेदं तर्ह्यव्याकृतमित्यसौ ॥ ८६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तर्हि) तब [जगत्] प्रपञ्च (अव्याकृतम्) नाम रूपसे अप्रकट [आसीत्] था (इति) ऐसा (असौ) यह (श्रुतिः) श्रुति (अव्याकृतात्मना) अव्यक्त रूपसे (जगतः) जगत्के (अवस्थाम्) परिणामको (सुषुप्त्यादिषु) सुषुप्ति आदिके समय (तद्भेदम्) परिणामोंके भेदको (वदति) कहती है ॥

भावार्थ–यह जगत् उत्पत्तिसे पहले किसी नाम या रूपसे प्रकट नहीं था, यह श्रुति अव्याकृत कहिये स्पष्ट न दीखनेवाले रूपमें जगत्की अवस्थाको और सुषुप्ति आदिके समय उस अवस्थाके भेदोंको कहती है ॥

इममर्थमविज्ञाय निर्णीतं श्रुतियुक्तिभिः ।
जगतो दर्शनं शून्यमिति प्राहुरतद्विदः ॥ ५९० ॥

अन्वय और पदार्थ–(अतद्विदः) इस तत्त्वको न जाननेवाले (इमम्) इस (अर्थम्) तात्पर्यको (अविज्ञाय) न जानकर (श्रुतियुक्तिभिः) वेद और तर्कके द्वारा (निर्णीतम्) निर्णय किये हुए (जगतः) जगत्के (दर्शनम्) ज्ञानको (शून्यम्) शून्य है (इति) ऐसा (प्राहुः) कहते हैं ॥ ५९० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(भावार्थ)—जो जगत्की अव्यक्त अवस्थाके तत्त्वको नहीं जानते वे अज्ञानी पुरुष, इस अभिप्रायको न समझ कर श्रुति और युक्तियोंके द्वारा निर्णय किये हुए जगत्के सत्यत्वदर्शनको शून्य कहते हैं ॥ ५६० ॥

नासतः सत उत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते ।
उदेति नरशृंगात् किं खपुष्पात् किं भविष्यति ॥६१॥

अन्वय और पदार्थ—(असतः) असत्से (सतः) सत्की (उत्पत्तिः) जन्म (न) नहीं (श्रूयते) सुनाजाता है (च) और (न) नहीं (दृश्यते) देखाजाता है (नरशृङ्गात्) मनुष्यके सींगसे (किम्) क्या (उदेति) जन्मता है (खपुष्पात्) आकाशके फूलसे (किम्) क्या (भविष्यति) होगा ॥ ५६१ ॥

भावार्थ—असत् (शून्य वा अवस्तु) से सत् (वस्तु) की उत्पत्ति न कहीं सुननेमें आती है और न कहीं देखनेमें आती है, मनुष्यके सींगसे क्या कुछ उत्पन्न होता है ? या आकाशके फूलसे क्या कुछ पदार्थ उत्पन्न होगा ? ॥५६१॥

प्रभवति नहि कुम्भोऽविद्यमानो मृदश्चेत्,
प्रभवतु सिकताया वाऽथवा वारिणो वा ।
न हि भवति च ताभ्यां सर्वथा क्वापि तस्मात्,
यत उदयति योऽर्थोऽस्त्यत्र तस्य स्वभावः ॥ ६२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हि) निश्चय (अविद्यमानः) पहले नहीं था ऐसा (कुम्भः) घट (मृदः) मट्टीसे (न) नहीं (प्रभवति) उत्पन्न होता है (चेत्) यदि [एवं, भवेत्] ऐसा हो [तर्हि] तो (सिकतायाः) बालूसे (अथवा) या (वारिणः) जलसे (प्रभवतु) उत्पन्न होजाय (ताभ्याम्) उनसे (सर्वथा) सब प्रकार (क्वापि) कहीं भी (न हि) नहीं (भवति) होता है (तस्मात्) तिससे (यः) जो (अर्थः) पदार्थ (यतः) जिससे (उदयति) उत्पन्न होता है (अत्र) इसमें (तस्य) उसका (स्वभावः) स्वभाव (अस्ति) है ॥५६२॥

भावार्थ—घट यदि अव्यक्त भावसे मृत्तिकामें नहीं होता तो कभी भी मृत्तिका से उत्पन्न नहीं होता, यदि कारणमें न होकर ही उत्पन्न हुआ करता तो बालुका या जलसे भी उत्पन्न होजाना चाहिये था, बालुका या जलसे घटको उत्पन्न होता हुआ कहीं भी नहीं देखते, इसलिये जो (घट आदि) वस्तु जिस (मृत्तिका)से उत्पन्न होती है, उसमें उसका स्वभाव (शक्ति, अनागत-अवस्था) विद्यमान है ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्यथा विपरीतं स्यात्कार्यकारणलक्षणम् ।
नियतं सर्वशास्त्रेषु सर्वलोकेषु सर्वतः ॥६३॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्यथा) यदि ऐसा न हो तो (विपरीतम्) कुछ का कुछ (स्यात्) होजाय (सर्वतः) सब समय (सर्वशास्त्रेषु) सब शास्त्रोंमें (सर्वलोकेषु) सब लोकोंमें (कार्यकारणलक्षणम्) कार्य और कारणका लक्षण (नियतम्) नियत है ॥ ५६३ ॥

भावार्थ-जिसमें जिस वस्तुका स्वभाव विद्यमान है वह उससे ही उत्पन्न होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो विपरीत भाव होजाना चाहिये, अर्थात् मृत्तिकासे दही और दूधसे घड़ा उत्पन्न होजाना चाहिये, ऐसा नहीं होता है, किन्तु सब समय सब शास्त्र और सब लोकोंमें कार्य और कारणका स्वरूप नियममें बाँधा गया है अर्थात् मृत्तिकासे घट ही उत्पन्न होगा, दधि नहीं दूधसे दही ही उत्पन्न होगा, घट नहीं, ऐसा अटल नियम है ॥ ५६३ ॥

कथमसतः सज्जायेतेति श्रुत्या निषिध्यते ।
असतः सज्जननं नो घटते मिथ्यैव शून्यशब्दार्थः ॥५६४॥

अन्वय और पदार्थ-(असतः) शून्यसे (सत्) वस्तु (कथम्) कैसे (जायेत) उत्पन्न होजायगी (इति) इस प्रकार (श्रुत्या) श्रुति करके (निषिध्यते) निषेध कियाजाता है (असतः, एव) शून्यसे ही (सत्-जननम्) सत् वस्तुका उत्पन्न होना (न) नहीं (घटते) हो सकता है (शून्यशब्दार्थः) शून्य पदार्थ (मिथ्या, एव) मिथ्या ही है ॥ ५६४ ॥

भावार्थ-असत् (शून्य) से सत् (वस्तु) की उत्पत्ति कैसे होजायगी, इसप्रकार श्रुति असत्से सत्की उत्पत्तिका निषेध करती है, इसलिये असत्से सत् वस्तुकी उत्पत्ति नहीं होसकती, शून्य नामक पदार्थ तो मिथ्या है अर्थात् कुछ है ही नहीं ॥ ५६४ ॥

अव्यक्तशब्दिते प्राज्ञे सत्यात्मन्यत्र जाग्रति ।
कथं सिध्यति शून्यत्वं तस्य भ्रान्तशिरोमणे ॥ ५६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भ्रान्तशिरोमणे) हे अज्ञानियोंके शिरोभूषण (अत्र) अन्य—सुषुप्तिकालमें (अव्यक्तशब्दिते) अव्यक्त नामवाले (प्राज्ञे) जीवात्माके (जाग्रति) जागने पर (तस्य) उसका (शून्यत्वम्) शून्य होना (कथम्) कैसे (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ५६५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-हे अज्ञानियोंके शिरोमणे ! सुषुप्तिकालमें अव्यक्त नामवाला मात्र (जीवात्मा) जागता हुआ विद्यमान होता है, फिर उसको शून्य (मिथ्या-कुछ है ही नहीं ऐसा) कैसे कहाजा सकता है ? ॥ ५६५ ॥

सुषुप्तौ शून्यमेवेति केन पुंसा तवेरितम् ।
हेतुनाऽनुमितं केन कथं ज्ञातं त्वयोच्यताम् ॥ ५६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुषुप्तौ) सुषुप्तिके समय (शून्यम्, एव) शून्य ही [भवति] होता है (इति) यह (केन) किस (पुंसा) पुरुषने (तव) तुझ को (ईरितम्) कही है (त्वया) तूने (केन) किस (हेतुना) हेतुसे (अनुमितम्) अनुमान किया है (कथम्) कैसे (ज्ञातम्) जाना है (उच्यताम्) कहना चाहिये ॥ ५६६ ॥

भावार्थ-सुषुप्तिके समय केवल शून्य ही होता है, यह बात तुझसे किसने कही है ? तूने कौनसे हेतुसे अनुमान किया है और कैसे जाना है ? यह बता ५६६

इति पृष्टो मूढतमो वदिष्यति किमुत्तरम् ।
सुषुप्तिस्थितशून्यस्य बोद्धा कोन्वात्मनः परः ॥
नैवानुरूपकं लिंगं वक्ता वा नास्ति कश्चन ॥ ५६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इति) इसप्रकार (पृष्टः पूछा हुआ (मूढतमः) अतिमूढ पुरुष (किम्) क्या (उत्तरम्) उत्तर (वदिष्यति) कहेगा (अनुरूपकम्) अनुकूल (लिङ्गम्) हेतु (नैव) कदापि नहीं [अस्ति] है (वा) अथवा (कश्चन) कोई (वक्ता) कहनेवाला (न) नहीं (अस्ति) है (सुषुप्तिस्थित शून्यस्य) सुषुप्ति कालमें विद्यमान शून्यका (बोद्धा) जानने वाला (आत्मनः) आत्मासे (परः) अन्य (कः, नु) कौन [अस्ति] है ॥ ५६७ ॥

भावार्थ-इसप्रकार पूछने पर अति मूढ मनुष्य क्या उत्तर देगा ? कोई अनुकूल हेतु नहीं है अथवा ऐसा कोई बतानेवाला भी नहीं है, सुषुप्तिकालमें विद्यमान शून्यका ज्ञाता आत्माके सिवाय और कौन होसकता है ॥ ५६७ ॥

स्वेनात्मभूतं स्वयमेव वक्ति,
सुषुप्तिकाले स्थितशून्यभावम् ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्र स्वसत्तामनवेद्य मूढः
स्वस्यापि शून्यत्वमयं ब्रवीति ॥ ५९८ ॥

अन्वय और पदार्थ—[जनः] प्राणी (सुषुप्तिकाले) सुषुप्तिके समय (स्वेन) अपने (अनुभूतम्) अनुभव कियेहुए (स्थितशून्यभावम्) विद्यमान शून्यभाव को (स्वयं, एव) अपने आप ही (वक्ति) कहता है (तत्र) उस समय (अयम्) यह (मूढः) मूर्ख (स्वस्य, अपि) अपने भी (सत्ताम्) अस्तित्वको(अनवेद्य) न देख कर (शून्यत्वम्) शून्यरूपत्वको (ब्रवीति) कहता है ॥ ५९८ ॥

भावार्थ—प्राणी अपने सुषुप्तिकालमें स्वयं जो कुछ अनुभव करता है उसको ही विद्यमान शून्यभाव कहता है, उस समय अज्ञानी मनुष्य अपने अस्तित्वको भी नहीं जान पाता, इसलिये केवल शून्यकी ही बात कहता है। तात्पर्य यह है, कि—शून्यवादियोंका कथन है, कि—सुषुप्तिकालमें केवल शून्य ही रहता है, इसलिये शून्य ही आत्मा है। परन्तु सुषुप्तिके समय शून्य ही रहता है अर्थात् कुछ रहता ही नहीं, इस बातका जो अनुभव करता है वह तो शून्यसे भिन्न है, उस शून्य का अनुभव करने वालेको ही आत्मा कहना चाहिये। मूढ पुरुष बुद्धि आदिके अभावको देख कर कहता है, कि—केवल शून्य ही रहता है, परन्तु उसका अनुभव करनेवालेको नहीं जान पाता, वह शून्यका अनुभव करनेवाला ही आत्मा है ॥ ५९८ ॥

अवेद्यमानः स्वयमन्यलोकैः
सौषुप्तिकं धर्ममवैति साक्षात्।
बुद्ध्याद्यभावस्य च योऽत्र बोद्धा,
स एव आत्मा खलु निर्विकारः॥ ५९९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अन्यलोकैः) दूसरे लोगों करके (अवेद्यमानः) जाननेमें न आनेवाला [आत्मा] आत्मा (स्वयम्) अपने आप (साक्षात्) प्रत्यक्षरूपसे (सौषुप्तिकम्) सुषुप्तिकालकी (धर्मम्) अवस्थाको (अवैति) जानता है (अत्र) इस सुषुप्तिकालमें (यः च) जो कोई (बुद्ध्यभावस्य) बुद्धि आदिके अभावका जाननेवाला है (सः, एव) वह ही (खलु) निश्चय (निर्विकारः) विकार—शून्य आत्मा है ॥ ५९९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-दूसरे लोग उस आत्माको नहीं जानसकते परन्तु वह सुषुप्तिकाल की अवस्थाको प्रत्यक्षरूपसे जानता है जो सुषुप्तिकालमें बुद्धि आदिके अभावका अनुभव करता है वह ही निर्विकार आत्मा है ॥ ५९९ ॥

यस्येदं सकलं विभाति महसा तस्य स्वयञ्ज्योतिषः,
सूर्यस्येव किमस्ति भासकमिह प्रज्ञादि सर्वं जडम् ।
न ह्यर्कस्य विभासकं क्षितितले दृष्टं तथैवात्मनो,
नान्यः कोऽप्यनुभासकोऽनुभविता नातः परः कश्चन ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिसके (महसा) तेजके द्वारा (इदम्) यह (सकलम्) सब (विभाति) प्रकाशित होता है (स्वयंज्योतिषः) स्वयंप्रकाशरूप (तस्य) उसका (सूर्यस्य, इव) सूर्य की समान (इह) जगत्में (किम्) क्या (भासकम्) प्रकाशक (अस्ति) है (प्रज्ञादि) बुद्धि आदि (सर्वम्) सब (जडम्) अचेतन है (हि) क्योंकि (क्षितितले) भूतल पर (अर्कस्य) सूर्यका (विभासकम्) प्रकाशक (न) नहीं (दृष्टम्) देखा है (तथा, एव) तैसे ही (आत्मनः) आत्माका (अन्यः) दूसरा (कोऽपि) कोई भी (अनुभासकः) प्रकाशक (न) नहीं है (अतः) इससे (परः) अन्य (कश्चन) कोई (अनुभविता) अनुभव करनेवाला (न) नहीं [अस्ति] है ॥ ६०० ॥

भावार्थ-जिसके तेजसे यह दृश्यमान सब जगत् प्रकाशित होरहा, सूर्यकी समान स्वयंप्रकाश उस आत्माका प्रकाशक क्या कोई और हो सकता है ? बुद्धि आदि सब ही वस्तु जड़ हैं, उनका प्रकाशक एकमात्र आत्मा ही है, भूतल पर जैसे सूर्य को प्रकाशित करनेवाला कोई देखनेमें नहीं आता, ऐसे ही आत्माका भी कोई प्रकाशक नहीं है और आत्माके सिवाय अनुभव करनेवाला भी कोई नहीं है ॥

येनानुभूयते सर्वं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
विज्ञातारमिमं को नु कथं वेदितुमर्हति ॥ ६०१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(येन) जिस करके (जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु) जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिकालमें (सर्वम्) सब (अनुभूयते) अनुभव किया जाता है (कः, नु) कौन (इमम्) इस (विज्ञातारम्) जाननेवालेको (कः) कौन (कथम्) कैसे (वेदितुम्) जाननेको (अर्हति) योग्य होता है ॥ ६०१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके समय सकल वस्तुओंका अनुभव करता है उस ज्ञाताका कौन कैसे अनुभव कर सकता है ? ॥ ६०१ ॥

सर्वस्य दाहको वह्निर्वह्नेर्नान्योऽस्ति दाहकः ।

यथा तथात्मनो ज्ञातुर्ज्ञाता कोऽपि न दृश्यते ॥ ६०२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (वह्निः) अग्नि (सर्वस्य) सबका (दाहकः) जलानेवाला है (वह्नेः) अग्निका (दाहकः) जलानेवाला (अन्यः) और (न) नहीं (अस्ति) है (तथा) तैसे ही (ज्ञातुः) जाननेवाले (आत्मनः) आत्माका (ज्ञाता) जानने वाला (कोऽपि) कोई भी (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है ॥ ६०२ ॥

भावार्थ-जैसे अग्नि सब वस्तुओंको जलाता है, परन्तु अग्निको जलानेवाला दूसरा कोई नहीं है, ऐसे ही आत्मा सबका ज्ञाता है परन्तु आत्माका ज्ञाता दूसरा कोई भी नहीं है ॥ ६०२ ॥

उपलभ्येत केनाऽयं ह्युपलब्धा स्वयं ततः ।

उपलब्ध्यन्तराभावान्नायमात्मोपलभ्यते ॥ ६०३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयम्) यह (केन) किस करके (उपलभ्येत) जानाजाय (हि) क्योंकि (स्वयम्) अपने आप (उपलब्धा) ज्ञाता है (ततः) तिससे (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (उपलब्ध्यन्तराभावात्) अन्य उपलब्धि के न होने से (न) नहीं (उपलभ्यते) जानाजाता है ॥ ६०३ ॥

भावार्थ-इस आत्माको कौन जाने ? क्योंकि-आत्मा स्वयं ही ज्ञाता है, इस लिये जाननेकी वस्तु कोई और न होनेसे आत्मा किसीके ज्ञानका विषय नहीं है ॥

बुद्ध्यादिवेद्यविलयादयमेक एव

सुप्तो न पश्यति शृणोति न वेत्ति किञ्चित् ।

सौषुप्तिकस्य तमसः स्वयमेव साक्षी

भूत्वाऽत्र तिष्ठति सुखेन च निर्विकल्पः ॥ ६०४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (एकः) एक (बुद्ध्यादिवेद्यविलयात्) बुद्धि आदि जानने योग्य वस्तुका लय होनेसे (सुप्तो) सुषुप्तिके समय (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (पश्यति) देखता है [न] नहीं (शृणोति) सुनता है (न) नहीं

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(वेत्ति) जानता है (अत्र) इस अवस्थामें (सौपुप्तिकस्य) सुषुप्ति अवस्थाके (तमसः) अज्ञानका (स्वयम् , एव) आप ही (साक्षी) द्रष्टा (भूत्वा) होकर (निर्विकल्पः) संकल्प-विकल्प-रहित [सन्] होता हुआ (सुखेन) सुखसे (तिष्ठति) स्थित रहता है ॥ ६०४ ॥

भावार्थ—सुषुप्तिके समय बुद्धि, मन, देह, इन्द्रिय आदि अपने २ कारणमें लीन होजाते हैं, इसलिये अकेला आत्मा ही होता है, वह न कुछ देखता है, न सुनता है, न जानता है, इस अवस्थामें आत्मा स्वयं सुषुप्तिकालके अज्ञानका साक्षी होकर सङ्कल्प विकल्पसे शून्य होता हुआ सुखसे रहता है ॥ ६०४ ॥

सुषुप्तावात्मसद्भावे प्रमाणं पण्डितोत्तमाः ।
विदुः स्वप्रत्यभिज्ञानमाबालवृद्धसम्मतम् ॥६०५॥

अन्वय और पदार्थ—(पण्डितोत्तमाः) श्रेष्ठ पण्डित (सुषुप्तौ) सुषुप्तिके समय (आत्मसद्भावे) आत्माके अस्तित्वमें (आबालवृद्धसम्मतम्) बालकसे लेकर वृद्धपर्यंत अभिमत (स्वप्रत्यभिज्ञानम्) अपने प्रत्यभिज्ञानको (प्रमाणम्) प्रमाण (विदुः) जानते हैं ॥ ६०५ ॥

भावार्थ—प्रधान २ विद्वान् सुषुप्तिके समय आत्माके अस्तित्वमें बालकसे लेकर वृद्ध तकको जिसका अनुभव होता है ऐसे प्रत्यभिमान (जो मैं देख रहा था वही मैं स्पर्श कर रहा हूँ ऐसे अबाधित ज्ञान) का प्रमाण देते हैं ॥ ६०५ ॥

प्रत्यभिज्ञायमानत्वाल्लिंगमात्रानुमापकम् ।
स्मर्यमाणस्य सद्भावः सुखमस्वाप्समित्ययम् ॥ ६०६ ॥

अन्वय और पदार्थ—[आत्मनः] आत्माके (प्रत्यभिज्ञायमानत्वात्) निरन्तर ज्ञायमान होनेसे [आत्मतत्त्वम्] आत्मस्वरूप (लिङ्गमात्रानुमापकम्) हेतुमात्रके द्वारा अनुमान करानेवाला [अहम्] मैं (सुखम्) सुखपूर्वक (अस्वाप्सम्) सोया (इति) इसप्रकार (स्मर्यमाणस्य) स्मरण कियेजाते हुए पदार्थका (अयम्) यह (सद्भावः) अस्तित्व [ज्ञायते] जानाजाता है ॥ ६०६ ॥

भावार्थ-आत्माका प्रत्यभिमान अर्थात् जो मैं देख रहा था वही मैं स्पर्श कर रहा हूँ ऐसा स्मरण होता है, इस कारणसे आत्माका अनुमान किया जाता है। मैं सुखपूर्वक सोया, इसप्रकार स्मरण कीहुई वस्तुका अस्तित्व जाननेमें आता है ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पुराऽनुभूतो नो चेत्तु स्मृतेरनुदयो भवेत् ।
इत्यादितर्कयुक्तिश्च सद्भावे मानमात्मनः ॥ ६०७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चेत्) जो (पुरा) पहले (अनुभूतः) अनुभव क्रिया हुआ (नो) नहीं [भवेत्] हो [तर्हि] तब तो (स्मृतेः) स्मृतिका (अनुदयः) अनुत्पत्ति (भवेत्) होय (इत्यादितर्कयुक्तिः, च) ऐसे तर्ककी योजना भी (आत्मनः) आत्माके (सद्भावे) होनेमें (मानम्) प्रमाण है ॥ ६०७ ॥

भावार्थ-यदि पहले आत्माका अनुभव न होता, तो कभी भी उसकी स्मृति नहीं होती, इस तर्ककी योजनासे भी आत्माका सद्भाव सिद्ध होता है ॥६०७॥

यत्रात्मनोऽकामयितृत्वबुद्धिः, स्वप्नानपेक्षाऽपि च तत् सुषुप्तम् ।
इत्यात्मसद्भाव उदीर्यतेऽत्र श्रुत्याऽपि तस्माच्छ्रुतिरत्र मानम् ६०८

अन्वय और पदार्थ—(यत्र) जिस अवस्थामें (आत्मनः) आत्माकी (अकामयितृत्वबुद्धिः) कामनावान् होनेकी बुद्धि नहीं [भवति] होती है (अपि च) और (स्वप्नानपेक्षा) स्वप्नकी अपेक्षा नहीं [भवति] होती है (तत्) वह (सुषुप्तम्) सुषुप्ति अवस्था है (इति) इसप्रकार (श्रुत्या, अपि) श्रुति करके भी (अत्र) इस सुषुप्तिकालमें (आत्मसद्भावः) आत्माका होना (उदीर्यते) कहाजाता है (तस्मात्) तिससे (अत्र) इस विषयमें (श्रुतिः) वेद (प्रमाणम्) प्रमाण है ॥

भावार्थ-जिस अवस्थामें आत्मामें कामना करनेकी बुद्धि नहीं होती और आत्मा स्वप्न भी नहीं देखता, उसको सुषुप्ति कहते हैं, इसप्रकार श्रुतिने भी सुषुप्ति में आत्माका अस्तित्व माना है, इसलिये आत्माके अस्तित्वमें वेदका भी प्रमाण है ॥

अकामयितृता स्वप्नादर्शनं घटते कथम् ।
अविद्यमानस्य तत आत्मास्तित्वं प्रतीयते ॥ ६०९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अविद्यमानस्य) अविद्यमानकी (अकामयितृता) कामना करनेवाला न होना (स्वप्नादर्शनम्) स्वप्न न देखना (कथम्) कैसे (घटते) हो सकता है ? (ततः) तिससे (आत्मास्तित्वम्) आत्माका होना (प्रतीयते) प्रतीत होता है ॥ ६०९ ॥

(भावार्थ)-श्रुतिमें कहा है, कि-सुषुप्तिकालमें आत्मा न कुछ कामना करता है, न स्वप्न देखता है, यदि सुषुप्तिकालमें आत्मा है ही नहीं तो उसके लिये निषेध

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कैसा ? इसलिये जब श्रुतिने सुषुप्तिकालमें आत्माका अकामयितृत्त्व और स्वप्न न देखना कहा है तो उस समय आत्माका अस्तित्व सिद्ध है ॥ ६०९ ॥

एतैः प्रमाणैरस्तीति ज्ञातः साक्षितया बुधैः ।
आत्माऽयं केवलः शुद्धः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ ६१० ॥

अन्वय और पदार्थ-(बुधैः) पण्डितोंने (एतैः) इन (प्रमाणैः) प्रमाणों के द्वारा (केवलः) अद्वितीय (शुद्धः) शुद्ध (सच्चिदानन्दलक्षणः) सत्-चित्-आनन्दस्वरूप (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (साक्षितया) साक्षीरूप से (अस्ति) है (इति) इसप्रकार (ज्ञातः) जाना है ॥ ६१० ॥

(भावार्थ)—पण्डितोंने इन सब प्रमाणोंके द्वारा अद्वितीय शुद्ध, सच्चिदानन्दस्वरूप साक्षिभूत आत्माके अस्तित्व को जान लिया है ॥ ६१० ॥

सत्त्वचित्त्वानन्दतादिलक्षणं प्रत्यगात्मनः ।
कालत्रयेऽप्यबाध्यत्वं सत्यं नित्यस्वरूपतः ॥ ६११ ॥
शुद्धचैतन्यरूपत्वं चित्त्वं ज्ञानस्वरूपतः ।
अखण्डसुखरूपत्वादानन्दत्वमितीर्यते ॥ ६१२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सत्त्वचित्त्वानन्दतादि) सत्स्वरूपता, चित्स्वरूपता और आनन्दरूपता (प्रत्यगात्मनः) व्यापक आत्माका (लक्षणम्) लक्षण है (नित्यस्वरूपतः) सदा स्वरूपमें विद्यमान रहनेसे (कालत्रये, अपि) तीनों काल में भी (अबाध्यत्वम्) बाधारहित होना (सत्यम्) सत्यस्वरूपता (ज्ञानस्वरूपतः) ज्ञानस्वरूप होनेके कारण (शुद्धचैतन्यरूपत्वम्) केवल चेतनरूपता (चित्त्वम्) चैतन्यरूपता (अखण्डसुखरूपत्वात्) पूर्णसुखस्वरूप होनेके कारण (आनन्दत्वम्) आनन्दरूपता [अस्ति] है (इति) ऐसा (ईर्यते) कहाजाता है ११-१२

भावार्थ-सत्स्वरूपता, ज्ञानस्वरूपता और आनन्दस्वरूपता आत्माका लक्षण है, वह सर्वदा अपने स्वरूपमें ही रहता है, इसलिये भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालमें बाधारहित एकरस रहता है, इसलिये ही सत्य कहलाता है, ज्ञानरूपमें स्थित होनेके कारण शुद्धचैतन्यलक्षण चित्स्वरूप और अखण्ड सुखरूप होनेसे आनन्दस्वरूप कहलाता है ॥ ६११-६१२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अनुस्यूतात्मनः सत्ता जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
अहमस्मीत्यतो नित्यो भवत्यात्माऽयमव्ययः ॥ ६१३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु) जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (इति) इसप्रकार (आत्मनः) आत्माका (सत्ता) अस्तित्व (अनुस्यूता) अनुगत है (अतः) इसकारण (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (नित्यः) अविनाशी (अव्ययः) विकाररहित (भवति) होता है ॥ ६१३ ॥

भावार्थ-जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके समय, "मैं हूं" ऐसा आत्माका अस्तित्व निरन्तर जुरा हुआ रहता है, अतः यह आत्मा नित्य है, इसमें कभी विकार नहीं आता है ॥ ६१३ ॥

सर्वदाप्यासमित्येवाऽभिन्नप्रत्यय ईक्ष्यते।
कदापि नाऽसमित्यस्मादात्मनो नित्यता मता ॥ ६१४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वदा, अपि) सब समय ही (आसम्) था (इति) इसप्रकार (अभिन्नप्रत्ययः, एव) अभिन्नताका ज्ञान ही (ईक्ष्यते) देखनेमें आता है (कदापि) कभी भी (न) नहीं (आसम्) था (इति) ऐसा [प्रत्ययः] ज्ञान [न] नहीं [ईक्ष्यते] देखनेमें आता है (अस्मात्) इससे (आत्मनः) आत्माकी (नित्यता) अविनाशिता (मता) मानी गयी है ॥ ६१४ ॥

भावार्थ-'मैं था' ऐसा अभिन्न ज्ञान सदा ही देखनेमें आता है, 'मैं नहीं था' ऐसा ज्ञान कभी देखनेमें नहीं आता, इसलिये ही आत्माको नित्य मानागया है ॥

आयातासु गतासु शैशवमुखावस्थासु जाग्रन्मुखा-
स्वन्यास्वप्यखिलासु वृत्तिषु धियो दुष्टास्वदुष्टास्वपि।
गङ्गाभङ्गपरम्परासु जलवत्सत्तानुवृत्तात्मन-
स्तिष्ठत्येव सदा स्थिरायमहमित्येकात्मता साक्षिणः ६१५

अन्वय और पदार्थ-(शैशवमुखावस्थासु) बालकपन आदि अवस्थाओंमें (अन्यासु) दूसरी (जाग्रन्मुखासु) जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें (अपि) भी (दुष्टासु) बुरी (अदुष्टासु) अच्छी (धियः) बुद्धि की (अखिलासु) सकल (वृत्तिषु, अपि) अवस्थाओं में भी (गङ्गाभङ्गपरम्परासु) गङ्गाकी तरङ्गमालामें

(जलवत्) जलकी समान (आत्मनः) आत्माकी (अनुवृत्ता) अनुगत (सत्ता) अस्तिता (तिष्ठति, एव) निश्चय ही रहती है (अयम्) यह (अहम्) मैं (इति) इसप्रकार (साक्षिणः) साक्षीकी (एकात्मता) अभिन्नता (सदा) सर्वदा (स्थिरा) एक रूपसे स्थित [अस्ति] है ॥ ६१५ ॥

भावार्थ – गङ्गाकी तरङ्गपरम्परामें जैसे जल अनुस्यूत होता है, एक ही जल बराबर बहाहुआ होता है, ऐसे बालक जवानी और बुढ़ापेकी अवस्थामें तथा जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें एवं भली बुरी बुद्धिकी वृत्तियोंमें आत्माका अस्तित्व पुराहुआ है, यह मैं इस कामको करता हूँ, यह मैं इसको देखता हूँ, इसप्रकार साक्षीकी एकरूपता बराबर बनी रहती है ॥ ६१५ ॥

प्रतिपदमहमादयो विभिन्नाः क्षणपरिणामितया विकारिणस्ते ।
न परिणतिरस्य निष्कलत्वादयमविकार्यत एव नित्य आत्मा ६१६

अन्वय और पदार्थ-(अहमादयः) अहं आदि (प्रतिपदम्) प्रत्येक विषय में (विभिन्नाः) पृथक् २ [सन्ति] हैं (ते) वे (क्षणपरिणामितया) प्रत्येक क्षणमें अवस्था बदलजाने के कारण (विकारिणः) विकारवाले [सन्ति] हैं (निष्कलत्वात्) निरवयव होनेसे (अमुष्य) इस आत्माका (परिणतिः) परिणाम (न) नहीं [अस्ति] है (अतएव) इसलिये ही (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (अविकारी) विकारको प्राप्त न होनेवाला (नित्यः) नित्य [अस्ति] है ६१६

भावार्थ–प्रत्येक वस्तुमें अहङ्कार आदि अलग २ होते हैं अर्थात् पदार्थके भेदसे अहङ्कार आदिमें भी भेद होता है, प्रतिक्षणमें उनकी अवस्था बदलती रहती है, इसकारण वे विकारी हैं, आत्माका कोई अंश नहीं है, इसलिये आत्माका परिणाम भी नहीं होता है, इसीसे आत्मा अविकारी और नित्य है ॥ ६१६ ॥

यः स्वप्नमद्राक्षमहं सुखं योऽस्वाप्सं स एवाऽस्म्यथ जागरूकः ।
इत्येवमच्छिन्नतयाऽनुभूयते, सत्ताऽऽत्मनो नास्ति हि संशयोऽत्र ६१७

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (अहम्) मैं (स्वप्नम्) स्वप्नको (अद्राक्षम्) देखता हुआ (यः) जो [अहम्] मैं (सुखम्) सुखसे (अस्वाप्सम्) सोया (अथ) फिर (सः, एव) वह ही (जागरूकः) जागताहुआ (अस्मि) हूं (इत्येवम्) इसप्रकार (अच्छिन्नतया) निरन्तरभावसे (आत्मनः) आत्मा का (सत्ता) अस्तित्व (अनुभूयते) अनुभवमें आता है (हि) निश्चय (अत्र) इस विषयमें (संशयः) सन्देह (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ६१७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-जो मैं स्वप्न देख रहा था, जो मैं सुखसे सो रहा था, वही मैं अब जाग रहा हूं, इसप्रकार निरन्तर रूपसे आत्माका अस्तित्व अनुभवमें आता है, इस आत्माके होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ६१७ ॥

श्रुत्युक्ताः षोडशकलाश्चिदाभासस्य नात्मनः ।
निष्कलत्वान्नास्य लयस्तस्मान्नित्यत्वमात्मनः ॥ ६१८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रुत्युक्ताः) श्रुतिमें कही हुई (षोडशकलाः) सोलह कलायें (चिदाभासस्य) चित्प्रतिबिम्बकी [भवन्ति] होती हैं (आत्मनः) आत्मा की (न) नहीं (अस्य) इस आत्माका (निष्कलत्वात्) निरवयव होनेसे (लयः) लय (न) नहीं है (तस्मात्) तिससे (आत्मनः) आत्माका (नित्यत्वम्) नित्यपना [अस्ति] है ॥ ६१८ ॥

भावार्थ-आत्मा निरवयव है, इसलिये नित्य है, परन्तु श्रुतिमें तो आत्माकी प्राण मन आदि सोलह कला बतायी हैं, फिर तुम आत्माको निष्कल कैसे कहते हो ? इसके उत्तरमें कहते हैं, कि-श्रुतिमें जो सोलह कलाओंका वर्णन आया है, वे सोलह कला चिदाभासप्रतिबिम्बित चैतन्य की हैं, आत्माका तो निरवयव होने के कारण कभी लय नहीं होता, इसलिये आत्माका नित्यत्व सिद्ध है ॥ ६१८ ॥

जडप्रकाशकः सूर्यः प्रकाशात्मैव नो जडः ।
बुद्ध्यादिभासकस्तस्माच्चित्स्वरूपस्तथा मतः ॥ ६१९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(जडप्रकाशकः) जड पदार्थोंका प्रकाशक (सूर्यः) सूर्य (प्रकाशात्मा, एव) प्रकाशस्वरूप ही है (जडः) जड (नो) नहीं है (तस्मात्) तिससे (बुद्ध्यादिभासकः) बुद्धि आदिका प्रकाशक है (तथा) तैसे ही (चित्स्वरूपः) चैतन्यस्वरूप (मतः) माना गया है ॥ ६१९ ॥

भावार्थ-घट पट आदि जड पदार्थोंका प्रकाशक सूर्य प्रकाशस्वरूप है, अचेतन नहीं है इसलिये बुद्धि आदिका प्रकाशक चैतन्यस्वरूप आत्मा भी जड नहीं है ॥

कुड्यादेस्तु जडस्य नैव घटते भानं स्वतः सर्वदा,
सूर्यादिप्रभया विना क्वचिदपि प्रत्यक्षमेतत्तथा ।
बुद्ध्यादेरपि न स्वतोऽस्त्यणुरपि स्फूर्त्तिर्विनैवात्मना,
सोऽयं केवलचिन्मयः श्रुतिमतो भानुर्यथा रुक्ममयः ६२०

अन्वय और पदार्थ—(तु) किन्तु (कुड्यादेः) दीवार आदि (जडस्य) जड़ वस्तुका (स्वतः) स्वयं (भानम्) प्रकाश (नैव) कदापि नहीं (घटते) होसकता है [यथा] जैसे (एतद्) यह दीवार आदि (सर्वदा) सब समय (सूर्यादिप्रभया, विना) सूर्य आदिके प्रकाशके विना (क्वचिदपि) कहीं भी (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष [न] नहीं [भवति] होता है (तथा) तैसे ही (आत्मना, विना) आत्माके विना (बुद्ध्यादेः, अपि) बुद्धि आदिका भी (अणुः अपि) ज़रासा भी (स्फूर्तिः) प्रकाश (स्वतः) स्वयम् (न, एव) कदापि नहीं [भवति] होता है (यथा) जैसे (भानुः) सूर्य (रुक्मयः) कान्तिमय है [तथा] तैसे ही (सः) वह (अयम्) यह (केवलचिन्मयः) केवल ज्ञानस्वरूप (श्रुतिमतः) वेद के द्वारा माना गया है ॥ ६२० ॥

भावार्थ—जैसे दीवार आदि अचेतन पदार्थोंका स्वभावसे अपने आप प्रकाश नहीं होता है, सर्वदा सूर्य आदिकी किरणोंके विना कहीं प्रत्यक्ष होता ही नहीं, ऐसे ही बुद्धि आदि आत्माके विना स्वभावसे जरा भी प्रकाशित नहीं होते, जैसे सूर्य प्रकाशस्वरूप है तैसे ही श्रुति इस आत्माको भी केवल ज्ञानस्वरूप ही मानती है॥

स्वभासने वाऽन्यपदार्थभासने
नार्कः प्रकाशान्तरमीषदिच्छति ।
स्वबोधने वाऽप्यहमादिबोधने ।
तथैव चिद्धातुरयं परात्मा ॥ ६२१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अर्कः) सूर्य (स्वभासने) अपने प्रकाशनमें (वा) अथवा (अन्यपदार्थभासने) दूसरे पदार्थके प्रकाशनमें (ईषत्) जरा भी (प्रकाशान्तरम्) दूसरे प्रकाशको (न) नहीं (इच्छति) चाहता है (अयम्) यह (चिद्धातुः) ज्ञानस्वरूप (परात्मा) परमात्मा (स्वबोधने) अपने बोधनमें (वा) अथवा (अहमादिबोधने, अपि) अहङ्कार आदिके ज्ञापनमें भी (तथा, एव) तैसा ही [अस्ति] है ॥ ६२१ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपनेको प्रकाशित करनेमें अथवा अन्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें किसी दूसरे प्रकाशकी जरा भी अपेक्षा नहीं रखता है, ऐसे ही चैतन्यस्वरूप परमात्मा अपने बोधन (ज्ञानजनन) में अथवा अहङ्कार आदिके बोधनमें किसीकी भी अपेक्षा नहीं करता है ॥ ६२१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्यप्रकाशं न किमप्यपेक्ष्य यतोऽयमाभाति निजात्मनैव।
ततः स्वयंज्योतिरयं चिदात्मा न ह्यात्मभाने परदीप्त्यपेक्षा ६२२

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि (अयम्) यह आत्मा (किमपि) किसी भी (अन्यप्रकाशम्) दूसरे प्रकाशको (अनपेक्ष्य) अपेक्षा न करके (निजात्मनः, एव) अपने स्वरूपसेही (आभाति) प्रकाशित होता है (ततः) तिस से (अयम्) यह (चिदात्मा) ज्ञानस्वरूप आत्मा (स्वयंज्योतिः) स्वयंप्रकाश है (हि) निश्चय [अस्य] इसका (आत्माने) अपने प्रकाश व ज्ञानमें (परदीप्त्यपेक्षा) दूसरेके प्रकाशकी अपेक्षा [न] नहीं [अस्ति] है ॥ ६२२ ॥

भावार्थ-क्योंकि-आत्मा दूसरे किसी प्रकाशकी अपेक्षा न करके अपने स्वरूपमें प्रकाशित रहता है, इसलिये यह आत्मा स्वयंप्रकाश है और निःसन्देह इसको अपने प्रकाशके लिये दूसरे प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है ॥ ६२२ ॥

यं न प्रकाशयति किञ्चिदिनोऽपि चन्द्रो,
नो विद्युतः किमुत वह्निरयं मिताभः।
यं भान्तमेतमनुभाति जगत् समस्तं
सोऽयं स्वयं स्फुरति सर्वदशासु चात्मा ॥ ६२३॥

अन्वय और पदार्थ-(इनः) सूर्य (अपि) और (चन्द्रः) चन्द्रमा (यम्) जिसको (किञ्चित्) जरा भी (न) नहीं (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है (विद्युतः) बिजलियें (नो) नहीं प्रकाशित करती हैं (मिताभः) थोड़े प्रकाश वाला (अयम्) यह (वन्हिः) अग्नि (किमुत) क्या प्रकाशित करेगा (भान्तम्) प्रकाशित होते हुए (यं अनु) जिसके पीछे (एतत्) यह समस्तम्) सब (जगत्) संसार (भाति) प्रकाशित होता है (सः) वह (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (सर्वदशासु) सब दशाओंमें (स्फुरति) प्रकाशित होता है ॥ ६२३ ॥

भावार्थ-सूर्य, चन्द्रमा और बिजली जिसको प्रकाशित नहीं करसकते उसको यह थोड़ेसे तेजवाला अग्नि भला कैसे प्रकाशित कर सकता है? जिस प्रकार स्वरूप आत्माके प्रकाशको लेकर यह सब जगत् प्रकाशित होरहा है वह आत्मा सब अवस्थाओंमें स्वयंप्रकाश रहता है ॥ ६२३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मन आनन्दत्व-निरूपणम्

आत्मनः सुखरूपत्वादानन्दत्वं स्वलक्षणम् ।
परप्रेमास्पदत्वेन सुखरूपत्वमात्मनः ॥ ६२४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुखरूपत्वात्) सुखरूप होनेसे (आत्मनः) आत्मा का (स्वलक्षणम्) अपना लक्षण (आनन्दत्वम्) आनन्दपना [अस्ति] है (परप्रेमास्पदत्वेन) परम प्रेमका आश्रय होनेसे (आत्मनः) आत्माका (सुख-रूपत्वम्) सुखरूपता है ॥ ६२४ ॥

भावार्थ-आत्मा सुखरूप होनेसे आनन्दस्वरूप है, और निरतिशय प्रेमका आश्रय होनेसे सुखरूप कहलाता है ॥ ६२४ ॥

सुखहेतुषु सर्वेषां प्रीतिः सावधिरीक्ष्यते ।
कदापि नावधिः प्रीतेः स्वात्मनि प्राणिनां क्वचित् ६२५

अन्वय और पदार्थ-(सर्वेषाम्) सब प्राणियोंके (सुखहेतुषु) सुखके कारण पदार्थोंमें (सावधिः) अवधि वाला (प्रीतिः) प्रेम (ईक्ष्यते) देखनेमें आता है (क्वचित्) कहीं भी (कदापि) किसी समय भी (आत्मनि) अपनेमें (प्राणिनाम्) प्राणियोंकी (प्रीतेः) प्रेमकी (अवधिः) सीमा (न) नहीं है ॥ ६२५ ॥

भावार्थ-स्त्री पुत्र आदि सुखकी कारण वस्तुओंमें सकल प्राणियोंकी ससीम (हदवाली) प्रीति देखनेमें आती है, परन्तु कहीं और किसी समय भी प्राणियों की अपनेमें सीमावाली प्रीति देखनेमें नहीं आती, किन्तु अपने आत्मामें असीम प्रीति होती है ॥ ६२५ ॥

क्षीणेन्द्रियस्य जीर्णस्य संप्राप्तोत्क्रमणस्य वा ।
अस्ति जीवितुमेवाशा स्वात्मा प्रियतमो यतः ॥ ६२६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(क्षीणेन्द्रियस्य) क्षीण इन्द्रिय वालेकी (जीर्णस्य) वृद्धकी (वा) अथवा (संप्राप्तोत्क्रमणस्य) जिसके प्राण निकलनेका समय आगया है उसकी [च] भी (जीवितुम्, एव) जीनेको ही (आशा) वासना (अस्ति) है (यतः) क्योंकि (स्वात्मा) अपना आत्मा (प्रियतमः) परम प्यारा है ॥ ६२६ ॥

भावार्थ-जिसकी इन्द्रियें क्षीण होगयी हैं, जो बूढ़ा होगया है और जो मृत्युके मुखमें आपहुंचा है, इन सबको ही जीवित रहनेकी आशा होती है, क्योंकि आत्मा सबसे अधिक प्यारा है ॥ ६२६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्माऽतः परमप्रेमास्पदः सर्वशरीरिणाम् ।
यस्य शेषतया सर्वमुपादेयत्वमृच्छति ॥ ६२७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अतः) इस कारण (आत्मा) आत्मा (सर्वशरीरिणाम्) सब शरीर धारियोंका (परमप्रेमास्पदः) परम प्रेमका आश्रय है (यस्य) जिसके (शेषतया) शेषरूप होने करके (सर्वम्) सब पदार्थ (उपादेयत्वम्) ग्रहण करनें योग्यपनेको (ऋच्छति) प्राप्त होता है ॥ ६२७ ॥

भावार्थ—इसलिये आत्मा सब प्राणियोंके परम प्रेमका स्थान है, जिस आत्मा के शेषरूप होनेसे ही ये सब वस्तुएँ ग्रहण करने योग्य होरही हैं ॥ ६२७ ॥

एष एव प्रियतमः पुत्रादपि धनादपि ।
अन्यस्मादपि सर्वस्मादात्माऽयं परमान्तरः ॥ ६२८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(एषः, एव) यह आत्मा ही (पुत्रात् अपि) पुत्रसे भी (धनात्, अपि) धनसेभी (अन्यस्मात्) दूसरे (सर्वस्मादपि) सब पदार्थों से भी (प्रियतमः) परम प्रिय है (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (परमान्तरः) सबसे भीतरका पदार्थ [अस्ति] है ॥ ६२८ ॥

भावार्थ—यह आत्मा पुत्रसे , धनसे तथा अन्य सबही पदार्थोंसे अधिक प्यारा है, इसलिये आत्मा सबसे अधिक भीतरका पदार्थ है ॥ ६१८ ॥

प्रियत्वेन मतं यत्तु तत्सदा नाप्रियं नृणाम् ।
विपत्तावपि सम्पत्तौ यथात्मा न तथाऽपरः ॥ ६२९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तु) परन्तु (यत्) जो वस्तु (प्रियत्वेन) प्रियरूप से (मतम्) मानी गयी है (तत्) वह (सदा) सर्वदा (नृणाम्) मनुष्योंकी (अप्रियम्) अप्रिय (न) नहीं [भवति] होती है (विपत्तौ) विपत्तिमें (सम्पत्तौ, अपि) सम्पत्तिमें भी (यथा) जैसा (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा [भवति] होता है (तथा) तैसा (अपरः) दूसरा (न) नहीं [भवति] होता है ॥ ६२९ ॥

भावार्थ—जो वस्तु प्रिय मानी गयी है वह कभी मनुष्योंको अप्रिय नहीं होती विपत्ति हो चाहे सम्पत्ति हो उस समय जैसा आत्मा प्यारा होता है तैसा प्यारा दूसरा पदार्थ नहीं होता ॥ ६२९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मा खलु प्रियतमोऽसुभृतां यदर्थां
भार्यात्मजाप्तगृहवित्तमुखाः पदार्थाः ।
वाणिज्यकर्षणगवावनराजसेवा-
भैषज्यकप्रभृतयो विविधाः क्रियाश्च ॥ ६३० ॥

अन्वय और पदार्थ-(खलु) निश्चय (आत्मा) आत्मा (असुभृताम्) प्राणियोंका (प्रियतमः) परम प्रिय है (भार्यात्मजाप्तगृहवित्तमुखाः) स्त्री, पुत्र, बड़े घर, धन आदि (पदार्थाः) पदार्थ (च) और (वाणिज्यकर्षणगवावनराज-सेवाभैषज्यकप्रभृतयः) व्यापार, खेती, गोपालन, राजसेवा और चिकित्सा आदि (विविधाः) नाना प्रकारकी (क्रियाः) क्रियाएँ (यदर्थाः) जिसके निमित्त [सन्ति] हैं ॥ ६३० ॥

भावार्थ—आत्मा सकल प्राणियोंको बड़ा ही प्यारा है, स्त्री, पुत्र, ताऊ, चाचा, घर और धन आदि पदार्थ तथा व्यापार, खेती, गोपालन, राजसेवा और चिकित्सा आदि भाँति २ की क्रियाएँ आत्माके ही लिये हैं ॥ ६३० ॥

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च यच्च यावच्च चेष्टितम् ।
आत्मार्थमेव नान्यार्थं नातः प्रियतमः परः ॥ ६३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (निवृत्तिः च) निवृत्ति भी (च) और (यत्) जो कुछ (यावत्, च) जितना भी (चेष्टितम्) चेष्टाका विषय है [तत्, सर्वम्] वह सब (आत्मार्थम्, एव) आत्माके लिये ही है (अन्यार्थम्) औरके लिये [न] नहीं [अस्ति] है (अतः) इसलिये (परः) दूसरा (प्रियतमः) आत्मासे अधिक प्यारा (न) नहीं [अस्ति] है ॥ ६३१ ॥

भावार्थ-क्या प्रवृत्ति, क्या निवृत्ति तथा और जो कुछ जितना भी चेष्टित है वह सब आत्माके लिये ही है, अन्यके लिये नहीं है, इसलिये आत्मा सबसे अधिक प्यारा है ॥ ६३१ ॥

तस्मादात्मा केवलानन्दरूपो
यः सर्वस्माद् वस्तुनः प्रेष्ठ उक्तः ।
यो वा अस्मान्मन्यतेऽन्यं प्रियं यं
सोऽयं तस्माच्छोकमेवानुभुंक्ते ॥ ६३२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ—(तस्मात्) तिसकारण (आत्मा) स्वरूप (केवलानन्दरूपः) केवल सुखस्वरूप है (यः) जो आत्मा (सर्वस्मात्) सब (वस्तुनः) पदार्थसे (प्रेष्ठः) प्रियतम (उक्तः) कहागया है (यः) जो (वै) निश्चय (अस्मात्) इससे (यत्) जिस (अन्यम्) दूसरेको (प्रियम्) प्यारा (मन्यते) मानता है (सः) वह (अयम्) यह (तस्मात्) उससे (शोकं, एव) शोकको ही (अनुभुंक्ते) बराबर भोगता रहता है॥ ६३२॥

भावार्थ—इसकारण आत्मा केवल आनन्दस्वरूप है, शास्त्रमें जिसको सब वस्तुओंसे प्रिय कहा है ऐसे इस आत्माकी अपेक्षा दूसरे पदार्थको जो प्रिय मानता है वह बराबर दुःख ही भोगता रहता है ॥ ६३२॥

शिष्य उवाच-

अपरः क्रियते प्रश्नो मयाऽयं क्षम्यतां प्रभो ।
अज्ञवागपराधाय कल्पते न महात्मनाम् ॥ ६३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शिष्यः) शिष्य (उवाच) बोला (प्रभो) हे स्वामिन् (मया) मुझ करके (अयम्) यह (अपरः) दूसरा (प्रश्नः) प्रश्न (क्रियते) कियाजाता है (क्षम्यताम्) क्षमा कियाजाय (अज्ञवाक्) मूर्खकी बात (महात्मनाम्) साधुओंके (अपराधाय) अपराधके लिये (न) नहीं (कल्पते) समर्थ होती है ॥ ६३३ ॥

(भावार्थ)-शिष्यने कहा, कि-हे प्रभो ! मैं आपसे एक और प्रश्न करता हूँ अपराध क्षमा करिये, क्योंकि-महात्मा पुरुष अज्ञानी पुरुषोंकी बातसे रुष्ट नहीं होते हैं ॥ ६३३ ॥

आत्मान्यः सुखमन्यच्च नात्मनः सुखरूपता ।
आत्मनः सुखमाशास्यं यतते सकलो जनः ॥ ६३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मा) आत्मा (अन्यः) और है (च) तथा (सुखम्) सुख (अन्यत्) और है (आत्मनः) आत्माका (सुखरूपता) सुखरूपत्व (न) नहीं है (सकलः) सब (जनः) लोक (आशास्यम्) प्रार्थना करने योग्य (आत्मनः) आत्माके (सुखम्) सुखको यतते) चेष्टा करता है ६३४

भावार्थ-आत्मा अन्य वस्तु है तथा सुख अन्य वस्तु है, आत्मा सुखस्वरूप नहीं है,क्योंकि-सब लोग अपने आत्माके प्रार्थना करने योग्य सुखके लिये उद्योग करते हैं ॥ ६३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मनः सुखरूपत्वे प्रयत्नः किमु देहिनाम् ।
एष मे संशयः स्वामिन् कृपयैव निरस्यताम् ॥ ६३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वामिन्) हे प्रभो, (आत्मनः) आत्माके (सुखरूपत्वे) सुखरूप होनेमें (देहिनाम्) प्राणियोंको (प्रयत्नः) उद्योग (किमु) क्यों है (मे) मेरा (एषः) यह (संशयः) सन्देह (कृपया) कृपा करके (निरस्यतां, एव) अवश्य दूर कियाजाय ॥ ६३५ ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! यदि आत्मा सुखस्वरूप है तो लोग सुख पानेके लिये इतना उद्योग क्यों करते हैं ? कृपा करके मेरे इस सन्देहको अवश्य ही दूर कर दीजिये ॥ ६३५ ॥

आत्मान्यस्य सुखरूपत्वनिरासः ।

श्रीगुरुरुवाच-

आनन्दरूपमात्मानमज्ञात्वैव पृथग्जनः ।
बहिःसुखाय यतते न तु कश्चिद्विदन् बुधः ॥ ६३६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(श्रीगुरुः) श्रीगुरुदेव (उवाच) बोले (पृथग्जनः) मूढ़ पुरुष (आनन्दरूपम्) सुखस्वरूप (आत्मानम्) आत्माको (अज्ञात्वा, एव) न जानकर ही (बहिःसुखाय) बाहरके सुखके लिये (यतते) उद्योग करता है (तु) परन्तु (कश्चित्) कोई (बुधः) पण्डित (विदन्) जानता हुआ (न) नहीं [यतते] यत्न करता है ॥ ६३६ ॥

भावार्थ—गुरुने कहा, कि-अज्ञानी मनुष्य सुखस्वरूप आत्माको न जान कर ही बाहरी सुखको पानेके लिये यत्न करता है, परन्तु कोई भी पण्डित पुरुष सुखस्वरूप आत्माको जानकर बाहरी सुखके लिये उद्योग नहीं करता है ॥ ६३६ ॥

अज्ञात्वैव हि निक्षेपं भिक्षामटति दुर्मतिः
स्ववेश्मनि निधिं ज्ञात्वा को नु भिक्षामटेत्सुधीः ६३७

अन्वय और पदार्थ-(दुर्मतिः) मन्दबुद्धि (निक्षेपम्) धरोहड़को (हि) निश्चय (अज्ञात्वा, एव) न जानकर ही (भिक्षाम्, अटति) भिक्षाके लिये घूमता है (कः नु) कौनसा (सुधीः) बुद्धिमान् (स्ववेश्मनि) अपने घरमें (निधिम्) खजानेको (ज्ञात्वा) जानकर (भिक्षां, अटेत्) भिक्षा करनेके लिये घूमेगा ? ॥ ६३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-मन्दबुद्धि पुरुष अपने घरमें गड़ेहुए धनको न जानकर ही भीख माँगता फिरता है, ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो अपने घरमें धनको जानकर भी भीख माँगता फिरेगा ? ॥ ६३७ ॥

स्थूलञ्च सूक्ष्मञ्च वपुः स्वभावतः
दुःखात्मकं स्वात्मतया गृहीत्वा ।
विस्मृत्य च स्वं सुखरूपमात्मनो
दुःखप्रदेभ्यः सुखमज्ञ इच्छति ॥ ६३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अज्ञः) मूढ़ (स्वभावतः) स्वभावसे (दुःखात्मकम्) दुःखस्वभाव (स्थूलम्) स्थूल (च) और (सूक्ष्मं, च) सूक्ष्म भी (वपुः) शरीरको (स्वात्मतया) अपने आत्मारूपसे (गृहीत्वा) मानकर (च) और (आत्मनः) आत्माके (स्वम्) निज (सुखरूपम्) सुखरूपको (विस्मृत्य) भूल कर दुःखप्रदेभ्यः) दुःख देनेवालोंसे (सुखम् , सुखको (इच्छति) चाहता है॥

भावार्थ-मूढ़पुरुष स्वभावसे ही दुःखस्वरूप स्थूल और सूक्ष्म शरीरको आत्मा मानकर और आत्माकी सुखस्वरूपताको भूलकर दुःखदायक विषयोंसे सुख पाना चाहता है ॥ ६३८ ॥

न हि दुःखप्रदं वस्तु सुखं दातुं समर्हति ।
किं विषं पिबतो जन्तोरमृतत्वं प्रयच्छति ॥ ६३९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(दुःखप्रदम्) दुःखदायक (वस्तु) पदार्थ (हि) निश्चय (सुखम्) सुख (दातुम्) देनेको (न) नहीं (समर्हति) समर्थ होता है (विषम्) विष (पिबतः) पीनेवाले (जन्तोः) जन्तुको (किम्) क्या (अमृतत्वम्) अमृतपना (प्रयच्छति) देता है ॥ ६३९ ॥

भावार्थ-दुःखदायक वस्तु सुख नहीं देसकती, विष कभी पीनेवाले प्राणीको अमृतका काम नहीं देता है ॥ ६३९ ॥

आत्माऽन्यः सुखमन्यच्चेत्येवं निश्चित्य पामरः ।
बहिःसुखाय यतते सत्यमेव न संशयः ॥ ६४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(पामरः) मूढ़ पुरुष (आत्मा) आत्मा (अन्यः) और है (च) और सुखम्) सुख (अन्यत्) अन्य है (इत्येवम्) ऐसा (नि-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

श्चित्य) निश्चय करके (सत्यमेव) सत्यही (बहिः सुखाय) बाहरी सुखके लिये (यतते) उद्योग करता है (संशयः) सन्देह (न) नहीं है ॥ ६४० ॥

भावार्थ—आत्मा अन्य पदार्थ है और सुख उससे अन्य पदार्थ है, ऐसा निश्चय करके मूढ़ पुरुष यथार्थमें बाहरी सुखके लिये उद्योग करता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६४० ॥

इष्टस्य वस्तुनो ध्यानं दर्शनाद्युपभुक्तिषु ।
प्रतीयते य आनन्दः सर्वेषामिह देहिनाम् ॥ ६४१ ॥
स वस्तुधर्मो नो यस्मान्मनस्येवोपलभ्यते ।
वस्तुधर्मस्य मनसि कथं स्यादुपलंभनम् ॥ ६४२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इह) इस संसारमें (सर्वेषाम्) सब (देहिनाम्) प्राणियोंके (इष्टस्य) प्रिय (वस्तुनः) पदार्थके (ध्यानदर्शनाद्युपभुक्तिषु) ध्यान करने देखने और भोगनेमें (यः) जो (आनन्दः) सुख (प्रतीयते) प्रतीत होता है (सः) वह (वस्तुधर्मः) पदार्थका धर्म (नो) नहीं है (यस्मात्) क्योंकि-(मनसि एव) मनमें भी (उपलभ्यते) प्राप्त होता है (मनसि) मनमें (वस्तुधर्मस्य) पदार्थके धर्मका (उपलम्भनम्) ज्ञान (कथम्) कैसे (स्यात्) होता है ॥ ६४१ ॥ ६४२ ॥

भावार्थ-इस जगत्में प्रिय पदार्थके ध्यान, दर्शन, उपभोग आदिमें सकल प्राणियोंको जिस आनन्दका अनुभव होता है वह आनन्द उस पदार्थका धर्म नहीं है, क्योंकि-उसकी प्राप्ति तो मनमें ही होती है, वस्तुका धर्म मनमें कैसे आजायगा।६४२

अन्यत्र त्वन्यधर्माणामुपलम्भो न दृश्यते ।
तस्मान्न वस्तुधर्मोऽयमानन्दस्तु कदाचन ॥ ६४३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तु) परन्तु (अन्यत्र) अन्य पदार्थमें (अन्यधर्माणाम्) अन्यके धर्मोंका (उपलम्भः) ज्ञान (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है (तस्मात्) तिससे (अयम्) यह (आनन्दः, तु) आनन्द तो (कदाचन) कदापि (वस्तुधर्मः) पदार्थका धर्म (न) नहीं [अस्ति] है ॥ ६४३ ॥

भावार्थ—अन्य वस्तुमें अन्य वस्तुका धर्म तो कभी अनुभवमें आता हुआ देखनेमें नहीं आता है, इसलिये आनन्द कभी भी स्त्री पुत्र आदि पदार्थोंका धर्म नहीं है ॥ ६४३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नाप्येष धर्मो मनसोऽसत्यर्थे तददर्शनात् ।
असति व्यञ्जके व्यंग्यं नोदेतीति न मन्यताम् ॥६४४॥

अन्वय और पदार्थ---(एषः) यह आनन्द (मनसः, अपि) मनका भी (धर्मः) धर्म (न) नहीं है । अर्थे, असति) विषयके न होने पर (तददर्शनात्) उस आनन्दके न दीखनेसे (व्यञ्जके) प्रकाशकके (असति) न होने पर (व्यंग्यम्) प्रकाश्य (न) नहीं (उदेति) प्रकाशित होता है (इति) ऐसा (न) नहीं (मन्यताम्) मानना चाहिये ॥ ६४४ ॥

भावार्थ---यह आनन्द मनका धर्म भी नहीं है, क्योंकि–विषयके न होने पर आनन्द देखनेमें नहीं आता, प्रकाशकके न होने पर प्रकाश्य पदार्थ प्रकट नहीं होता–ऐसा न मानना ॥ ६४४ ॥

सत्यर्थेऽपि च नोदेति आनन्दस्तूक्तलक्षणः ।
सत्यपि व्यञ्जके व्यंग्यानुदयो नैव संमतः ॥ ६४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(च) और (अर्थे, सति,अपि) विषयके होने पर भी (उक्तलक्षणः) जिसका लक्षण पहले कहा है वह (आनन्दः, तु) आनन्द तो(न) नहीं (उदेति) प्रकट होता है (हि) निश्चय (व्यञ्जके) प्रकाशकके (सति, अपि) होने पर भी (व्यंग्यानुदयः) प्रकाशकका अनुदय (न, एव) नहीं (संमतः) अभिमत है ॥ ६४५ ॥

भावार्थ-विषयके विद्यमान होनेपर भी पीछे कहे लक्षणवाले आनन्दका उदय नहीं होता,प्रकाशकके होने पर प्रकाश्यका उदय न होना कदापि युक्तियुक्त नहीं है,

दुरदृष्टादिकं नात्र प्रतिबन्धः प्रकल्प्यताम् ।
प्रियस्य वस्तुनो लाभे दुरदृष्टं न सिध्यति ॥६४६॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस विषयमें (दुरदृष्टादिकम्) अशुभ प्रारब्ध आदि को (प्रतिबन्धः) बाधक (न) नहीं (कल्प्यताम्) कल्पना करना चाहिये(प्रियस्य) प्यारी (वस्तुनः) वस्तुके (लाभे) प्राप्त होने पर (दुरदृष्टम्) अशुभ प्रारब्ध (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ६४६ ॥

भावार्थ---यदि कहो, कि---आनन्द विषयका धर्म है, और अशुभ प्रारब्ध आदि प्रतिबन्धकके कारणसे अनुभवमें नहीं आता है, तो यह कहना ठीक नहीं है इसमें अशुभ प्रारब्धकी तो कल्पना ही नहीं होसकती, क्योंकि–प्रिय पदार्थकी प्राप्ति में अशुभ अदृष्ट कैसा ? ॥ ६४६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्मान्न मानसो धर्मो निर्गुणत्वान्न चात्मनः ।
किन्तु पुण्यस्य सान्निध्यादिष्टस्यापि च वस्तुनः ६४७
सत्त्वप्रधाने चित्तेऽस्मिन्स्वात्मैव प्रतिविम्बति ।
आनन्दलक्षणः स्वच्छे पयसीव सुधाकरः ॥ ६४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे [आनन्दः] आनन्द (मानसः) मनका (धर्मः) धर्म (न) नहीं है (निर्गुणत्वात्) गुणशून्य होनेसे (आत्मनः, च) आत्माका भी (न) नहीं है (किन्तु) परन्तु (पुण्यस्य) पुण्यकी (सान्निध्यात्) समीपताके कारण (च) और (इष्टस्य) प्रिय (वस्तुनः, अपि) पदार्थं की भी [सान्निध्यात्] समीपता होनेके कारणसे (सत्त्वप्रधाने) सत्त्वगुण प्रधान (अस्मिन्) इस (चित्ते) चित्तमें (स्वच्छे) स्वच्छ (पयसि) जलमें (सुधाकरः, इव) चन्द्रमा जैसे (आनन्दलक्षणः) आनन्दस्वरूप (आत्मा, तु) आत्मा तो (प्रतिविम्बति, एव) अवश्य ही प्रतिविम्बित होता है ॥६४७।६४८॥

भावार्थ-इसलिये आनन्द मनका धर्म भी नहीं हैं, क्योंकि-आत्मा निर्गुण है, इसकारण आत्माका धर्म भी नहीं है, किन्तु पुण्य और इष्ट पदार्थ समीपताके कारणसे सत्त्वगुणप्रधान इस अन्तःकरणमें, निर्मल जलमें चन्द्रमाकी समान आत्मा प्रतिविम्बित होता है ॥ ६४७ ॥ ६४८ ॥

सोऽआभास आनन्दश्चित्ते यः प्रतिविम्बितः ।
पुण्योत्कर्षापकर्षाभ्यां भवत्युच्चावचः स्वयम् ॥ ६४९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (अयम्) यह (आभासः) प्रतिबिम्बरूप (आनन्दः) आनन्द (यः) जो (चित्ते) अन्तःकरणमें (प्रतिविम्बितः) प्रतिविम्ब [सन्] होता हुआ (पुण्योत्कर्षापकर्षाभ्याम्) पुण्यकी अधिकता और न्यूनता करके (स्वयम्) अपने आप (उच्चावचः) ऊंच नीच (भवति)होता है ॥

भावार्थ-वही प्रतिविम्बित आनन्द अन्तःकरणमें प्रतिविम्बित होकर पुण्यकी अधिकता और न्यूनताके अनुसार भला-बुरा नाना प्रकारका प्रतीत होता है ६४९

सार्वभौमादि ब्रह्मान्तं श्रुत्या यः प्रतिपादितः ।
स क्षयिष्णुः सातिशयः प्रक्षीणे कारणे लयम् ॥ ६५० ॥
सात्येव विषयानन्दो यस्तु पुण्यैकसाधनः ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ये तु वैषयिकानन्दं भुञ्जते पुण्यकारिणः ॥ ६५१॥
दुःखञ्च भोगकालेऽपि तेषामस्ति महत्तरम् ।
सुखं विषयसंपृक्तं विषसंपृक्तभक्तवत् ॥ ६५२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(श्रुत्या) श्रुतिने (सार्वभौमादिब्रह्मान्तम्) चक्रवर्ती राजासे लेकर ब्रह्मा पर्यन्त (यः) जो आनन्द (प्रतिपादितः) वर्णन किया है (सः) वह (क्षयिष्णुः) क्षीण होजाने वाला (सातिशयः) न्यूनाधिकतासे युक्त [अस्ति] है (तु) परन्तु (पुण्यैकसाधनः) एक मात्र पुण्यरूप उपायवाला (यः) जो (एषः) यह (विषयानन्दः) विषयजनित आनन्द है (कारणे, प्रक्षीणे) अपने कारणके क्षीन होजाने पर (क्षयम्) नाशको (याति) प्राप्त हो जाता है (तु) परन्तु (ये) जो (पुण्यकारिणः) पुण्यकर्म करनेवाले (वैषयिकानन्दम्) विषयजनित आनन्दको (भुञ्जते) भोगते हैं (भोगकाले) विषय सुखको भोगनेके समय (तेषाम्) उनको (अपि) भी (दुःखम्) दुःख [भवति] होता है (अंते) परिणाममें (महत्तरम्) बड़ाभारी दुःख [भवति] होता है (विषयसंपृक्तम्) विषयोंमें मिला हुआ (सुखम्) सुख (विषसंपृक्तभक्तवत्) विष मिले भातकी समान [भवति] होता है ॥ ६५० ॥ ६५१ ॥ ६५२ ॥

भावार्थ—श्रुतिने चक्रवर्ती राजासे लेकर हिरण्यगर्भ ब्रह्मापर्यन्तका जो आनन्द वर्णन किया है वह एक दिन अवश्य नष्ट होजाने वाला है और उसमें न्यूनता अधिकता रहती है, उस आनन्द (सुख) का कारण नष्ट होते ही वह पुण्यबलसे प्राप्त हुआ विषयका आनन्द नष्ट होजाता है जो पुण्यात्मा लोग विषयजनित सुखको भोगते हैं उनको भोगके समयमें भी कुछ दुःख होता है और उस विषय सुखभोगका अन्त होजाने पर तो बड़ा ही भारी दुःख होता है, क्योंकि—विषयोंमें मिला हुआ सुख विषमिले हुए भातकी समान दुःखदायक ही होता है ६५०-६५१-६५२

भोगकालेऽपि भोगान्ते दुःखमेव प्रयच्छति ।
सुखमुच्चावचत्वेन क्षयिष्णुत्वभयेन च ॥ ६५३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुखम्) विषय सुख (उच्चावचत्वेन) बढ़िया घटिया होनेसे (च) और (क्षयिष्णुत्वभयेन) एक दिन नष्ट होजायगा इसके भयसे (भोगकाले) भोगके समय (भोगान्ते, अपि) भोगके अन्तमें भी (दुःखम् एव) दुःखको ही (प्रयच्छति) देता है ॥ ६५३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-विषयजनित सुख भला बुरा घटिया बढ़िया नाना प्रकारका होता है और एकदिन उसके नष्ट होजानेका भय लगा रहता है इसलिये भोगके समय और भोगके अन्तमें दुःख ही देता है ॥ ६५३ ॥

भोगकाले भवेन्नृणां ब्रह्मादिपदभागिनाम् ।
राजस्थानप्रविष्टानां तारतम्यं मतं यथा ॥ ६५४ ॥

तथैव दुःखं जन्तूनां ब्रह्मादिपदभागिनाम् ।
न कांक्षणीयं विदुषां तस्माद्वैषयिकं सुखम् ॥ ६५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (भोगकाले) भोगके समय (ब्रह्मादिपदभागिनाम्) ब्रह्मा आदि पदवी वालोंकी (राजस्थानप्रविष्टानाम्) राजाके पदपर पहुंचने वाले (नृणाम्) मनुष्योंकी (तारतम्यम्) नीचाई ऊँचाई (मतम्) मानी हुई (भवेत्) होती है (तथा, एव) तैसेही (ब्रह्मादिपदभागिनाम्) ब्रह्मा आदि पदों पर पहुंचे हुए (जन्तूनाम्) प्राणियोंको (दुःखम्) क्लेश [भवति] होता है (तस्मात्) तिससे (विदुषः) विद्वान्को (वैषयिकम्) विषयोंका (सुखम्) सुख (न) नहीं (कांक्षणीयम्)इच्छा करना चाहिये ॥ ६५४ ॥ ६५५ ॥

भावार्थ-विषय सुखको भोगनेके समय ब्रह्मा आदि पदोंपर पहुंचेहुए और राज्यपद पाने वाले प्राणियोंमें जैसे छुटाई वडाई देखनेमें आती है ऐसेही ब्रह्मादि पदवालोंको न्यूनाधिक दुःख भी भोगना पडता है,इस लिये विद्वान् पुरुषको विषय-सुखकी प्रार्थना नहीं करनी चाहिये ॥६५४ ॥ ६५५ ॥

यो बिम्बभूत आनन्दः स आत्मानन्दलक्षणः
शाश्वतो निर्द्वयः पूर्णो नित्य एकोऽपि निर्भयः ।६५६।

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (बिम्बभूतः) बिम्ब रूप (आनन्दः) आनन्द है (सः) वह (आनन्दलक्षणः) सुखरूप (आत्मा) आत्मा (शाश्वतः) क्षयरहित(निर्द्वयः) अद्वितीय (पूर्णः) परिपूर्ण (नित्यः) नित्य (एकः) एक (अपि) और (निर्भयः (निर्भय [अस्ति] है ॥ ६५६ ॥

भावार्थ—जो बिम्बरूप अर्थात् जिसका प्रतिबिम्ब पड़ता है ऐसा आनन्द है वही सुखरूप आत्मा है, उसका क्षय नहीं होता, वह द्वैतशून्य, पूर्ण नित्य और एक होकर सदा निर्भय रहता है ॥ ६५६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

लक्ष्यते प्रतिबिम्बेनाभासानन्देन बिम्बवत् ।
प्रतिबिम्बो बिम्बमूलो विना बिम्बं न सिध्यति ॥६५७॥

अन्वय और पदार्थ-(बिम्बवत्) बिम्बस्वरूप प्रतिबिम्बेन) प्रतिबिम्बस्वरूप (आभासानन्देन) प्रतिफलित आनन्दके द्वारा (लक्ष्यते) जाना जाता है (बिम्बमूलः) बिम्ब है आदिकारण जिसका ऐसा (प्रतिबिम्बः) प्रतिबिम्ब (बिम्बं, विना) बिम्बके विना (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ६५७ ॥

भावार्थ-वह बिम्बभूत आनन्द आभासानन्दरूप प्रतिबिम्बके द्वाराही जाना जाता है, प्रतिबिम्ब बिम्बमूल है, बिम्बके विना प्रतिबिम्ब हो नहीं सकता ॥ ६५७ ॥

यत्ततो बिम्ब आनन्दः प्रतिबिम्बेन लक्ष्यते ।
युक्त्यैव पण्डितजनैर्न कदाप्यनुभूयते ॥ ६५८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (यत्) जो (बिम्बः) बिम्बभूत (आनन्दः) आनन्द (प्रतिबिम्बेन) प्रतिबिम्बके द्वारा (लक्ष्यते) लक्षित होता है (पण्डितैः) पंडितों करके (युक्त्या) युक्तिके द्वारा (एव) ही (कदा, अपि) कभी भी (न) नहीं (अनुभूयते) अनुभवमें आता है ॥ ६५८ ॥

भावार्थ-इसलिये जो बिम्बरूप आनन्द प्रतिबिम्बरूपसे लक्षित होता है, उसका पण्डितजन युक्तिसे अनुभव नहीं कर सकते ॥ ६५८ ॥

अविद्याकार्यकरणसंघातेषु पुरोदिताः ।
आत्मा जाग्रत्यपि स्वप्ने न भवत्येष गोचरः ॥ ६६० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अविद्याकार्यकरणसंघातेषु) अविद्या उसका कार्य देह और इन्द्रिय समूहमें (पुरा) पहले (उदितः) उदित हुआ (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (जाग्रति) जाग्रत् अवस्थामें (अपि) और (स्वप्ने) स्वप्नमें (गोचरः) ज्ञानका विषय (न) नहीं (भवति) होता है ॥ ६५९ ॥

भावार्थ-जाग्रत्कालमें और स्वप्नकालमें अविद्या, देह तथा इन्द्रियोंके विद्यमान होनेके कारण सबसे पहिले वर्त्तमान आत्मा ज्ञानगोचर नहीं होता है ॥ ६५९ ॥

स्थूलस्यापि च सूक्ष्मस्य दुःखरूपस्य वर्ष्मणः ।
लये सुषुप्तौ स्फुरति प्रत्यगानन्दलक्षणः ॥ ६६० ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुषुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (दुःखरूपस्य) दुःखस्वरूप (स्थूलस्य) स्थूल (च) और (सूक्ष्मस्य, अपि) सूक्ष्म भी (वर्ष्मणः) शरीरके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(लये) कारणमें लीन होजाने पर (आनन्दलक्षणः) सुखस्वरूप (प्रत्यक्) आत्मा (स्फुरति) प्रकाशित होता है ॥ ६६० ॥

भावार्थ-सुषुप्तिके समय दुःखमय स्थूल और सूक्ष्मशरीरके अपने कारणमें लय होजाने पर आनन्दस्वरूप आत्मा प्रकाशित होता है ॥ ६६० ॥

न ह्यत्र विषयः कश्चिन्नापि बुद्ध्यादि किञ्चन ।
आत्मैव केवलानन्दमात्रस्तिष्ठति निर्द्वयः ॥ ६६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) क्योंकि (अत्र) इस सुषुप्ति कालमें (कश्चित्) कोई (विषयः) विषय (न) नहीं [भवति] होता है (बुद्ध्यादि) बुद्धि आदि (किञ्चन, अपि) कुछभी (न) नहीं [भवति] होता है (केवलानन्दमात्रः) केवल आनन्दस्वरूप (निर्द्वयः) द्वैतशून्य (आत्मा, एव) आत्मा ही (तिष्ठति) विद्यमान होता है ॥

भावार्थ-क्योंकि-सुषुप्तिकालमें कोई विषय नहीं होता है और बुद्धि आदि भी कुछ नहीं होता है, केवलमात्र आनन्दस्वरूप अद्वितीय आत्मा ही विद्यमान होता है ॥ ६६१ ॥

प्रत्यभिज्ञायते सर्वैरेष सुप्तोत्थितैर्जनैः ।
सुखमात्रतया नात्र संशयं कर्तुमर्हति ॥ ६६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वैः) सब (सुप्तोत्थितैः) सोकर उठेहुए (जनैः) पुरुषों करके (एषः) यह आत्मा (सुखमात्रतया) केवल आनन्दरूपसे (प्रत्यभिज्ञायते) जाना जाता है (अत्र) इस विषयमें (संशयं, कर्तुम्) सन्देह करने को (न) नहीं (अर्हसि) योग्य है ॥ ६६२ ॥

भावार्थ--सुषुप्तिसे उठनेवाले सब लोग सुखस्वरूपसे आत्माका प्रत्यभिज्ञान करते हैं अर्थात् जो मैं सुखसे सो रहा था वही मैं इस समय जाग रहा हूँ, ऐसा अनुभव करते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ६६२ ॥

त्वयाऽपि प्रत्यभिज्ञातं सुखमात्रत्वमात्मनः ।
सुषुप्तादुत्थितवता सुखमस्वाप्समित्यनु ॥ ६६३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुषुप्तात्) सुषुप्तिसे (उत्थितवता) उठनेवाले (त्वया, अपि) तूने भी (सुखम्) सुखरूपसे (अस्वाप्सम्) सोया था (इति) इसप्रकार (अनु) पीछेसे (आत्मनः) आत्माका (सुखमात्रत्वम्) केवल सुखरूप होना (प्रत्यभिज्ञातम्) जानलिया है ॥ ६६३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—केवल दूसरे लोग ही आत्माकी सुखरूपताका अनुभव नहीं करते हैं; किन्तु सोकर उठने पर 'मैं सुखसे सोया था' ऐसे अनुभवसे आत्माका सुखरूप होना जानलिया है ॥ ६६३ ॥

दुःखाभावः सुखमिति यदुक्तं पूर्ववादिना ।
अनाघ्रातोपनिषदा तदसारं मृषा वचः ॥ ६६४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अनाघ्रातोपनिषदा) उपनिषद्की गन्ध भी न पाने वाले (पूर्ववादिना) पूर्वपक्ष करनेवालेने (दुःखाभावः) दुःखका अभाव (सुखम्) सुख है (इति) ऐसा (यत्) जो (उक्तम्) कहा था (तत्) वह (वचः) वचन (असारम्) युक्तिहीन (मृषा) मिथ्या है ॥ ६६४ ॥

भावार्थ—जिसने उपनिषद्की गन्ध भी नहीं पायी ऐसे पूर्वपक्ष करनेवालेने जो कहा था, कि—दुःखका अभाव ही सुख है, यह उसका कथन युक्तिहीन और मिथ्या है ॥ ६६४ ॥

दुःखाभावस्तु लोष्टादौ विद्यते नानुभूयते ।
सुखलेशोऽपि सर्वेषां प्रत्यक्षं तदिदं खलु ॥ ६६५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(दुःखाभावः) दुःखका अभाव (लोष्टादौ) ढले आदिमें (विद्यते) है (तु) परन्तु (न) नहीं (अनुभूयते) अनुभव कियाजाता है (सुखलेशः, अपि) सुखका लेशमात्र भी (सर्वेषाम्) सबको (तत्) सो (इदम्) यह (खलु) निश्चय रूपसे (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष होता है ॥ ६६५ ॥

भावार्थ—मट्टीके ढले आदिमें भी दुःखका अभाव होता है, परन्तु उसका अनुभव नहीं होता, यदि किसीको लेशमात्र भी सुख होता है तो उसका सबको प्रत्यक्ष हुआ करता है ॥ ६६५ ॥

सदयं सौम्य एवेति प्रस्तुत्य वदति श्रुतिः ।
सद्घनोऽयं चिद्घनोऽयं आनन्दघन इत्यपि ॥ ६६६ ॥
आनन्दघनतामस्य स्वरूपं प्रत्यगात्मनः ।
धन्यैर्महात्मभिर्धीरैर्ब्रह्मविद्भिः सदुत्तमैः ६६७ ॥
अपरोक्षतयैवात्मा समाधावनुभूयते ।
केवलानन्दमात्रत्वेनैवमत्र न संशयः ॥ ६६८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ—(अयम्) यह आत्मा (सत्) सत्स्वरूप है (हि) क्योंकि (एषः) यह (एव) ही [सत्] सत् है (इति) ऐसा (प्रस्तुत्य) प्रस्ताव करके (श्रुतिः) श्रुति (वदति) कहती है (अयम्) यह (सद्घनः) सत्स्वरूप (अयम्) यह (चिद्घन) ज्ञानस्वरूप (आनन्दघनः) आनन्दस्वरूप [अस्ति] है (इति) ऐसे (अपि) भी [श्रुतिः] श्रुति (अस्य) इस (प्रत्यगात्मनः) व्यापक आत्माके (आनन्दघनताम्) सुखरूपत्वको (स्वरूपम्) अपना रूप [वदति] कहती है (धन्यैः) पुण्यवान् (धीरैः) पण्डित (सदुत्तमैः) साधुओंमें श्रेष्ठ (ब्रह्मविद्भिः) ब्रह्मवेत्ता (महात्मभिः) महात्माओं करके (समाधौ) समाधिकालमें (आत्मा) आत्मा (अपरोक्षतया) प्रत्यक्षरूपसे (केवलानन्दमात्रत्वेन) केवल आनन्दस्वरूपसे (एव) ही (अनुभूयते) अनुभव कियाजाता है (अत्र) इस विषयमें (संशयः) सन्देह (न) नहीं है॥ ६६६ ॥ ६६७॥ ६६८॥

भावार्थ—यह आत्मा सत्स्वरूप है, ऐसा प्रस्ताव करके श्रुतिने आत्माको सत्स्वरूप कहा है, यह आत्मा सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप है, इस प्रकार श्रुति ने आनन्दरूपताको आत्माका स्वरूप कहा है, पुण्यवान्, विद्वान् साधुओंके मान्य ब्रह्मज्ञानी महात्मा समाधिकालमें प्रत्यक्षभावमें केवल मात्र आनन्दस्वरूपसे आत्मा का अनुभव किया करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६६६ ॥ ६६७ ॥ ६६८ ॥

स्वस्वोपाध्यनुरूपेण ब्रह्माद्याः सर्वजन्तवः ।
उपजीवन्त्यमुष्यैव मात्रामानन्दलक्षणाम् ॥ ६६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्माद्याः) ब्रह्मा आदि (सर्वजन्तवः)सकल प्राणी (स्वस्वोपाध्यनुरूपेण) अपनी २ उपाधिके अनुसार (अमुष्य, एव)इस आत्मा की ही (आनन्दलक्षणाम्) सुखस्वरूप (मात्राम्) अंशको (उपजीवन्ति) आश्रय करते हैं॥ ६६९ ॥

भावार्थ—ब्रह्मा आदि सकल प्राणी अपनी २ उपाधिके अनुसार इस आत्माके आनन्दकी मात्राके आधार पर जीवित रहते हैं ॥ ६६९ ॥

आस्वाद्यते यो भक्ष्येषु सुखकृन्मधुरो रसः ।
स गुडस्यैव नो तेषां माधुर्यं विद्यते क्वचित् ॥ ६७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(भक्ष्येषु) खानेके पदार्थोंमें (यः) जो (सुखकृत्) सुखदायक (मधुरः) मीठा (रसः) रस (आस्वाद्यते) आस्वादन किया जाता है (सः) वह (गुडस्य, एव) गुड़का ही [भवति] होता है (तेषाम्) उन पदार्थों

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

का (क्वचित्) कहीं भी (माधुर्यम्) मीठापन (नो) नहीं (विद्यते) होता है ॥

भावार्थ-लोगोंको जो खानेके पदार्थोंमें आनन्ददायक मीठे रसका स्वाद आता है वह स्वाद गुडका ही होता है, उन सब पदार्थोंमें तो. मीठापन कभी होता ही नहीं ॥ ६७० ॥

तद्वद्विषयसान्निध्यादानन्दो यः प्रतीयते ।
बिम्बानन्दांशविस्फूर्त्तिरेवासौ न जडात्मनाम् ॥ ६७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तद्वत्) तैसे ही (विषयसान्निध्यात्) विषयकी समीपतासे (यः) जो (आनन्दः) सुख (प्रतीयते) प्रतीत होता है (असौ) यह (बिम्बानन्दांशविस्फूर्त्तिः, एव) बिम्बभूत आनन्दके अंशका विस्फुरण ही [अस्ति] है (जडात्मनाम्) अचेतन पदार्थोंका (न) नहीं है ॥ ६७१ ॥

भावार्थ-ऐसे ही विषयकी समीपताके कारणसे जो आनन्दका अनुभव होता है, वह बिम्बभूत आनन्दके अंशका स्फुरणमात्र है, अचेतन पदार्थोंका नहीं है ६७१

यस्य कस्यापि योगेन यत्र कुत्रापि दृश्यते ।
आनन्दः स परस्यैव ब्रह्मणः स्फूर्त्तिलक्षणः ॥ ६७२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जहाँ (कुत्र) कहीं (अपि) भी (यस्य) जिस (कस्य) किसीके (अपि) भी (योगेन) संयोगसे (आनन्दः) सुख (दृश्यते) दीखता है (सः) वह (परस्य) परम (ब्रह्मणः, एव) ब्रह्मका ही (स्फूर्त्तिलक्षणः) स्फुरणरूप [अस्ति] है ॥ ६७२ ॥

भावार्थ-जहाँ कहीं भी जिस किसी भी पदार्थके संयोगसे सुख होता है, वह सुख परमब्रह्मका स्फुरणरूप आनन्द ही है ॥ ६७२ ॥

यथा कुवलयोल्लासश्चन्द्रस्यैव प्रसादतः ।
तथाऽऽनन्दोदयोऽप्येषां स्फुरणादेव वस्तुनः ॥ ६७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (कुवलयोल्लासः) नील कमलका खिलना (चन्द्रस्य, एव) चन्द्रमाके ही (प्रसादतः) अनुग्रहसे [भवति] होता है (तथा) तैसे ही (एषाम्) इन सबका (आनन्दोदयः) आनन्दका उदय (वस्तुनः) वस्तुके (स्फुरणात्, एव) स्फुरणसे ही [भवति] होता है ॥ ६७३ ॥

भावार्थ-जैसे नील कमलका उल्लास खिलनारूप आनन्द चन्द्रमाके अनुग्रहसे ही होता है, ऐसे ही सकल जड पदार्थोंके सुखका उदय आत्माके स्फुरणसे ही होता है ॥ ६७३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मनोऽद्वितीयत्वम्

सत्त्वं चित्त्वं तथाऽऽनन्दः स्वरूपं परमात्मनः ।
निर्गुणस्य गुणायोगाद् गुणास्तु न भवन्ति ते ॥ ६७४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(परमात्मनः) परमात्माका (सत्त्वम्) सत्पना (चित्त्वम्) चेतनपना (तथा) तैसे ही (आनन्दः) सुख (स्वरूपम्) स्वरूप है (तु) परन्तु (निर्गुणस्य) निर्गुण आत्माको (गुणायोगात्) गुणोंका सम्बन्ध न होसकनेसे (ते) वे (गुणाः) गुण (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं । ।६७४ ॥

भावार्थ—सत्त्व, चेतनत्व और आनन्द परमात्माका स्वरूप है, निर्गुण आत्मा को गुणका सम्बन्ध नहीं होसकता, इसलिये सत्त्व, चित्त्व और आनन्द आत्मा के गुण नहीं हैं ॥ ६७४ ॥

विशेषणन्तु व्यावृत्त्यै भवेद् द्रव्यान्तरे सति ।
परमात्माऽद्वितीयोऽयं प्रपञ्चस्य मृषात्वतः ॥ ६७५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(द्रव्यान्तरे, सति) अन्य द्रव्य होने पर (विशेषणम्) विशेषण (व्यावृत्त्यै) निवृत्तिके लिये (भवेत्) हो (प्रपञ्चस्य) जगत् के (मृषात्वतः) मिथ्यापनके कारण (अयम्) यह (परमात्मा) परमात्मा (अद्वितीयः) अद्वितीय है ॥ ६७५ ॥

भावार्थ—सत्त्व, चित्त्व और आनन्द यदि आत्माके धर्म हों तो विशेषण होजाँय, विशेषण दूसरेका व्यावर्त्तक होता है, यदि परमात्माके सिवाय अन्य पदार्थ होता तो उसका ही निषेध करता, यदि परमात्मासे भिन्न अन्य पदार्थ होता तो विशेषण अन्य पदार्थके निषेधके लिये होता, जगत् तो मिथ्या है, इसलिये एक ब्रह्म ही वस्तु है फिर निषेध किसका करेगा ? ॥ ६७५ ॥

वस्त्वन्तरस्याभावेन न व्यावृत्त्यः कदाचन ।
केवलो निर्गुणश्चेति निर्गुणत्वं निरुच्यते ॥ ६७६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वस्त्वन्तरस्य) ब्रह्मभिन्न वस्तुके (अभावेन) न होनेसे (कदाचन) कभी भी (न) नहीं (व्यावृत्त्यः) निषेधके योग्य है(केवलः) शुद्ध (च) और (निर्गुणः) गुणहीन है (इति) इसप्रकार (श्रुत्या) श्रुति करके (निर्गुणत्वम्) गुणहीनता (निरुच्यते) कहा जाता है ॥ ६७६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ–आत्माके सिवाय और कोई वस्तु है ही नहीं, इसलिये अन्य पदार्थ कभी निषेधका विषय हो ही नहीं सकता. क्योंकि–श्रुति केवल निर्गुण आदि बताकर आत्माकी निर्गुणताका वर्णन करती है ॥ ६७६ ॥

श्रुत्यैव न ततस्तेषां गुणत्वमुपलभ्यते ।
उष्णत्वञ्च प्रकाशश्च यथा वह्नेस्तथात्मनः ॥ ६७७ ॥
सच्चित्स्वानन्दतादि स्वरूपमिति निश्चितम् ।
अत एव सजातीयविजातीयादिलक्षणः ॥ ६७८ ॥
भेदो न विद्यते वस्तुन्यद्वितीये परात्मनि ।
प्रपञ्चस्यापवादेन विजातीयकृता भिदा ॥ ६७९॥
नेष्यते तत्प्रकारन्ते वक्ष्यामि शृणु सादरम् ।
अहेर्गुणविवर्तस्य गुणमात्रस्य वस्तुतः ॥ ६८० ॥
विवर्तस्यास्य जगतः सन्मात्रत्वेन दर्शनम् ।
अपवादरिति प्राहुरद्वैतब्रह्मदर्शिनः ॥ ६८१ ॥

अन्वय और पदार्थ–(ततः) जिससे (श्रुत्या) श्रुति करके (एव) ही (तेषाम्) उनका (गुणत्वम्) गुणपना (न) नहीं (उपलभ्यते) सिद्ध होता है (यथा) जैसे (वह्नेः) अग्निका (उष्णत्वम्) गरमपना (च) और (प्रकाशः च) प्रकाश भी [अस्ति] है (तथा) तैसे ही (सच्चित्स्वानन्दतादि) सत्‌पना, चिद्रूपना और आनन्दता आदि (आत्मनः) आत्माका (स्वरूपम्) स्वरूप है (इति) यह (निश्चितम्) निश्चय किया हुआ है (अतएव) इसलिये ही (अद्वितीये) द्वैतशून्य (परात्मनि) परब्रह्मरूप (वस्तुनि) वस्तुमें (सजातीय-विजातीयादिलक्षणः सजातीय विजातीय आदिरूप (भेदः) भेद (न) नहीं (विद्यते) है (प्रपञ्चस्य) जगत्‌के (अपवादेन) बाधके द्वारा (विजातीय-कृता) विजातीय पदार्थका किया हुआ (भिदा) भेद (न) नहीं (इष्यते) माना जाता है (तत्प्रकारम्) उसकी रीतिको (ते) तेरे अर्थ (वक्ष्यामि) कहता हूँ (सादरम्) आदरके साथ (शृणु) सुन (यथा) जैसे (गुणविवर्तस्य) रज्जुके विवर्त (अहेः) सर्पका (वस्तुनः) वास्तवमें (गुणमात्रस्य) रज्जु मात्रका (दर्शनम्) दर्शन [भवति] होता है (अस्य) इस (विवर्तस्य) विवर्त (जगतः)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जगत्‌का (सन्मात्रत्वेन) ब्रह्ममात्र भावसे (दर्शनम्) देखनेको (अद्वैतब्रह्मदर्शिनः) अद्वितीयब्रह्मदर्शी (अपवादः) बाध (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं ॥

भावार्थ—श्रुतिके प्रमाणसे भी सत्त्व, चित्त्व और आनन्दका ब्रह्मके गुण होना सिद्ध नहीं होता, जैसे उष्णता और प्रकाश अग्निका स्वरूप है, तैसे ही सत्त्व, चित्त्व और आनन्द ब्रह्मका स्वरूप है, यह बात निश्चित है, इसलिये अद्वितीय वस्तु परमात्मामें सजातीय विजातीय आदि भेद नहीं है, प्रपञ्चका अपवाद (बाध) होनेके कारण विरुद्ध जातिके पदार्थका भेद माना ही नहीं जाता, उसकी रीति मैं कहता हूँ, तू आदरके साथ सुन—रज्जुका विवर्त्त सर्प है, उसको वास्तवमें रज्जुरूपसे देखनेकी समान इस ब्रह्मके विवर्त्त जगत्‌को सत्मात्र स्वरूप देखनेको अद्वैत ब्रह्मदर्शी महात्मा अपवाद कहते हैं ॥६७७-६७८-६७९-६८०-६८१॥

व्युत्क्रमेण तदुत्पत्तेर्द्रष्टव्यं सूक्ष्मबुद्धिभिः ।
प्रतीतस्यास्य जगतः सन्मात्रत्वं सुयुक्तिभिः ॥ ६८२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सूक्ष्मबुद्धिभिः) सूक्ष्म बुद्धिवालों करके (तदुत्पत्तेः) इस जगत्‌की उत्पत्तिके होनेसे (व्युत्क्रमेण) उलटे क्रमसे (प्रतीतस्य) अनुभवमें आये हुए (अस्य) इस (जगतः) जगत्‌का (सन्मात्रत्वम्) सत्स्वरूपपना (द्रष्टव्यम्) देखना चाहिये ॥ ६८२ ॥

भावार्थ—सूक्ष्मबुद्धिवाले पुरुषोंको सारभरी युक्तियोंके द्वारा ब्रह्मसे जगत्‌की उत्पत्ति होती है, इसकारण विपरीत भावसे अनुभवमें आनेवाले जगत्‌की ब्रह्मरूपताको देखना चाहिये ॥ ६८३ ॥

चतुर्विधं स्थूलशरीरजातं तद्भोज्यमन्नादि तदाश्रयादि ।
ब्रह्माण्डमेतत्सकलं स्थविष्ठमीक्षेत पञ्चीकृतभूतमात्रम् ॥ ६८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चतुर्विधम्) चार प्रकारके (स्थूलशरीरजातम्) स्थूल शरीरोंके समूहको (तद्भोज्यम्) उन शरीरोंके भोजनको (तदाश्रयादि) उस अन्नके आश्रय आदि (एतत्) इस (सकलम्) समस्त (स्थविष्ठम्) परम स्थूल (ब्रह्माण्डम्) ब्रह्माण्डको (पञ्चीकृतभूतमात्रम्) पञ्चीकृत भूतमात्र (ईक्षेत) देखे ॥ ६८३ ॥

भावार्थ-जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज इन चार प्रकारके स्थूल शरीरोंको, इन शरीरोंके खानेके पदार्थ अन्न आदिको और उस अन्नके आश्रय इस सकल चराचर ब्रह्मांडको पञ्चीकृत भूतरूप देखे ॥ ६८३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यत्कार्यरूपेण यदीक्ष्यते तत् तन्मात्रमेवाऽत्र विचार्यमाणे।
मृत्कार्यभूतं कलसादि सम्यग्विचारितं सन्न मृदो विभिद्यते ६८४

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो वस्तु (यत्कार्यरूपेण) जिसके कार्यरूपसे (ईक्ष्यते) दीखता है (अत्र) इस विषयमें (विचार्यमाणे) विचार करने पर (तत्) वह (तन्मात्रम्) वह वस्तुमात्र ही [प्रतीयते] प्रतीत होता है (मृत्कार्यभूतम्) मृत्तिकाका कार्यरूप (कलसादि) घट आदि (सम्यक्) अच्छे प्रकार से (विचारितं सत्) विचार कियेजाने पर (मृदः) मट्टीसे (न) नहीं (विभिद्यते) विभिन्न होता है ॥ ६८४ ॥

भावार्थ-जो वस्तु (घट आदि) जिस (मृत्तिका) का कार्य रूप देखनेमें आता है विचार करनेपर वही (मृत्तिका ही) प्रतीत होता है, अच्छे प्रकारसे विचार करके देखने पर मृत्तिकाका कार्य घट आदि मृत्तिकासे भिन्न नहीं है६८४

अन्तर्बहिश्चापि मृदेव दृश्यते न मृदो भिन्नं कलसादि किञ्चन।
ग्रीवादिमद् यत्कलसं तदित्थं न वाच्यमेतच्च मृदेव नान्यत् ६८५

अन्वय और पदार्थ-[कलसस्य] घटके (अन्तः) भीतर (च) और (बहिः, अपि) बाहर भी (मृत्, एव) मट्टी ही (दृश्यते) दीखती है (कलसादि) घट आदि (किञ्चन) कुछ भी (मृदः) मिट्टीसे (भिन्नम्) भिन्न (न) नहीं है (ग्रीवादिमत्) ग्रीवा आदिवाला (यत्) जो (कलसम्) घट है (तत्) वह (एतत्) यह (मृत् एव) मृत्तिका ही (न) नहीं है(अन्यत्)अन्य वस्तु है (इत्थम्) ऐसा (न) नहीं (वाच्यम्) कहना चाहिये ॥ ६८५ ॥

भावार्थ-घट आदि मृत्तिका ही है और कुछ नहीं है, इस विषयमें युक्ति दिखाते हैं कि-घड़ेके भीतर और बाहर मृत्तिका ही मृत्तिका दीखती है, घड़ा आदि कोई वस्तु मृत्तिकासे भिन्न नहीं है, जो ग्रीवा आदि वाला कलश नामका पदार्थ दीखता है वह मृत्तिका नहीं है, अन्य वस्तु है, ऐसा नहीं कहना चाहिये॥६८५॥

स्वरूपतस्तत्कलसादिनाम्ना मृदेव मूढैरभिधीयते ततः।
नाम्नो हि भेदो न तु वस्तुभेदः प्रदृश्यते तत्र विचार्यमाणे ६८६

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (मूढैः) मूढ़ों करके (स्वरूपतः) स्वरूपसे (मृत्, एव) मृत्तिका ही (तत्) वह (कलसादिनाम्ना) कलश आदि नाम करके (अभिधीयते) कहीजाती है (तत्र) उसके विषयमें (विचार्यमाणे)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विचार करने पर (नाम्नः, हि) नामका ही (भेदः) भेद [भवति] होता है (वस्तुभेदः, तु) वस्तुका भेद तो (न) नहीं (प्रदृश्यते) दीखता है ॥ ६८६॥

भावार्थ—मूढ़ पुरुष वास्तविक मृत्तिकाको कलश नामसे व्यवहारमें लाते हैं, परन्तु कलसका विचार करने पर नामका ही भेद देखनेमें आता है, वस्तुका भेद नहीं होता है ॥ ६८६ ॥

तस्माद्धि कार्यं न कदापि भिन्नं स्वकारणादस्ति यतस्ततोऽङ्ग ।
यद्भौतिकं सर्वमिदं तथैव तद्भूतमात्रं न ततोऽस्ति भिन्नम् ६८७

अन्वय और पदार्थ-(अङ्ग) हे शिष्य (तस्मात्) तिससे (कार्यम्) कार्य (यतः) क्योंकि (स्वकारणात्) अपने कारणसे (कदापि) कभी भी (भिन्नम्) पृथक् (न) नहीं (अस्ति) है (हि) यह निश्चय है (ततः) तिससे (यत्) जो (भौतिकम्) भूतोंका कार्य (इदम्) यह (सर्वम्) सब (तथा, एव) तैसे ही (भूतमात्रम्) भूतमात्र है (ततः) तिससे (भिन्नम्) भिन्न (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ६८७॥

भावार्थ—हे शिष्य ! क्योंकि—कार्य कभी अपने कारणसे भिन्न नहीं होता इसलिये पञ्चभूतोंका कार्य यह सब तिस प्रकार ही भूतमात्र है, पञ्चभूतसे भिन्न नहीं है ॥ ६८७ ॥

तच्चापि पञ्चीकृतभूतजातं शब्दादिभिः स्वस्वगुणैश्च सार्धम् ।
वपूंषि सूक्ष्माणि च सर्वमेतद् भवत्यपञ्चीकृतभूतमात्रम् ॥ ६८८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वस्वगुणैः) अपने २ गुण (शब्दादिभिः, सार्धम्) शब्द आदिके सहित (तत्) वह (पञ्चीकृतभूतमात्रम्, अपि) पञ्चीकृत भूतमात्र भी (च) और (सूक्ष्माणि) सूक्ष्म (वपूंषि) शरीर (च) भी (एतत्) यह (सर्वम्) सब (अपञ्चीकृतभूतमात्रम्) अपञ्चीकृत भूत ही (भवति) होता है ॥ ६८८ ॥

भावार्थ—अपने २ शब्द आदि गुणोंके सहित आकाश आदि पञ्चमहाभूत और सूक्ष्म शरीर यह सब केवल अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत ही है ॥ ६८८ ॥

तदप्यपञ्चीकृतभूतजातं रजस्तमःसत्त्वगुणैश्च सार्धम् ।
अव्यक्तमात्रं भवति स्वरूपतः साभासमव्यक्तमिदं स्वयञ्च ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ—(च) और (रजस्तमःसत्त्वगुणैः, साधम्) रज तम और सत्त्वगुणके सहित (तत्) वह (अपञ्चीकृतभूतमात्रम्, अपि) अपञ्चीकृत भूतमात्र भी (स्वस्वरूपतः) स्वरूपसे (अव्यक्तमात्रम्) प्रकृतिमात्र (भवति) होता है ; च) और (इदम्) यह (अव्यक्तम्) प्रकृति (स्वयम्) आप (साभासम्) चिदाभासयुक्त है ॥ ६८९ ॥

भावार्थ-रजः, तम और सत्त्वगुणके सहित अपञ्चीकृत पञ्चभूत वास्तवमें अव्यक्त मायामात्र हैं और यह माया चिदाभासयुक्त है ॥ ६८९ ॥

आधारभूतं तदखण्डमाद्यं शुद्धं परं ब्रह्म सदैकरूपम् ।
सन्मात्रमेवाऽस्त्यथ नो विकल्पः सतः परं केवलमेव वस्तु ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) वह (आधारभूतम्) आधाररूप (अखंडम्) खण्डरहित (आद्यम्) प्रथम (शुद्धम्) दोषरहित (सदा) सर्वदा (एकरूपम्) अभिन्नरूप (सन्मात्रम्) सत्स्वरूप (परं ब्रह्म) परब्रह्म(एव) ही (अस्ति) है (अथ) और (सतः) सत्से (परम्) अन्य (केवलम्) शुद्ध (वस्तु) पदार्थ (एव) भी [अस्ति] है [इति] ऐसा (विकल्पः) कल्पना (नो) नहीं [कर्त्तव्यः] करनी चाहिये ॥ ६९० ॥

भावार्थ-सबका आश्रय, अखण्ड, प्रथम, शुद्ध, सर्वदा एकरूप सत्स्वरूप परब्रह्म ही विद्यमान है, सत् वस्तुके सिवाय और कोई वस्तु भी है, यह तो कल्पना भी नहीं कीजासकती ॥ ६९० ॥

एकश्चन्द्रः सद्वितीयो यथा स्याद् दृष्टेर्दोषादेव पुंसस्तथैकम् ।
ब्रह्मास्त्येतद् बुद्धिदोषेण नाना दोषे नष्टे भाति वस्त्वेकमेव ६९१

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (पुंसः) पुरुषकी (दृष्टेः) दृष्टिके (दोषात्, एव) दोषसे ही (एकः) एक (चन्द्र) चन्द्रमा (सद्वितीयः) दूसरे से युक्त (स्यात्) होजाय (तथा) तैसे (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म (एकम्) एक (अस्ति) है (बुद्धिदोषेण) बुद्धिके दोषसे (नाना) अनेक प्रकारका [भाति] भासता है (दोषे नष्टे) दोषके नष्ट होजाने पर (एकम्, एव) एक ही (वस्तु) वस्तु [भाति] प्रतीत होता है ॥ ६९१ ॥

भावार्थ-जैसे मनुष्यकी दृष्टिके दोषसे एक ही चन्द्रमा दो चन्द्रमासा प्रतीत होता है, ऐसे ही ब्रह्म बुद्धिके दोषसे अनेक रूपवाला प्रतीत होरहा है, इस बुद्धिदोषके नष्ट होजाने पर एक सत् वस्तु ही प्रतीत होती है ॥ ६९१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रज्जोः स्वरूपाधिगमे तु सर्पधी रज्ज्वां विलीना तु यथा तथैव ।
ब्रह्मावगत्या तु जगत्प्रतीतिस्तत्रैव लीना तु सह भ्रमेण ॥ ६९२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (रज्जोः) रस्सीके (स्वरूपाधिगमे) स्वरूपका ज्ञान होजाने पर (सर्पधीः) सर्पबुद्धि (न) नहीं [भवति] होती है (तु) किन्तु (रज्ज्वाम्) रस्सीमें (विलीना) विलीन [जायते] होजाती है (तथा एव) तैसे ही (ब्रह्मावगत्या) ब्रह्मज्ञान होजानेसे (जगत्प्रतीतिः, तु) जगत्की प्रतीति तो (भ्रमेण, सह) भ्रमके साथ (तत्र, एव) उसमें ही (लीना) लीन [भवति] होजाती है ॥ ६९२ ॥

भावार्थ—जैसे रस्सीके स्वरूपका ज्ञान होजाने पर फिर सर्पकी बुद्धि नहीं रहती किन्तु रस्सीमें ही विलीन होजाती है, ऐसे ही ब्रह्मज्ञान होजाने पर फिर जगत्की प्रतीति नहीं होती, किन्तु यह सब जगत् भ्रान्तिके सहित ब्रह्ममें ही लीन हो जाता है ॥ ६९२ ॥

भ्रान्त्योदितद्वैतमतिप्रशान्त्या सदैकमेवास्ति सदाद्वितीयम् ।
ततो विजातीयकृतोऽत्र भेदो न विद्यते ब्रह्मणि निर्विकल्पे ६९३

अन्वय और पदार्थ—(सदा) सर्वदा (अद्वितीयम्) द्वितीयरहित ब्रह्म (भ्रान्त्या) भ्रान्ति करके (उदितमतिप्रशान्त्या) उत्पन्न हुए द्वैतज्ञानकी शांति होजानेसे (सदा) सर्वदा (एकम्, एव) एक ही (अस्ति) है (ततः) तिससे (अत्र) इस (निर्विकल्पे) विकल्परहित (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (विजातीयकृतः) विजातीय पदार्थका किया हुआ (भेदः) भेद (न) नहीं (विद्यते) है ॥ ६९३

भावार्थ—भ्रान्तिसे उत्पन्न हुई द्वैतबुद्धिके दूर होजाने पर एक अद्वितीय ब्रह्म स्थित रहता है, इसलिये इस विकल्पशून्य ब्रह्ममें विरुद्ध जातिके पदार्थका भेद नहीं है ॥ ६९३ ॥

यदाऽस्त्युपाधिस्तदभिन्न आत्मा तदा सजातीय इवावभाति ।
स्वप्नार्थतस्तस्य मृषार्थकत्वात् तदप्रतीतौ स्वयमेव आत्मा ॥
ब्रह्मैकरामेति पृथङ् न भाति ततः सजातीयकृतो न भेदः ६९४

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (उपाधिः) बुद्धि आदि भेदका धर्म (अस्ति) है (तदा) तब (तदभिन्नः) उस उपाधिसे अभिन्न (आत्मा)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मा (सजातीय, इव) समान जाति वालासा (अवभाति) प्रतीत होता है (स्वप्नार्थतः) स्वप्नके भावसे (तस्य) उस उपाधिके (मृषात्मकत्वात्)मिथ्या-भूत होनेसे (तदप्रतीतौ) उस उपाधिका अदर्शन होने पर (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (स्वयम्) अपने आप (ब्रह्मैकताम्) ब्रह्मरूप अद्वितीयपनेको (एति) प्राप्त होजाता है (पृथक्) भिन्न (न) नहीं (भाति) भासता है (अतः) तिससे (सजातीयकृतः) सजातीय पदार्थका किया हुआ (भेदः) भेद (न) नहीं [अस्ति] है ॥ ६६४ ॥

भावार्थ–जब बुद्धि आदि उपाधि होती है और उपाधिके साथ आत्मा अभिन्न प्रतीत होता है, उस समय आत्मा सजातीय भेद वालासा भासता है, स्वप्नमें देखे हुए पदार्थकी समान उपाधिकी अप्रतीति होने पर यह आत्मा स्वयं ही अद्वितीय ब्रह्मरूपसे प्रतीत होने लगता है, उस समय पृथक्‌रूपसे नहीं भासता,इसलिये आत्मामें सजातीयकृत भेद नहीं है ॥ ६६४ ॥

घटाभावे घटाकाशो महाकाशो यथा तथा ।
उपाध्यभावे त्वात्मैव स्वयं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ६६५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यथा) जैसे (घटाभावे) घटका अभाव होने पर (घटाकाशः) घटाकाश (महाकाशः) महाकाश [अस्ति] है (तथा) तैसे ही (उपाध्यभावे, तु) उपाधिका अभाव होने पर तो (स्वयम्) आप (एषः) यह (आत्मा, एव) आत्मा ही (केवलम्) केवल (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही है ।६६५।

भावार्थ–जैसे घटका अभाव होजाने पर घटके भीतरका आकाश महाकाश के सिवाय और कुछ नहीं है, ऐसे ही उपाधिका अभाव होजाने पर यह आत्मा शुद्ध ब्रह्म ही है ॥ ६६५ ॥

पूर्ण एव सदाकाशो घटे सत्यप्यसत्यपि ।
नित्यपूर्णस्य महतो विच्छेदः केन सिध्यति ॥ ६६६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(घटे) घटके (सति, अपि) होने पर भी (असति,अपि) न होने पर भी (सदा) सर्वदा (आकाशः) आकाश (पूर्ण, एव) पूर्ण ही है (नित्यपूर्णस्य) सदा परिपूर्ण (महतः) महान् पदार्थका (विच्छेदः) वियोग (केन) किसके द्वारा (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ६६६ ॥

भावार्थ–घट रहे या न रहे, आकाश सदा ही परिपूर्ण रहता है, क्योंकि–सदा पूर्णस्वभाव महान् पदार्थको कौन जुदा कर सकता है ? ॥ ६६६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अच्छिन्नाश्छिन्नवद्भाति पामराणां घटादिना ।
ग्रामक्षेत्राद्यवधिभिर्भिन्नैव वसुधा यथा ॥ ६९७ ॥
तथैव परमं ब्रह्म महताञ्च महत्तमम् ।
परिच्छिन्नमिवाभाति भ्रान्त्या कल्पितवस्तुना ॥ ६९८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (अच्छिन्नः) असीम [आकाशः] आकाश (पामराणाम्) पामरोंको (घटादिना) घट आदिके द्वारा (छिन्नवत्) परिच्छिन्नसा (भाति) प्रतीत होता है (वसुधा) पृथिवी (ग्रामक्षेत्राद्यवधिभिः) ग्राम खेत आदिकी सीमाओंसे (भिन्ना, इव) पृथक् २ सी [भाति] भासती है (तथा, एव) तैसे ही (महतां, च) महत् पदार्थोंका भी (महत्तमम्) अधिक महान् (परमं, ब्रह्म) परम ब्रह्म (भ्रान्त्या) भ्रान्ति करके (कल्पितवस्तुना) कल्पित वस्तुके द्वारा (परिच्छिन्नं, इव) परिच्छिन्नसा (आभाति) प्रतीत होता है ॥

भावार्थ-जैसे असीम आकाश पामरोंको घट मठ आदिके द्वारा परिच्छिन्न (खंड खंड) सा प्रतीत होता है और एक पृथिवी ग्राम खेत आदिकी सीमाओंसे से भिन्न २ सी प्रतीत होती है, ऐसे ही सकल महान् वस्तुओंसे भी महान् परब्रह्म भ्रांतिसे आरोपित वस्तुओंके द्वारा परिच्छिन्नसा प्रतीत होता ॥ ६९७-६९८ ॥

तस्माद् ब्रह्मात्मनोर्भेदः कल्पितो न तु वास्तवः ।
अत एव मुहुः श्रुत्याऽप्येकत्वं प्रतिपाद्यते ॥ ६९९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (ब्रह्मात्मनोः) ब्रह्म और जीवका (भेदः) भेद (कल्पितः) कल्पित है (वास्तवः, तु) वास्तविक तो (न) नहीं है (अतएव) इसलिये ही (श्रुत्या, अपि) श्रुति करके भी (मुहुः) वारम्वार (एकत्वम्) एकरूपता (प्रतिपाद्यते) वर्णन की जाती है ॥ ६९९ ॥

भावार्थ-इसलिये ब्रह्म और जीवमें जो भेद भासता है वह कल्पित है, वास्तविक नहीं है, श्रुतिने भी वार २ आत्माकी एकता को ही कहा है ॥ ६९९ ॥

ब्रह्मात्मनोस्तत्त्वमसीत्यद्वयत्वोपपत्तये ।
प्रत्यक्षादिविरोधेन वाच्ययोर्नोपयुज्यते ॥
तत्त्वं पदार्थयोरैक्यं लक्ष्ययोरेव सिध्यति ॥ ७०० ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्वम्) तू (तत्) वह ब्रह्म (असि) है (इति) यह

(ब्रह्मात्मनोः) ब्रह्म और जीवात्माकी (अद्वयोपपत्तये) अभिन्नताका प्रतिपादन करनेके लिये (प्रत्यक्षादिविरोधेन) प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंका विरोध होनेसे (वाच्ययोः) अभिधा शक्तिसे प्राप्त अर्थोंमें (न) नहीं (उपयुज्यते) उपयुक्त होता है (लक्ष्ययोः) लक्षण वृत्तिसे प्राप्त (तत्त्वंपदार्थयोः) तत् त्वं पदके अर्थोंमें (एव) ही (ऐक्यम्) एकता (सिध्यति) सिद्ध होती है ॥ ७०० ॥

भावार्थ-तत्त्वमसि तू वह ब्रह्म है, इस श्रुतिके द्वारा ब्रह्म और जीवात्माकी एकताका प्रतिपादन करनेमें प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके साथ विरोध पड़ता है, इस लिये अभिधाशक्तिसे लभ्य वाच्यार्थ ठीक नहीं बैठता, तत्पदार्थ और त्वं पदार्थके लक्षणावृत्तिसे प्राप्त होनेवाले लक्ष्यार्थके द्वाराही एकता स्थापित होती है ॥७०० ॥

शिष्य उवाच—

स्यात् तत्त्वंपदयोः स्वामिन्नर्थः कतिविधो मतः ।
पदयोः को नु वाच्यार्थो लक्ष्यार्थ उभयोश्च कः ॥ ७०१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शिष्यः) शिष्य (उवाच) बोला (स्वामिन्) हे प्रभो (तत्त्वंपदयोः) तत् और त्वम् पदका (कतिविधः) कितने प्रकारका (अर्थः) अर्थ (स्यात्) होगा (उभयोः) दोनों (पदयोः) पदोंका (वाच्यार्थः) वाच्य अर्थ (च) और (लक्ष्यार्थः) लक्ष्य अर्थ (कः,नु) कौनसा है ॥७०१॥

भावार्थ-शिष्यने कहा, कि-हे प्रभो ! तत् और त्वं पदका कितने प्रकारका अर्थ है और इन दोनों पदोंका वाच्य तथा लक्ष्य अर्थ क्या है ॥ ७०१ ॥

वाच्यैकत्वविवक्षायां विरोधः कः प्रतीयते ।
लक्ष्यार्थयोरभिन्नत्वे स कथं विनिवर्त्तते ॥ ७०२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वाच्यैकत्वविवक्षायाम्) दोनों वाच्य अर्थोंकी अभिन्नताको कहनेकी इच्छा होने पर (कः) क्या (विरोधः) विरोध (प्रतीयते) प्रतीत होता है (लक्ष्यार्थयोः) दोनों लक्ष्य अर्थोंकी (अभिन्नत्वे) एकता होने पर (सः) वह विरोध (कथम्) कैसे (निवर्त्तते) दूर होता है ॥ ७०२ ॥

भावार्थ-दोनों वाच्य अर्थोंकी अभिन्नताको कहनेकी इच्छा होने पर कैसे विरोध प्रतीत होता है और दोनों लक्ष्य अर्थोंकी एकता होने पर दूर होजाता है ? ॥ ७०२ ॥

एकत्वकथने का वा लक्षणावृत्तिरी कुना

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतत्सर्वं करुणया सम्यक् त्वं प्रतिपादय ॥ ७०३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस स्थलमें (एकत्वकथने) अभेदको कहनेमें (का वा) कौनसी (लक्षणा)-लक्षणा (वरीकृता) स्वीकार की है (एतत्) यह(सर्वम्) सब (त्वम्) आप (करुणया) दया करके(सम्यक्) भले प्रकार (प्रतिपादय) कहिये ॥ ७०३ ॥

भावार्थ-'तत्त्वमसि' महावाक्यमें अभेदका वर्णन करनेमें कौनसी लक्षणा स्वीकार की है, आप दया करके यह सब मुझे भले प्रकार बता दीजिये ॥७०३॥

तत्त्वंपदार्थः

श्री गुरुरुवाच—

शृणुष्वावहितो विद्वन् अद्य ते फलितं तपः।

वाक्यार्थं श्रुतिमात्रेण सम्यग् ज्ञानं भविष्यति ॥ ७०४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रीगुरुः) श्रीगुरु (उवाच) बोले (विद्वन्) हे पण्डित ! (अवहितः) सावधान [सन्] होता हुआ (शृणुष्व) सुन (अद्य) आज (ते) तेरा (तपः) तप (फलितम्) सफल होगया (वाक्यार्थश्रुतिमात्रेण) वाच्यार्थके श्रवणमात्रसे (सम्यक्) उत्तमतासे (ज्ञानम्) तत्त्वज्ञान (भविष्यति) होगा ॥७०४॥

भावार्थ-शिष्यके प्रश्नको सुनकर श्रीगुरुदेवने कहा, कि-हे विद्वन् ! तू ध्यान देकर सुन, आज तेरी तपस्या सफल होगई, तत्त्वमसि महावाक्यके अर्थको सुनते ही तुझे तत्त्वज्ञान उत्पन्न होजायगा ॥ ७०४ ॥

यावन्न तत्त्वंपदयोरर्थः सम्यग् विचार्यते ।

तावदेव नृणां बन्धो मृत्युसंसारलक्षणः ॥ ७०५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यावत्) जबतक (तत्त्वंपदयोः) तत् और त्वं पदका (अर्थः) अर्थ (सम्यक्) भले प्रकार (न) नहीं (विचार्यते) विचाराजाता है (तावत्, एव) तब तकही (नृणाम्) मनुष्योंको (मृत्युसंसारलक्षणः) मरण और आवागमनरूप (बन्धः) बन्धन [अस्ति] है ॥ ७०५ ॥

भावार्थ-जब तक तत् पद और त्वं पदके अर्थका अच्छे प्रकारसे विचार नहीं किया जाता है, तब तकही मनुष्योंको मरण और संसारमें आवागमन रूप बन्धन रहता है ॥ ७०५ ॥

अवस्था सच्चिदानन्दाखण्डैकरसरूपिणी ,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मोक्षः सिध्यति वाक्यार्थापरोक्षज्ञानतः सताम् ॥ ७०६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सताम्) सत्पुरुषोंको (वाक्यार्थापरोक्षज्ञानतः) तत्त्वमसि महावाक्यके प्रत्यक्ष ज्ञानसे (सच्चिदानन्दाखण्डैकरसरूपिणी) सत्-चित्-आनन्दरूप अखण्ड-एक-रस-स्वरूप (अवस्था) दशा (मोक्षः) मुक्ति (सिध्यति) सिद्ध होती है ॥ ७०६ ॥

भावार्थ—तत्त्वमसि वाक्यार्थके प्रत्यक्ष ज्ञानसे साधुओंको सच्चिदानन्द अखण्ड एकरसरूप मोक्ष दशा प्राप्त होती है ॥ ७०६ ॥

वाक्यार्थ एव ज्ञातव्यो मुमुक्षोर्भवमुक्तये ।
तस्मादवहितो भूत्वा शृणु वक्ष्ये समासतः ॥ ७०७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मुमुक्षोः) मुमुक्षुको (भवमुक्तये) संसारसे मुक्ति पानेके लिये (वाक्यार्थः, एव) तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ ही (ज्ञातव्यः) जानना चाहिये (तस्मात्) तिससे (अवहितः) सावधान (भूत्वा) होकर (शृणु) सुन (समासतः) संक्षेपसे (वक्ष्ये) कहूँगा ॥ ७०७ ॥

भावार्थ—मुमुक्षु मनुष्यको संसारबंधनसे मुक्ति पानेके लिये 'तत्त्वमसि' महावाक्यके अर्थको ही जानना चाहिये, इस लिये मैं संक्षेपसे कहता हूँ तू सावधान होकर सुन ॥ ७०७ ॥

अर्था बहुविधाः प्रोक्ता वाक्यानां पण्डितोत्तमैः ।
वाच्यलक्ष्यादिभेदेन प्रस्तुतं श्रूयतां त्वया ॥ ७०८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पण्डितोत्तमैः) श्रेष्ठ पण्डितोंने (वाच्यलक्ष्यादिभेदेन) वाच्य लक्ष्य आदि भेदसे (वाक्यानाम्) वाक्योंके (बहुविधाः) बहुत प्रकारके (अर्थाः) अर्थ (प्रोक्ताः) कहे हैं (प्रस्तुतम्) प्रसङ्गवश प्राप्त (त्वया) तुझ करके (श्रूयताम्) सुनाजाय ॥ ७०८ ॥

भावार्थ—प्रधान २ पण्डितोंने वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थके भेदसे वाक्योंके बहुत प्रकारके अर्थ कहे हैं, मैं उनका कहना आरम्भ करता हूँ, तू सुन ॥ ७०८ ॥

तत्पदार्थ—

वाक्ये तत्त्वमसीत्यत्र विद्यते यत्पदत्रयम् ।
तत्रादौ विद्यमानस्य तत्पदस्य निगद्यते ॥ ७०९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(तत्, त्वम्, असि) वह ब्रह्म तू है इति) इस प्रकार (अत्र) इस (वाक्ये) वाक्यमें (यत्) जो (पदत्रयम्) तीन पद हैं (तत्र) उनमें (आदौ) आदिमें विद्यमान (तत्पदस्य) तत् पदका [अर्थः] अर्थ (निगद्यते) कहाजाता है ॥ ७०६ ॥

भावार्थ—तत्त्वमसि, इस महावाक्यमें 'तत्, त्वम्, असि' ये तीन पद हैं, इनमें से पहले तत् पदका अर्थ कहते हैं ॥ ७०६ ॥

वाच्यार्थविरोधः ।

शास्त्रार्थकोविदैरर्थो वाच्यो लक्ष्य इति द्विधा ।
वाच्यार्थं ते प्रवक्ष्यामि पण्डितैर्य उदीरितः ॥ ७१० ॥

अन्वय और पदार्थ-(शास्त्रार्थकोविदैः) शास्त्रके अर्थको जाननेमें प्रवीण (पण्डितैः) पण्डितोंने (वाच्यः) अभिधा वृत्तिसे प्राप्त होनेवाला (लक्ष्यः) लक्षणा वृत्तिसे प्राप्त होनेवाला (इति) इसप्रकार (द्विधा) दो प्रकारका (यः) जो (अर्थः) अर्थ (उदीरितः) कहा है (ते) तेरे अर्थ (वाच्यार्थम्) वाच्य अर्थको (प्रवक्ष्यामि) कहूँगा ॥ ७१० ॥

भावार्थ—शास्त्रके अर्थको समझे हुए पण्डितोंने वाच्य और लक्ष्य ये दो प्रकारके अर्थ कहे हैं, मैं तुझसे वाच्य अर्थ कहता हूँ—॥ ७१० ॥

समष्टिरूपमज्ञानं साभासं सत्त्वबृंहितम् ।
वियदादि विराडन्तं स्वकार्येण समन्वितम् ॥ ७११ ॥
चैतन्यं तदवच्छिन्नं सत्यज्ञानादिलक्षणम् ।
सर्वज्ञत्वेश्वरत्वान्तर्यामित्वादिगुणैर्युतम् ॥ ७१२ ॥
जगत्स्रष्टृत्वपातृत्वसंहर्तृत्वादिधर्मकम् ।
सर्वात्मना भासमानं यदमेयं गुणैश्च तत् ॥ ७१३ ॥
अव्यक्तमपरं ब्रह्म वाच्यार्थ इति कथ्यते ।
नीलमुत्पलमित्यत्र यथा वाक्यार्थसंगतिः ॥ ७१४ ॥
तथा तत्त्वमसीत्यत्र नास्ति वाक्यार्थसंगतिः ।
पटाद् व्यावर्त्तते नील उत्पलेन विशेषितः ॥ ७१५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शौक्ल्याद्व्यावर्त्तते नीलेनोत्पलन्तु विशेषितम्।
इत्थमन्योऽन्यभेदस्य व्यावर्त्तकतया तयोः ॥ ७१६ ॥
विशेषणविशेष्यत्वं संसर्गस्येतरस्य वा।
वाक्यार्थत्वे प्रमाणान्तरविरोधो न विद्यते ॥ ७१७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समष्टिरूपम्) समूहरूप (अज्ञानम्) अज्ञान (साभासम्) चिदाभासयुक्त (सत्त्ववृंहितम्) सत्त्वगुणसे बढ़ीहुई (स्वकार्येण, समन्वितम्) अपने कार्यके सहित (वियदादि) आकाशसे लेकर (विराडन्तम्) विराट् पर्यन्त है (तदवच्छिन्नम्) उस अज्ञानसे विशिष्ट (सत्यज्ञानादिलक्षणम्) सत्यज्ञानआनन्दस्वरूप (चैतन्यम्) चैतन्य (सर्वज्ञत्वेश्वरत्वान्तर्यामित्वादिगुणैः) सर्वज्ञत्व, ईश्वरत्व, अन्तर्यामित्व आदि गुणों करके (युतम्) युक्त (जगत्सृष्टत्वपालनसंहर्तृत्वादिधर्मकम्) जगत्का सृष्टिकर्त्तापन पालनकर्त्तापन और संहारकर्त्तापन आदि धर्मोंवाला (सर्वात्मना) सर्वरूपसे (भासमानम्) प्रकाशमान (गुणैः, च) गुणों करके भी (यत्) जो (अमेयम्) परिमाण करने योग्य नहीं है (तत्) वह (अव्यक्तम्) व्यक्तभावसे रहित (अपरम्) परसे अन्य (ब्रह्म) ब्रह्म (वाच्यार्थः) अभिधा शक्तिके द्वारा प्राप्त होनेवाला अर्थ (इति) ऐसा (कथ्यते) कहाजाता है (यथा) जैसे (नीलम्) नीला (उत्पलम्) कमल (इति) ऐसे (अत्र) इस वाक्यमें (वाक्यार्थसङ्गतिः) वाक्यके अर्थकी सङ्गति [भवति] होती है (तथा) वैसे (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इस वाक्यमें (वाक्यार्थसङ्गतिः) वाक्यके अर्थकी सङ्गति (न) नहीं (अस्ति) है (नीलः) नील पदार्थ (उत्पलेन) कमलके द्वारा (विशेषितः) विशेषण वाला [सन्] होताहुआ (पटात्) वस्त्र से (व्यावर्त्तते) पृथक् होता है (तु) परन्तु (उत्पलम्) कमल (नीलेन) नील के द्वारा (विशेषितम्) विशेषणयुक्त [सत्] होताहुआ (शौक्ल्यात्) शुक्लवर्णसे (व्यावर्त्तते) पृथक् होता है (इत्थम्) इस प्रकार (तयोः) उन नील और कमलका (अन्योऽन्यभेदस्य) परस्परके भेदका (व्यावर्त्तकतया)निवर्त्तक होनेसे (विशेषणविशेष्यत्वसंसर्गस्य) विशेषणविशेष्यभाव सम्बन्ध (वा) अथवा (इतरस्य) अन्य (वाक्यार्थत्वे) वाक्यका अर्थ होनेमें (प्रमाणान्तरविरोधः) अन्य प्रमाणके साथ विरोध (न) नहीं (विद्यते) है ॥७११-७१७॥

भावार्थ-अपने कार्यके सहित चिदाभासयुक्त आकाशसे लेकर विराट्पर्यन्त

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

समष्टिरूप अज्ञान (अविद्या) है, उस अज्ञानसे अवच्छिन्न (विशिष्ट), सत्य-ज्ञान-आनन्दस्वरूप चैतन्य सर्वज्ञत्व ईश्वरत्व और अन्तर्यामित्व आदि गुणोंसे युक्त, जगत्‌का सृष्टिकर्त्तापन पालनकर्त्तापन और संहारकर्त्तापन आदि धर्मोवाला और अपरिमित गुणोंसे युक्त तथा सर्वा-प्रभावसे प्रकाशमान होकर अव्यक्त अपर ब्रह्म कहाजाता है और वही वाच्य अर्थ कहाजाता है 'नीलमुत्पलम्—नील कमल' इस वाक्यमें जैसे वाक्यके अर्थकी सङ्गति होती है, नील पदार्थ कमलके-द्वारा विशेषण वाला होकर वस्त्रसे व्यावृत्त (पृथक्) होता है और कमल नीलके द्वारा विशेषण वाला होकर शुक्लसे व्यावृत्त होता है। इस प्रकार नील और उत्पल (कमल) ये दोनों पदार्थ परस्परके भेदका व्यावर्त्तकत्व (निवारण) करते हैं, इसलिये विशेषणविशेष्यभाव सम्बन्ध अथवा अन्य वाक्यार्थ होने पर प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के साथ कोई विरोध नहीं होता है॥ ७११–७१७॥

अतः संगच्छते सम्यग् वाक्यार्थौ बाधवर्जितः।
एवं तत्त्वमसीत्यत्र वाक्यार्थो न समञ्जसः॥ ७१८॥

अन्वय और पदार्थ—(अतः) इससे (बाधवर्जितः) बाधरहित (वाक्यार्थः) वाक्यका अर्थ (सम्यक्) भलेप्रकारसे (सङ्गच्छते) सङ्गत होता है (एवम्) ऐसे (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इस वाक्यमें (वाक्यार्थः) वाक्यका अर्थ (समञ्जसः) सङ्गत (न) नहीं [भवति] होता है॥ ७१८॥

भावार्थ—इसलिये 'नीलं उत्पलम्, नीला कमल' इस वाक्यमें बाधारहित वाक्यार्थ ठीक बैठजाता है परन्तु 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यमें वाक्यार्थ ठीक नहीं बैठता॥ ७१८॥

तदर्थस्य परोक्षत्वादिविशिष्टचितेरपि।
त्वमर्थस्यापरोक्षत्वादिविशिष्टचितेरपि॥ ७१९॥
तथैवान्योन्यभेदस्य व्यावर्त्तकतया तयोः।
विशेषणविशेष्यस्य संसर्गस्येतरस्य वा॥ ७२०॥
वाक्यार्थत्वे विरोधोऽस्ति प्रत्यक्षादिकृतस्ततः।
सगच्छे न वाक्यार्थस्तद्विरोधञ्च वच्मि ते॥ ७२१॥

अन्वय और पदार्थ—(तदर्थस्य) तत् पदके अर्थ (परोक्षत्वादिविशिष्टचितेः,

अपि) अप्रत्यक्षपना आदि युक्त चैतन्यका भी (त्वमर्थस्य) त्वं पदके अर्थ (अपरोक्षत्वादिविशिष्टचितेः, अपि) प्रत्यक्षपना आदि युक्त चैतन्यका भी (तथा, एव) तैसे ही (तयोः) उन तत् और त्वं पदके (अन्योन्यभेदस्य) परस्परके अन्योन्यभावके (व्यावर्त्तकतया) निवर्त्तक होनेसे (विशेषणविशेष्यस्य) विशेषण विशेष्यभावरूप (संसर्गस्य) सम्बन्ध (वा) या (इतरस्य) दूसरा (वाक्यार्थत्वे) वाक्यार्थ करनेमें (प्रत्यक्षादिकृतः) प्रत्यक्ष आदिका कियाहुआ (विरोधः) विरोध (अस्ति) है (ततः) तिससे (वाक्यार्थः) वाक्यका अर्थ (न) नहीं (सङ्गच्छते) बैठता है (ते) तेरे अर्थ (तद्विरोधं, च) उसके विरोधको भी(वच्मि) कहता हूँ ॥ ७१९—७२१ ॥

भावार्थ—'नीलमुत्पलम्, नीला कमल' इस वाक्यकी समान 'तत्त्वमसि–वह तू है' इस वाक्यमें वाक्यार्थ क्यों नहीं बैठता, सो दिखाते हैं, कि–'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें तत् पदका अर्थ-परोक्षत्व (प्रत्यक्ष न होना) आदिसे युक्त चैतन्य लियाजाता है और त्वं पदका अर्थ–अपरोक्षत्व (प्रत्यक्ष होना) आदिसे युक्त चैतन्य लियाजाता है। तत् और त्वं इन दोनों पदोंका अर्थ यदि परस्परके भेद (अन्योन्याभाव) का व्यावर्त्तक (दूर करनेवाला) होकर विशेषणविशेष्यभाव या और वाक्यार्थ होता है तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके साथ विरोध होता है, इस लिये वाक्यार्थ ठीक नहीं बैठता, क्या विरोध होता है वह भी कहता हूँ ।१९-२१।

सर्वेशत्वस्वतन्त्रत्वसर्वज्ञत्वादिभिर्गुणैः ।
सर्वोत्तमः सत्यकामः सत्यसंकल्प ईश्वरः ॥ ७२२ ॥
तत्पदार्थस्त्वमर्थस्तु किञ्चिज्ज्ञो दुःखजीवनः ।
संसार्ययं तद्गतिको जीवः प्राकृतलक्षणः ॥ ७२३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सर्वेशत्वस्वतंत्रत्वसर्वज्ञत्वादिभिः) सबका ईश्वरपना स्वतन्त्रता और सर्वज्ञता आदि (गुणैः) गुणोंके द्वारा (सर्वोत्तमः) सबसे श्रेष्ठ (सत्यकामः) यथार्थ कामनावाला (सत्यसङ्कल्पः) सत्यसङ्कल्पवाला (ईश्वरः) परमेश्वर (तत्पदार्थः) तत्पदका वाच्य अर्थ [अस्ति] है (तु) परन्तु (किंचिज्ज्ञः) अल्पज्ञ (दुःखजीवनः) दुःखमय जीवनवाला (तद्गतिकः) उस परमेश्वरसे ही गति पानेवाला (प्राकृतलक्षणः) अधमरूप (अयम्) यह (संसारी) आवागमनवाला (जीवः) जीव (त्वंपदार्थः) त्वं पदका अर्थ [अस्ति] है ॥

भावार्थ–सर्वेश्वरता, स्वतन्त्रता और सर्वज्ञता आदि गुणोंके द्वारा सबसे

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्य, सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प परमेश्वर तत्पदका वाच्य अर्थ है और अल्पज्ञ दुःख से जीवनको बितानेवाला, परमेश्वरके अवलम्बसे सद्गतिवाला, संसारी जीव त्वं पदका वाच्य अर्थ है ॥ ७२२ ॥ ७२३ ॥

कथमेकत्वमनयोर्घटते विपरीतयोः ।
प्रत्यक्षेण विरोधोऽयमुभयोरुपलभ्यते ॥ ७२४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(विपरीतयोः) विरोधी (अनयोः) इनका (एकत्वम्) एकपना (कथम्) कैसे (घटते) होसकता है (उभयोः) दोनोंका (अयम्) यह (विरोधः) विरोध (प्रत्यक्षेण) प्रत्यक्षरूपसे (उपलभ्यते) पायाजाता है ॥

भावार्थ–ईश्वर और जीव इन दो विरोधी पदार्थोंकी एकता कैसे होसकती है ? इन दोनोंका विरोध प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ७२४ ॥

विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात्परस्परविलक्षणौ ।
जीवेशौ वह्नितुहिनाविव शब्दार्थतोऽपि च ॥ ७२५ ॥
प्रत्यक्षादिविरोधः स्यादित्यैक्ये तयोः परित्यक्ते ।
श्रुतिवचनविरोधो भवति महान् स्मृतिवचनविरोधश्च ॥

अन्वय और पदार्थ–(वह्नितुहिनो इव) अग्नि और बरफकी समान (विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात्) विपरीत धर्मवाले होनेसे (परस्परविलक्षणौ) आपसमें भिन्न (जीवेशौ) जीव और ईश्वर [विद्येते] हैं (च) और (शब्दार्थतः, अपि) इन शब्दोंके अर्थसे भी (प्रत्यक्षादिविरोधः) प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके साथ विरोध (स्यात्) होगा (इति) इसकारण (तयोः) उन दोनोंकी (ऐक्ये) एकताके (परित्यक्ते) छूट जाने पर (महान्) बड़ाभारी (श्रुतिवचनविरोधः) वेदवाक्य के साथ विरोध (च) और (स्मृतिवचनविरोधः) स्मृतिके वाक्योंके साथ विरोध (भवति) होता है ॥ ७२५ ॥ ७२६ ॥

भावार्थ–अग्नि और बरफकी समान विरुद्ध धर्मवाले होनेसे जीव और ईश्वरका स्वभाव आपसमें प्रतिकूल है, जीव और ईश्वर शब्दके अर्थको लेकर भी प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके साथ विराध पड़ता है, इन दोनोंकी एकता ही नहीं है, इसलिये वेदवाक्योंके साथ और स्मृति वचनोंके साथ भी बड़ा विरोध पड़ता है ॥

श्रुत्याप्येकत्वमनयोस्तात्पर्येण निगद्यते ।
मुहुस्तत्त्वमसीत्यस्मादङ्गीकार्यं श्रुतेर्वचः ॥ ७२७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(श्रुत्या, अपि) श्रुतिके द्वारा भी (अनयोः) इनका (एकत्वम्) अभेद (तात्पर्येण) तात्पर्यके द्वारा (निगद्यते) कहा जाता है (अस्मात्) इससे (मुहुः) बारबार (तत्त्वमसि, इति) तत्त्वमसि इस (श्रुतेः) श्रुतिका (वचः) वचन (अङ्गीकार्यम्) स्वीकार करना चाहिये ॥ ७२७ ॥

भावार्थ-श्रुति भी जीव और ब्रह्मकी एकताको तात्पर्यके द्वारा कहती है, इस लिये बारबार कहे हुए 'तत्त्वमसि' इस श्रुतिवाक्यको स्वीकार करना चाहिये ॥

वाक्यार्थत्वे विशिष्टस्य संसर्गस्य च वा पुनः ।
अयथार्थतया सोऽयं वाक्यार्थो न मतः श्रुतेः ॥ ७२८ ॥

अन्वय और पदार्थ (विशिष्टस्य) विशेषणविशेष्यभाव (वा) या (संसर्गस्य) सम्बन्धके (वाक्यार्थत्वे) वाक्यका अर्थ होनेपर (पुनः) फिर (अयथार्थतया) ठीक न होनेसे (सः) वह (अयम्) यह (वाक्यार्थः) वाक्यका अर्थ (श्रुतेः) वेदका (मतः) अभिमत (न) नहीं है ॥ ७२८ ॥

भावार्थ-तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ यदि विशेषणविशेष्यभाव वाला अथवा संसर्ग होता है तो ठीक वाक्यार्थ नहीं है और वह श्रुतिको अभिमत नहीं है ७२८

अखण्डैकरसत्वेन वाक्यार्थः श्रुतिसंमतः ।
स्थूलसूक्ष्मप्रपञ्चस्य सन्मात्रत्वं पुनः पुनः ॥ ७२९ ॥
दर्शयित्वा सुषुप्तौ तद् ब्रह्माभिन्नत्वमात्मनः ।
उपपाद्य सदेकत्वं प्रदर्शयितुमिच्छया ॥ ७३० ॥
ऐतदात्म्यमिदं सर्वमित्युक्त्यैव सदात्मनोः ।
अत्रीति श्रुतिरेकत्वं ब्रह्मणोऽद्वैतसिद्धये ॥ ७३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अखण्डैकरसत्वेन) अखण्ड एक रस रूपसे (वाक्यार्थः) तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ (श्रुतिसम्मतः) श्रुतिके अनुकूल है (श्रुतिः) उपनिषद् (स्थूलसूक्ष्मप्रपञ्चस्य) स्थूल सूक्ष्म जगत्के (सन्मात्रत्वम्) ब्रह्मरूपत्व को (पुनः, पुनः) बार २ (दर्शयित्वा) दिखाकर (सुषुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (आत्मनः) आत्माके (तद्ब्रह्माभिन्नत्वम्) उस ब्रह्मके अभेदभावको (उपपाद्य) उपपादन करके (सदेकत्वम्) सद्रूप ब्रह्मके साथ एकताको (प्रदर्शयितुम्) दिखानेकी (इच्छया) इच्छासे (इदम्) यह (सर्वम्) सब (ऐतदात्म्यम्) इस आत्माका रूप है (इति) ऐसा (उक्त्वा) कहकर (एव) ही (ब्रह्मणः)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ब्रह्मकी (अद्वैतसिद्धये) अद्वितीयताको सिद्ध करनेके लिये (सदात्मनोः) ब्रह्म और जीवकी (एकत्वम्) एकताको (ब्रवीति) कहता है ॥ ७२९-७३१ ॥

भावार्थ-यदि विशिष्ट वा संसर्ग वाक्यार्थ नहीं होसकता तो वाक्यार्थ क्या होगा ? इसके उत्तरमें कहते हैं, कि-अखण्ड एकरस रूप वस्तु ही श्रुतिसम्मत वाक्यार्थ है, क्योंकि-श्रुति वारवार स्थूल और सूक्ष्म जगत्के ब्रह्म-स्वरूपपनेको दिखाकर सुषुप्तिकालमें ब्रह्मके साथ जीवात्माकी अभिन्नताका वर्णन करती हुई, ब्रह्मकी एकताको दिखानेके अभिप्रायसे ये सब दृश्यमान जगत् आत्मासे जुदा नहीं है, ऐसा कहकर ब्रह्मकी अद्वितीयता सिद्ध करनेके लिये ब्रह्म और जीवात्माकी अभिन्नताको कहती है ॥ ७२९-७३१ ॥

सति प्रपञ्चे जीवे वाऽद्वैतत्वं ब्रह्मणः कुतः ।
अतस्तयोरखण्डत्वमेकत्वं श्रुतिसम्मतम् ॥ ७३२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रपञ्चे) जगत्के (वा) या (जीवे) जीवचैतन्य के (सति) होने पर (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (अद्वैतत्वम्) अद्वितीयपना (कुतः) कहाँ (अतः) इसकारण (तयोः) उनका (अखण्डत्वम्) अखण्डपना (एकत्वम्) अद्वितीयपना (श्रुतिसम्मतम्) श्रुतिका माना हुआ है ॥ ७३२ ॥

भावार्थ-जगत् वा जीवके विद्यमान होने पर ब्रह्मकी अद्वितीयता कैसे सिद्ध होगी ? इसलिये जीव और ब्रह्मकी अखण्डता तथा एकता उपनिषद्ने मानी है ७३२

विरुद्धांशपरित्यागात्प्रत्यक्षादिर्न बाध्यते ।
अविरुद्धांशग्रहणान्न श्रुत्यापि विरुध्यते ॥ ७३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विरुद्धांशपरित्यागात्) विरोधी भागको त्यागनेसे (प्रत्यक्षादिः) प्रत्यक्ष आदि (न) नहीं (बाध्यते) बाधित होता है (अविरुद्धांशग्रहणात्) अविरोधी भागको ग्रहण करनेसे (श्रुत्या, अपि) श्रुतिके साथभी (न) नहीं (विरुध्यते) विरोध होता है ॥ ७३३ ॥

भावार्थ-तत्त्वमसि वाक्यमें तत् पदका अर्थ परोक्षत्व आदि विशिष्ट चैतन्य है और त्वं पदका अर्थ अपरोक्षत्व आदि विशिष्टचैतन्य है इनमेंसे परोक्षत्व और अपरोक्षत्व आदि विरुद्ध भागको त्याग देनेसे पर प्रत्यक्ष आदि प्रमाणका भी बाध नहीं होता है; अविरुद्ध चैतन्य अंशको लेने पर श्रुतिके साथ भी विरोध नहीं पड़ता है ॥७३३ ॥

लक्षणार्थनिरूपणम् ।

लक्षणा ह्युपगन्तव्या ततो वाक्यार्थसिद्धये ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वाक्यार्थोऽनुपपत्त्यैव लक्षणाऽभ्युपगम्यते ॥ ७३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) जिससे (वाक्यार्थसिद्धये) वाक्यके अर्थका निर्णय करनेके लिये (लक्षणा) लक्षणा (उपगन्तव्या) स्वीकार करनी चाहिये (हि) क्योंकि-(वाक्यार्थानुपपत्त्या, एव) वाक्यके अर्थकी सङ्गति न होने से ही (लक्षणा) लक्षणावृत्ति (अभ्युपगम्यते) स्वीकार की जाती है ॥ ७३४ ॥

भावार्थ-इसकारण वाक्यके अर्थका निर्णय करनेके लिये लक्षणा स्वीकार करनी चाहिये, क्योंकि-जहाँ वाक्यके अर्थकी सङ्गति नहीं बैठती है, वहाँ लक्षणा की जाती है ॥ ७३४ ॥

सम्बन्धानुपपत्त्या च लक्षणेति जगुर्बुधाः

गङ्गायां घोष इत्यादौ या जहल्लक्षणा मता ॥ ७३५ ॥

न सा तत्त्वमसीत्यत्र वाक्य एषा प्रवर्त्तते ।

गङ्गाया अपि घोषस्याधाराधेयत्वलक्षणम् ॥७३६॥

अन्वय और पदार्थ—(बुधाः) पण्डित (सम्बन्धानुपपत्त्या) सम्बन्धके ठीक न बैठनेसे (लक्षणा) लक्षणा (इति) ऐसा (जगुः) कहते हैं (गङ्गायाम्) प्रवाहरूप भागीरथीमें (घोषः) ग्वालोंका गाँव [वसति] बसता है (इत्यादौ) इत्यादि स्थलोंमें (या) जो [भवति] होती है [सा] वह (जहल्लक्षणा) त्यागलक्षणा (मता) मानी गई है (तत्त्वमसि) वह तू है (इति) ऐसे (अत्र) इस (वाक्ये) वाक्यमें (सा) वह (एषा) लक्षणा (न) नहीं (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होती है (गङ्गायाः) गङ्गाका (अपि) और (घोषस्य) ग्वालोंके गाँवका (आधाराधेयत्वलक्षणम्) आधार और आधेय संबंध [अस्ति] है ॥ ७३५ ॥ ७३६ ॥

भावार्थ—जब सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता तब उसको पण्डित लक्षणा कहते हैं, जैसे—' गङ्गायां घोषः—प्रवाहरूप भागीरथीमें ग्वालोंका गाँव बसता है, इस वाक्यमें जो जहल्लक्षणा (त्यागलक्षणा) कही है, वह तत्त्वमसि वाक्यमें ठीक नहीं बैठ सकती; गङ्गामें ग्वालोंका गाँव बसता है, इस वाक्यमें गङ्गा और गाँवका आधाराधेय सम्बन्ध है, अर्थात् गङ्गा आधार है और घोष आधेय है, तत्त्वमसि वाक्यमें यह बात नहीं होसकती ॥ ७३५ ॥ ७३६ ॥

सर्वो विरुद्धवाक्यार्थस्तत्र प्रत्यक्षतस्ततः ।

गङ्गासम्बन्धवत्तीरे लक्षणा संप्रवर्त्तते ॥ ७३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(तत्र) उस 'गङ्गायां घोषः' वाक्यमें (प्रत्यक्षतः) प्रत्यक्ष प्रमाणसे (सर्वः) सब (विरुद्धवाक्यार्थः) वाक्य विरुद्ध अर्थ [प्रतीयते] प्रतीत होता है (ततः) तिससे (गङ्गासम्बन्धवत्तीरे) गङ्गाके सम्बन्धवाले किनारे में (लक्षणा) लक्षणा (संप्रवर्त्तते) प्रवृत्त होती है ॥ ७२७ ॥

भावार्थ-गङ्गामें ग्वालोंका गाँव बसता है, यहाँ प्रत्यक्षप्रमाणसे सब वाक्य विरुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि-कहीं प्रवाहमें गाँव बस सकता है ? कदापि नहीं बस सकता, इसलिये गङ्गासम्बन्धी तटमें लक्षणा होती है, अर्थात् गङ्गाप्रवाहमें नहीं, किन्तु गङ्गाके तट पर ग्राम बसता है ॥ ७२७ ॥

तथा तत्त्वमसीत्यत्र चैतन्यैकत्वलक्षणे ।
विवक्षिते तु वाक्यार्थेऽपरोक्षत्वादिलक्षणः ॥ ७२८ ॥
विरुध्यते भागमात्रो न तु सर्वो विरुध्यते ।
तस्माज्जहल्लक्षणायाः प्रवृत्तिर्नात्र युज्यते ॥ ७२९ ॥

अन्वय और पदार्थ (तथा) तैसे (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इस वाक्य में (एकत्वलक्षणे) एकत्वरूप (चैतन्ये) चेतनके (वाक्यार्थे) वाक्यका अर्थ (विवक्षिते) वक्ताका अभिमत होने पर (तु) तो (अपरोक्षत्वादिलक्षणः) प्रत्यक्षत्व आदिरूप (भागमात्रः) भागमात्र (विरुध्यते) विरुद्ध होता है (सर्वः, तु) सब तो (न) नहीं (विरुध्यते) विरुद्ध होता है (तस्मात्) तिससे (अत्र) इस तत्त्वमसि वाक्यमें (जहल्लक्षणायाः) त्यागलक्षणाकी (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (न) नहीं (युज्यते) युक्त होती है ॥ ७२८ ॥ ७२९ ॥

भावार्थ-इसप्रकार "तत्त्वमसि" इस वाक्यमें एकत्वरूप चैतन्य ही वाक्यका अर्थ करना वक्ताकी इच्छाके अनुकूल है, इस दशामें प्रत्यक्षस्वरूप एक अंशमात्रका विरोध होता है, सर्वांशमें विरोध नहीं है, इसलिये 'तत्त्वमसि' वाक्यमें जहल्लक्षणा नहीं होसकती ॥ ७२८ ॥ ७२९ ॥

वाच्यार्थस्य तु सर्वस्य त्यागे न फलमीक्ष्यते ।
नारिकेलफलस्येव कठिनत्वधिया नृणाम् ॥ ७४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(नृणाम्) मनुष्योंके (कठिनत्वधिया) कठिनताके विचारसे (नारिकेलफलस्य, इव) नारियलके फलकी समान (सर्वस्य) सब (वाच्यार्थस्य) वाच्य अर्थके (त्यागे, तु) त्यागने पर तो (फलम्) फल (न) नहीं (ईक्ष्यते) देखाजाता है ॥ ७४० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ–जैसे नारियलका फल कड़ा है, ऐसा समझकर मनुष्य यदि उसको यों ही फेंकदे तो उनको कुछ भी फल न मिले, ऐसे ही यदि 'तत्त्वमसि' के समस्त वाच्य अर्थको त्याग दिया जाय तो कुछ फल प्राप्त नहीं होसकता ॥७४०॥

गङ्गापदं यथा स्वार्थं त्यक्त्वा लक्षयते तटम् ।
तत्पदं त्वंपदं वाऽपि त्यक्त्वा स्वार्थं तथाऽखिलम् ॥७४१॥
तदर्थम्वा त्वमर्थम्वा यदि लक्षयति स्वयम् ।
तदा जहल्लक्षणायाः प्रवृत्तिरुपपद्यते ॥ ७४२ ॥
न शंकनीयमित्यार्यैर्ज्ञातार्थे न हि लक्षणा ।
तत्पदं त्वम्पदं वापि श्रूयते च प्रतीयते ॥ ७४३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यथा) जैसे (गङ्गापदम्) गङ्गाशब्द (स्वार्थम्) अपने अर्थको (त्यक्त्वा) त्यागकर (तटम्) तटको (लक्षयते) लक्षित करता है (तथा) तैसे ही (तत्पदम्) तत्त्वमसि वाक्यमें तत् पद (वा) या (त्वंपदं, अपि) त्वं पद भी (अखिलम्) सब (स्वार्थम्) अपने अर्थको (त्यक्त्वा) त्यागकर (यदि) यद्यपि (तदर्थम्) तत् पदके अर्थको (वा) या (त्वमर्थम्) त्वं पदके अर्थको (स्वयम्) आप (लक्षयति) लक्षित करे (तदा) तो (जहल्लक्षणायाः) जहल्लक्षणाकी (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (उपपद्यते) बन सकती है (इति) ऐसा (आर्यैः) श्रेष्ठ पुरुषों करके (न) नहीं (शङ्कनीयम्) सन्देह करना चाहिये (हि) क्योंकि–(ज्ञातार्थे) जाने हुए अर्थमें (लक्षणा) लक्षणा (न) नहीं [भवति] होती है (तत्पदम्) तत् पद (वा) या (त्वं, पदम्, अपि) त्वंपद भी (श्रूयते) सुननेमें आता है (च) और (प्रतीयते) प्रतीत होता है ॥ ७४१–७४२ ॥

भावार्थ–'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' इस वाक्यमें जैसे गङ्गा पद अपने प्रवाह-रूप अर्थको छोड़कर लक्षणावृत्तिके द्वारा तटको बताता है ऐसे ही तत् पद या त्वं पद अपने सब अर्थको छोड़कर यदि तत् पदके प्रतिपाद्य अर्थ वा त्वं पदके प्रतिपाद्य अर्थ (वस्तु) को बतावें तो यहाँ जहल्लक्षणा प्रवृत्त होसकती है, श्रेष्ठ पुरुषों को ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि—जाने हुए अर्थके विषयमें लक्षणा नहीं हो सकती, तत् पद और त्वं पद सुननेमें आता है और प्रतीत भी होता है ॥

तदर्थे च कथन्तत्र सम्प्रवर्तेत लक्षणा ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अत्र शोणो धावतीति वाक्यवन्न प्रवर्त्तते ॥ ७४४ ॥
अजहल्लक्षणा वाऽपि सा जहल्लक्षणा यथा ।
गुणस्य गमनं लोके विरुद्धं द्रव्यमन्तरा ॥ ७४५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्र) उस तत्त्वमसि वाक्यमें (तदर्थे) तत् पदके अर्थमें (कथम्) कैसे (लक्षणा) लक्षणा (संप्रवर्त्तेत) सम्यक् प्रकारसे प्रवृत्त होसकेगी (अत्र) यहाँ (शोणः) लाल रङ्ग (धावति) दौड़ रहा है (इति) इस (वाक्यवत्) वाक्यकी समान (यथा) जैसे (सा) वह (जहल्लक्षणा) त्याग-लक्षणा [तथा] तैसे (अजहल्लक्षणा वापि) अजहल्लक्षणा भी (न) नहीं (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होती है (द्रव्यं, अन्तरा) द्रव्यके विना (लोके) पृथिवी पर (गुणस्य) गुणका (गमनम्) चलना (विरुद्धम्) विपरीत है ॥ ७४४॥ ७४५ ॥

भावार्थ—तत्त्वमसि, इस वाक्यमें तत् पदकी प्रतिपाद्य वस्तुमें लक्षणा कैसे होसकती है ? जैसे 'गङ्गायां घोषः' इसकी समान जहल्लक्षणा नहीं होती, ऐसे ही 'शोणो धावति—लाल रङ्ग दौड़ता है' इस वाक्यकी समान अजहल्लक्षणा भी नहीं होसकती, द्रव्यके विना गुणका चलना लोकमें देखनेमें नहीं आता ४४-४५

अतस्तमपरित्यज्य तद्गुणाश्रयलक्षणः ।
लक्ष्यादिर्लक्ष्यते तत्र लक्षणासौ प्रवर्त्तते ॥ ७४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतः) इसलिये (तम्) उस गुणको (अपरित्यज्य) न त्यागकर (तद्गुणाश्रयलक्षणः) उस गुणका आश्रयरूप (लक्ष्यादिः) लक्ष्य आदि (लक्ष्यते) लक्षित होता है (तत्र) वहाँ (असौ) यह (लक्षणा) लक्षणा (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होती है ॥ ७४६ ॥

भावार्थ-द्रव्यके विना गुणका गमन असम्भव है, इसलिये गुणको न छोड़कर उस लाल रंग रूप गुणके आश्रय किसी (घोड़ा आदि) लक्ष्य पदार्थको बताती है ऐसे स्थलमें ही यह अजहल्लक्षणा प्रवृत्त होती है ॥ ७४६ ॥

वाक्ये तत्त्वमसीत्यत्र ब्रह्मात्मैकत्वबोधके ।
परोक्षत्वापरोक्षत्वादिविशिष्टचितोर्द्वयोः ॥ ७४७ ॥
एकत्वरूपवाक्यार्थो विरुद्धांशाविवर्जनात् ।
न सिध्यति यतस्तस्मान्नाजहल्लक्षणा मता ॥ ७४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) क्योंकि-(ब्रह्मात्मैकत्वबोधके) ब्रह्मके साथ

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जीवात्माकी अभिन्नताके बोधक (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इस (वाक्ये) वाक्यमें (द्वयोः) दोनों (परोक्षत्वापरोक्षत्वादिविशिष्टचितोः) अपरोक्षत्वयुक्त और प्रत्यक्षत्वयुक्त चैतन्यके (चिदंशविवर्जनात्) विरुद्धभागको त्याग देनेसे (एकत्वरूपवाक्यार्थः) दोनोंका अभेदरूप वाक्यार्थ (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है (तस्मात्) जिससे (अजहल्लक्षणा) अजहल्लक्षणा (न) नहीं (मता) अभिमत है ॥ ७४७ ॥ ७४८ ॥

भावार्थ—क्योंकि—जीव और ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें परोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य, और अपरोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य, इन दोनोंके विरुद्धभाव परोक्षत्व और अपरोक्षत्वको त्यागकर दोनोंकी एकतारूप वाक्यार्थ सिद्ध नहीं होता, इसलिये यहाँ अजहल्लक्षणा नहीं मानी है, ॥ ७४७-७४८ ॥

तत्पदं त्वंपदं वापि स्वकीयार्थविरोधिनम् ।
अंशं सम्यक् परित्यज्य स्वाविरुद्धांशसंयुतम् ॥ ७४९ ॥
तदर्थम्वा त्वमर्थम्वा सम्यग्लक्षयतः स्वयम् ।
भागलक्षणया साध्यं किमस्तीति न शंक्यताम् ॥ ७५० ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्पदम्) तत्पद (वा) और (त्वंम्पदं, अपि) त्वं पद भी (स्वकीयार्थविरोधिनम्) अपने अर्थके विरोधी (अंशम्) भागको (सम्यक्) भले प्रकार (परित्यज्य) त्यागकर (तदर्थम्) तत् पदके अर्थको (वा) या (त्वमर्थम्) त्वं पदके अर्थको (स्वयम्) अपने आप (सम्यक्) भलेप्रकार (लक्षयतः) लक्षित करते हैं (भागलक्षणया) भागलक्षणाके द्वारा (किम्) क्या (साध्यम्) फल (अस्ति) है (इति) ऐसा (न) नहीं (शंक्यताम्) सन्देह करना चाहिये ॥ ७४९ ॥ ७५० ॥

भावार्थ—यदि 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमेंके तत्पद और त्वं पद अपने २ अर्थके विरोधी भागको त्यागकर अपने २ अविरोधी भागके सहित तत्पदके अर्थ (परोक्षत्वविशिष्टचैतन्य) को अथवा त्वं पद के अर्थ (अपरोक्षत्वविशिष्टचैतन्य) को भले प्रकारसे लक्षित करें तो भागलक्षणासे क्या फल होगा ? ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये ॥ ७४९-७५० ॥

अविरुद्धं पदार्थान्तरांशं च स्वांशञ्च तत् कथम् ।
एकं पदं लक्षणया संलक्षयितुमर्हति ॥ ७५१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ—(तत्) वह (एकम्) एक (पदम्) पद (अविरुद्धम्) अविरोधी (पदार्थान्तरांशम्) अन्य पदार्थके भागको (च) और (स्वांशम्) अपने अंशको (कथम्) कैसे (लक्षणया) लक्षणाके द्वारा (संलक्षयितुम्) सम्यक् प्रकारसे लक्षित करनेको (अर्हति) समर्थ होसकता है ॥ ७५१ ॥

भावार्थ-यदि कहो कि-एक पदमें ही लक्षणा क्यों नहीं करलेते? दोनों पदोंमें लक्षणा करनेकी क्या आवश्यकता है ? तो उसका उत्तर यह है, कि-यह तत् या त्वं एक ही पद अन्य पदार्थके अविरोधी भागको और अपने भागको लक्षणाके द्वारा कैसे लक्षित कर सकता है ! ॥ ७५१ ॥

पदान्तरेण सिद्धायां पदार्थप्रमितौ स्वतः ।
तदर्थप्रत्ययापेक्षा पुनर्लक्षणया कुतः ॥ ७५२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पदान्तरेण) तत् या त्वं किसी पदके द्वारा (स्वतः) स्वयम् (पदार्थप्रमितौ) पदार्थका ज्ञान (सिद्धायाम्) सिद्ध होने पर (पुनः) फिर (लक्षणया) लक्षणाके द्वारा (तदर्थप्रत्ययापेक्षा) उसके अर्थज्ञानकी अपेक्षा (कुतः) क्या ? ॥ ७५२ ॥

भावार्थ-यदि अन्य पदके द्वारा अन्य पदार्थका ज्ञान स्वयं ही होजाय तो फिर लक्षणासे उस पदके अर्थज्ञानकी आवश्यकता किस लिए ? यहाँ तक जो लक्षणाओंकी बात कही उसका तात्पर्य यह है, कि-लक्षणा तीन प्रकारकी होती है-जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा और जहदजहल्लक्षणा । जहत् शब्दका अर्थ है त्याग और अजहत् शब्दका अर्थ है अत्याग तथा जहदजहत् शब्दका अर्थ है त्याग एवं अत्याग । 'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति-गङ्गामें ग्वालोंका ग्राम बसता है' यहाँ गङ्गा पदका मुख्य अर्थ है-भगीरथखातावच्छिन्नजलप्रवाह परन्तु जलप्रवाहमें ग्रामका बसना संभव नहीं, इसलिये लक्षणासे गङ्गापदका अर्थ गङ्गातट लियाजाता है । यहाँ गङ्गापदने अपने अर्थ जलप्रवाहको त्यागदिया है, इसलिये यह जहल्लक्षणा कहलाती है । 'शोणो धावति,-लाल वर्ण दौड़ता है' यहाँ लाल वर्णरूप गुणका दौड़ना असम्भव है, अतः वह लाल वर्णरूप गुण अपनेको न त्यागकर अपने आश्रय घोड़ेको लक्षित करता है अर्थात् लाल वर्णवाला घोडा दौड़ता है, ऐसा अर्थ होता है, इसलिये यह अजहल्लक्षणा कहलाती है । 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें तत् पदका प्रतिपाद्य अर्थ परोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य है और त्वं पदका अर्थ अपरोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य है, परन्तु यहाँ तत् और त्वं पदके अर्थका एक अंश अर्थात् परोक्षत्व-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विशिष्टताका और अपरोक्षत्व-विशिष्टता का त्याग कियागया है, दूसरा अंश चैतन्य ठीक है, इसप्रकार यहाँ एक अंशका त्याग और एक अंशका अत्याग किया गया है, इसलिये इसको जहदजहल्लक्षणा कहते हैं। इसका ही नाम भागलक्षणा या भागत्यागलक्षणा भी है। अब यहाँ यह शंका उठती है, कि-सर्वत्र एक ही पद में लक्षणा हुआ करती है, परन्तु 'तत्त्वमसि' वाक्यके तत् और त्वं दोनों पदोंमें लक्षणा कीगई, इसका क्या कारण है? केवल तत्-पदमें लक्षणा करके, तत्-पदके अर्थके विरुद्ध भागको त्यागकर उसके अविरुद्ध भागयुक्त तत् पदके अर्थको लक्षित करेगा। अथवा त्वं पदमें लक्षणा करके, त्वं पदके अर्थके विरुद्ध-भागको त्यागकर उसके अविरुद्ध-भागयुक्त त्वं पदके अर्थको लक्षणाके द्वारा बतावेगा। इसप्रकार जब एक ही पदमें लक्षणा करनेसे काम चलसकता है तब दोनों पदोंमें लक्षणा करनेकी क्या आवश्यकता है? विशेष कर सर्वत्र एक पदमें ही लक्षणा देखनेमें आती है। इसका उत्तर यह है, कि-एक ही पद अपने भाग और अन्य पदार्थके भागको कैसे लक्षित करेगा? एक पदसे पदार्थज्ञान होजाने पर बिना लक्षणाके भी अर्थज्ञान होसकता है, इसलिये लक्षणाकी आवश्यकता ही नहीं रहती। इस लिये दोनों पदोंके कुछ भागको त्यागकर एकमात्र चैतन्यको लक्षित करनेके लिये ही दोनों पदोंमें लक्षणा स्वीकार की है॥ ७५२॥

तस्मात्तत्त्वमसीत्यत्र लक्षणा भागलक्षणा।
वाक्यार्थसत्त्वाखण्डैकरसतासिद्धये मता॥ ७५३॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इस वाक्यमें (वाक्यार्थसत्त्वाखण्डैकरसतासिद्धये) वाक्यके अर्थमें सत्त्व अखंडरूप एकत्वसिद्धिके लिये (भागलक्षणा) जहदजहल्लक्षणा (मता) मानीगई है. ७५३

भावार्थ-इसलिये पंडितोंने 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें अखंडरूप एक सत् वस्तुको सिद्ध करनेके लिये जहदजहल्लक्षणा मानी है॥ ७५३॥

भागं विरुद्धं सन्त्यज्याविरोधो लक्ष्यते यदा।
सा भागलक्षणेत्याहुर्लक्षणज्ञा विचक्षणाः॥ ७५४॥

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (विरुद्धम्) विरोधी (भागम्) भागको (संत्यज्य) त्यागकर (अविरोधः) अविरोध (लक्ष्यते) लक्षित होता है (लक्षणज्ञाः) लक्षणाको जाननेवाले (विचक्षणाः) पण्डित (सा) वह (भागलक्षणा) जहदजहल्लक्षणा है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं॥ ७५४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-जब विरुद्ध-भागको त्याग देनेपर अविरोध दीखने लगता है तब लक्षणाके ज्ञाता पण्डित उसको भागलक्षणा या जहदजहल्लक्षणा नामसे बोलते हैं ॥ ७५४ ॥

सोऽयं देवदत्त इति वाक्यं वाक्यार्थ एव वा ।
देवदत्तैकरूपस्ववाक्यार्थानवबोधकम् ॥ ७५५ ॥
देशकालादिवैशिष्ट्यं विरुद्धांशं निरस्य च ।
अविरुद्धं देवदत्तदेहमात्रं स्वलक्षणम् ॥ ७५६ ॥
भागलक्षणया सम्यग्लक्षयत्यनया यथा ।
तथा तत्त्वमसीत्यत्र वाक्यं वाक्यार्थ एव वा ॥ ७५७ ॥
परोक्षत्वापरोक्षत्वादिविशिष्टचितोर्द्वयोः ।
एकत्वरूपवाक्यार्थविरुद्धांशमुपस्थितम् ॥ ७५८ ॥
परोक्षत्वापरोक्षत्वसर्वज्ञत्वादिलक्षणम् ।
बुद्ध्यादि स्थूलपर्यन्तमाविद्यकमनात्मकम् ॥ ७५९ ॥
परित्यज्याविरुद्धांशं शुद्धचैतन्यलक्षणम् ।
वस्तु केवलसन्मात्रं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
लक्षयत्यनया सम्यग् भागलक्षणया ततः ॥ ७६० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (सः) वह (अयम्) यह (देवदत्तः) देवदत्त है (इति) यह (वाक्यम्) वाक्य (वा) या (वाक्यार्थः, एव) वाक्यार्थ ही (देवदत्तैकरूपस्ववाक्यार्थानवबोधकम्) देवदत्तके एकत्वरूप अपने वाक्यार्थ का अप्रकाशक (देशकालादिवैशिष्ट्यम्) देश कालकी विशिष्टतारूप (विरुद्धांशम्) विरोधी भागको (निरस्य, च) अलग करके भी (अविरुद्धम्) अविरोधी (स्वलक्षणम्) व्यक्तिमात्र (देवदत्तदेहमात्रम्) देवदत्तके शरीरमात्रको (अनया) इस (भागलक्षणया) भागलक्षणाके द्वारा (सम्यक्) भले प्रकारसे (लक्षयति) लक्षित करता है (तथा) तैसेही (तत्त्वमसि, इत्यत्र) तत्त्वमसि इसमें (वाक्यम्) पदसमूह (वा) या (वाक्यार्थः) वाक्यका अर्थ (द्वयोः) दोनों (परोक्षत्वापरोक्षत्वादिविशिष्टचितोः) परोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य और अपरोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य के (उपस्थितम्) प्राप्त (एकत्वरूपवाक्यार्थविरुद्धांशम्) एकत्वरूप वाक्यार्थके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विरोधी भाग (परोक्षत्वापरोक्षत्वसर्वज्ञत्वादिलक्षणम्) अपरत्यक्षत्व मन्यज्ञत्व और सर्वज्ञत्व आदि रूप (बुद्ध्यादिस्थूलपर्यन्तम्) बुद्धिसे लेकर स्थूलपर्यन्त (आविद्यकम्) अविद्याकल्पित (अनात्मकम्) आत्मभिन्न वस्तुको (परित्यज्य) त्यागकर (अविरुद्धांशम्) अविरोधी भाग (शुद्धचैतन्यलक्षणम्) शुद्ध चैतन्य-स्वरूप (केवलसत्तामात्रम्) केवल सत्तामात्र (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (निरञ्जनम्) शुद्ध (वस्तु) ब्रह्मको (अनया) इस (भागलक्षणया) भागलक्षणाके द्वारा (सम्यक्) भले प्रकारसें (लक्षयति) बोधन करता है (ततः) तदनन्तर ५५–६०

भावार्थ—' यही वही देवदत्त है' यह वाक्य या इस वाक्यका अर्थ देवदत्तके एकत्वरूप अपने वाक्यार्थके अप्रकाशक देशकाल आदिकी विशिष्टतारूप विरुद्ध-भागको त्यागकर लक्षणाके द्वारा जैसे अविरोधी देवदत्त व्यक्तिमात्रको लक्षित करता है,ऐसे ही 'तत्त्वमसि' इस स्थलमें वाक्य या वाक्यार्थ परोक्षत्वविशिष्टचैतन्य और अपरोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य इन दोनोंके उपस्थित एकत्वरूप वाक्यार्थके विरुद्ध-भाग परोक्षत्व, अपरोक्षत्व, सर्वज्ञत्व, अल्पज्ञत्वरूप, बुद्धिसे लेकर स्थूल पर्यन्त अविद्याकल्पित अनात्मवस्तुको त्यागकर अविरुद्ध शुद्ध चैतन्यरूप केवल सत्स्वरूप निर्विकल्प निरञ्जन ब्रह्मको भागलक्षणाके द्वारा सम्यक् प्रकारसे लक्षित करता है, तदनन्तर अखण्ड ब्रह्म प्राप्त होता है ॥ ७५५–॥ ७६० ॥

अखण्डार्थः ।

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
निर्विशेषं निराभासमतादृशमनीदृशम् ॥ ७६१ ॥
अनिर्देश्यमनाद्यन्तमनन्तं शान्तमच्युतम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं निर्गुणं ब्रह्म शिष्यते ॥ ७६२ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सर्वोपाधिविनिर्मुक्तम्) सब उपाधियोंसे छूटा हुआ (सच्चिदानन्दम्) सत् चित् आनन्दरूप (अद्वयम्) अद्वितीय (निर्विशेषम्) विशेषशून्य–एकरूप (निराभासम्) आभासरहित (अतादृशम्) तैसा नहीं (अनीदृशम्) ऐसा नहीं (अनिर्देश्यम्) जिसको अंगुलीसे बताया नहीं जासकता (अनाद्यन्तम्) आदि अन्तरहित (अनन्तम्) व्यापक (शान्तम्) स्थिर (अच्युतम्) अपने स्वरूपमें अटल (अप्रतर्क्यम्) तर्कका अविषय (अविज्ञेयम्) ज्ञानका अविषय (निर्गुणम्) गुणशून्य (ब्रह्म) ब्रह्म (शिष्यते) शेष रहता है ६१-६२

CC-0. ... (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—तदनन्तर समस्त उपाधियोंसे रहित, सच्चिदानन्दस्वरूप, अद्वितीय विशेष-शून्य—एकरूप, प्रतिबिम्बरहित, जिसको यह या यह नहीं कहसकते, जिसको अंगुलीसे नहीं बतासकते, आदि और अन्तसे रहित, व्यापक, शान्त, कूटस्थ, तर्क और ज्ञानका अविषय निर्गुण ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है ॥ ७६१ ॥ ७६२ ॥

उपाधिवैशिष्ट्यकृतो विशेषो ब्रह्मात्मनोरेकतयाधिगत्या ।
उपाधिवैशिष्ट्य उदस्यमाने न कश्चिदप्यस्ति विरोध एतयोः ७६३

अन्वय और पदार्थ—[ब्रह्मात्मनोः] ब्रह्म और जीवात्माका (उपाधिवैशिष्ट्यकृतः) उपाधिकी विशिष्टताका कियाहुआ (विशेषः) भेद [अस्ति] है (ब्रह्मात्मनोः) ब्रह्म और जीव की (एकतया) एकरूपसे (अधिगत्या) प्रतीति होकर (उपाधिवैशिष्ट्ये) उपाधिकी विशिष्टताके (उदस्यमाने) दूर होजाने पर (एतयोः) इनका (कश्चित्, अपि) कोई भी (विरोधः) विरोध (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ७६३ ॥

भावार्थ—जीव और ब्रह्ममें उपाधिके कारणसे भेद देखनेमें आता है, इनकी एकताके ज्ञानसे उपधिके विलीन होजाने पर दोनोंमें किसी प्रकारका भेद नहीं रहता है ॥ ७६३ ॥

तयोरुपाधिश्च विशिष्टता च तद्धर्मभाक्त्वञ्च विलक्षणत्वम् ।
भ्रान्त्या कृतं सर्वमिदं मृषैव स्वप्नार्थवज्जाग्रति नैव सत्यम् ७६४

अन्वय और पदार्थ—(तयोः) उनकी (उपाधिः) उपाधि (च) और (विशिष्टता, च) वैशिष्ट्य भी (तद्धर्मभाक्त्वम्) उसके धर्मका भागी होना (च) और (विलक्षणत्वम्) विचित्रता या विपरीतता (भ्रान्त्या) भ्रान्तिके द्वारा (कृतम्) किया हुआ (इदम्) यह (सर्वम्) सब (स्वप्नार्थवत्) स्वप्नके पदार्थ की समान (मृषा, एव) मिथ्या ही है (जाग्रति) जाग्रत् अवस्थामें (सत्यम्) सत्य (नैव) कदापि नहीं है ॥ ७६४ ॥

भावार्थ—जीव और ब्रह्मकी उपाधि, विशिष्टता, उसके धर्मसे युक्त होना, विचित्रता, यह सब अज्ञानकी कल्पना है, इसलिये स्वप्नमें देखे हुए पदार्थकी समान यह सब मिथ्या है बाधित होजाता है, अतः जाग्रत्में भी सत्य नहीं है ॥

निद्राप्रसुतशरीरधर्मसुखदुःखादिप्रपञ्चोऽपि वा,
जीवेशादिभिदाऽपि वा न च ऋतं कर्तुं कचिच्छक्यते ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मायाकल्पितदेशकालजगदीशादि भ्रमस्तादृशः
को भेदोऽस्त्यनयोर्द्वयोस्तु कतमः सत्योऽन्यतः को भवेत् ॥

अन्वय और पदार्थ—(निद्रायां शरीरधर्मसुखदुःखादिप्रपञ्चः) निद्रामें पुत्र, शरीरके धर्म, सुख और दुःख-आदि जगत् (अपि वा) और (जीवेशभिदा, अपि) जीव और ईश्वरका भेद भी (क्वचित्, च) कहीं भी (ऋतं, कर्तुम्) सत्य करनेको (न) नहीं (शक्यते) शक्य होता है (मायाकल्पितदेशकालजगदीशादिभ्रमः) मायासे कल्पित देश, काल, जगत् और ईश्वर आदिका भ्रम (तादृशः) तैसा है (अनयोः) इन (द्वयोः, तु) दोनोंका तो (कः) कौनसा (भेदः) भेद [अस्ति] है (अन्यतः , अन्य कारणसे (कतमः) कौनसा (कः) क्या (सत्यः) यथार्थ (भवेत्) होगा ॥ ७६५ ॥

भावार्थ—निद्राके समय पुत्र, स्थूलता कृशता आदि शरीरके धर्म, सुख, दुःख आदि यह संसारका फैलाव तथा जीव ईश्वर आदिका जो भेद प्रतीत होता है, उसको सत्य कौन सिद्ध करसकता है? मायासे कल्पित देश, काल, जगत्, ईश्वर आदिका भ्रम भी तैसे ही मिथ्या है, फिर जीव और ईश्वरका भेद क्या? अन्य हेतुके कारणसे कौनसा पदार्थ सत्य होसकता है? ॥ ७३५ ॥

न स्वप्नजागरणयोरुभयोर्विशेषः,
संदृश्यते क्वचिदपि भ्रमजैर्विकल्पैः ।
यद् दृष्टदर्शनमुखैरत एव मिथ्या,
स्वप्नो यथा ननु तथैव हि जागरोऽपि ॥ ७६६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) क्योंकि (क्वचित्, अपि) कहीं भी (दृष्टदर्शनमुखैः) देखे हुएको देखना आदि (भ्रमजैः) भ्रान्तिसे उत्पन्न हुए (विकल्पैः) विकल्पोंके द्वारा (स्वप्नजागरणयोः) स्वप्न और जागरण (उभयोः) दोनोंका (विशेषः) भेद (न) नहीं (संदृश्यते) देखनेमें आता है (अत एव) इसलिये ही (मिथ्या) झूठा है (ननु) हे शिष्य (यथा) जैसे (स्वप्नः) स्वप्न है (तथा, एव) तैसे ही (जागरः, अपि) जाग्रत् भी है ॥ ७६६ ॥

भावार्थ—देखे हुएको देखना आदि भ्रमजनित विकल्पोंके द्वारा कहीं भी स्वप्न और जागरणमें भेद देखनेमें नहीं आता, इसलिये स्वप्नकी समान जागरण भी मिथ्या है ॥ ७६६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अविद्याकार्यतस्तुल्यौ द्वावपि स्वप्नजागरौ ।
दृष्टदर्शनदृश्यादि कल्पनोभयतस्तथा ॥ ७६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वप्नजागरौ) स्वप्नावस्था और जाग्रत् अवस्था (द्वौ, अपि) दोनों ही (अविद्याकार्यतः) अविद्याका कार्य होनेसे (तुल्यौ) एक समान हैं (उभयतः) दोनोंमें (दृष्टदर्शनदृश्यादिकल्पना) दृष्ट, दर्शन, दृश्य आदिकी कल्पना (तथा) तैसे ही है ॥ ७६७ ॥

भावार्थ-स्वप्न और जाग्रत् दोनों ही अवस्थायें अविद्याका कार्य हैं, इसलिये एकसमान मिथ्या हैं, ऐसे ही स्वप्न और जाग्रत्में दृष्ट, दर्शन, दृश्य आदिकी कल्पना भी मिथ्या है ॥ ७६७ ॥

अभाव उभयोः सुप्तौ सर्वैरप्यनुभूयते ।
न कश्चिदनयोर्भेदस्तस्मान्मिथ्यात्वमर्हतः ॥ ७६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वैः, अपि) सब करके ही (सुप्तौ) सुषुप्तिकालमें (उभयोः) दोनोंका (अभावः) अभाव (अनुभूयते) अनुभव किया जाता है (अनयोः) इनका (कश्चित्) कोई (भेदः) भेद (न) नहीं होता है (तस्मात्) तिससे (मिथ्यात्वम्) मिथ्यापनको (अर्हतः) पाते हैं ॥ ७६८ ॥

भावार्थ-सब लोग सुषुप्तिके समय स्वप्न और जागरणके अभावका अनुभव करते हैं, दोनोंमें कुछ भी विशेषता नहीं होती, इसलिये स्वप्न और जाग्रत् दोनों मिथ्या हैं ॥ ७६८ ॥

भ्रान्त्या ब्रह्मणि भेदोऽयं सजातीयादिलक्षणः ।
कालत्रयेऽपि हे विद्वन् वस्तुतो नैव कश्चन ॥ ७६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हे विद्वन्) हे ज्ञानी (कालत्रये, अपि) तीनों कालमें भी (भ्रान्त्या) भ्रमसे (अयम्) यह (सजातीयादिलक्षणः) सजातीय आदि-रूप (कश्चन) कोई (भेदः) भेद (वस्तुतः) वास्तवमें (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (न, एव) नहीं है ॥ ७६९ ॥

भावार्थ-हे विद्वन् ! भूत, भविष्यत् वर्तमान तीनोंकालमें भ्रान्तिके कारण प्रतीत होनेवाला सजातीय, विजातीय और स्वगत किसी प्रकारका भेद वास्तवमें ब्रह्ममें नहीं है ॥ ७६९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यत्र नान्यत्पश्यतीति श्रुतिर्द्वैतं निषेधति।
कल्पितस्य भ्रमाद् भूम्नि मिथ्यात्वापगमाय तत्॥७७०॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्र) जिस अवस्थामें (अन्यत्) दूसरेको (न) नहीं (पश्यति) देखता है (इति) यह (श्रुतिः) वेदवाक्य (भ्रमात्) भ्रमसे (भूम्नि) ब्रह्ममें (कल्पितस्य) कल्पना किये हुएके (मिथ्यात्वापगमाय) मिथ्यात्व-ज्ञानके लिये (तत्) उस (द्वैतम्) द्वैतको (निषेधति) निषेध करती है

भावार्थ—जिस अवस्थामें और कुछ नहीं देखता, यह श्रुति भ्रमवश ब्रह्ममें आरोपित वस्तुका मिथ्यापना बतानेके लिये द्वैतका निषेध करती है॥ ७७० ॥

यतस्ततो ब्रह्म सदाऽद्वितीयं विकल्पशून्यं निरुपाधि निर्मलम्।
निरन्तरानन्दघनं निरीहं निरास्पदं केवलमेकमेव॥ ७७१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यतः) क्योंकि श्रुति ऐसा कहती है (ततः) तिससे (सदा) सर्वदा (अद्वितीयम्) अद्वितीय (विकल्पशून्यम्) विकल्परहित (निरुपाधि) उपाधिशून्य (निर्मलम्) स्वच्छ (निरन्तरानन्दघनम्) निरन्तर आनन्द-मूर्ति (निरीहम्) इच्छाशून्य (निरास्पदम्) किसीका आश्रय न रखनेवाला (केवलम्) केवल (एकम्) एक (एव) ही (ब्रह्म) ब्रह्म है॥ ७७१ ॥

भावार्थ—क्योंकि—श्रुति द्वैतका निषेध करती है, इसलिये सदा अद्वितीय, विकल्परहित, उपाधिशून्य, शुद्ध सर्वदा आनन्दमूर्त्तिमें निरीह, स्वप्रतिष्ठ और केवलमात्र एक ही ब्रह्म है॥ ७७१ ॥

नैवास्ति काचन भिदा न गुणप्रतीति-
र्नो वाक्प्रवृत्तिरपि वा न मनःप्रवृत्तिः।
यत्केवलं परमशान्तमनन्तमाद्य-
मानन्दमात्रमवभाति सदाद्वितीयम्॥७७२॥

अन्वय और पदार्थ—[ब्रह्मणि] ब्रह्ममें (काचन) कोई (भिदा) भेद (नैव) नहीं (अस्ति) है (गुणप्रतीतिः) गुणका अनुभव (न) नहीं है (वाक्-प्रवृत्तिः, अपि) वाणीका व्यापार भी (नो) नहीं है (वा) किंवा (मनःप्रवृत्तिः) मनका व्यापार(न)नहीं है (यत्) जो (केवलम्)शुद्ध(परम्, शान्तम्) अत्यन्त शान्त (अनन्तम्) व्यापक (आद्यम्) सबसे पहले विद्यमान (अद्वितीयम्) अद्वितीय (सत्) होता हुआ (आनन्दमात्रम्) आनन्दमात्र (अवभाति) प्रकाशित होता है ७७२

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—ब्रह्ममें किसी प्रकारका भेद नहीं है उसमें सुख दुःख आदि गुणोंकी प्रतीति नहीं होती है उसमें वाक्य वा मनका व्यापार नहीं है वह केवल परम शान्त है वह व्यापक है और सबसे पहले विद्यमान था उसमें सदा अद्वितीय आनन्द-रूपता ही भासती है ॥ ७७२ ॥

यदिदं परमं सत्यं तत्त्वं सच्चित्सुखात्मकम् ।
अजरामरणं नित्यं सत्यमेतद् वचो मम ॥ ७७३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) जो (इदम्) यह (अजरामरणम्) जरा-मरण-रहित (सच्चित्सुखात्मकम्) सत्-चित्-आनन्दस्वरूप (परमम्) श्रेष्ठ (सत्यम्) सत्यस्वरूप (तत्त्वम्) वस्तु है [तत्] वह (नित्यम्) उत्पत्ति-नाश-रहित है, (एतत्) यह (मम) मेरा (वचः) वचन (सत्यम्) सत्य है ॥ ७७३ ॥

भावार्थ—यह जो जरा-मरण-रहित, सत्—चित्—आनन्दस्वरूप परम सत्य ब्रह्म वस्तु है, इसका जन्म या मरण नहीं होता किन्तु यह नित्य है, यह मेरा कथन सत्य समझ ॥ ७७३ ॥

न हि त्वं देहोऽसावसुरपि च वाऽप्यक्षनिकरो,
मनो वा बुद्धिर्वा क्वचिदपि तथाऽहंकृतिरपि ।
न चैषां संघातस्त्वमु भवसि विद्वन् शृणु परं,
यदेतेषां साक्षी स्फुरणममलं तत्त्वमसि हि ॥ ७७४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(असौ) यह (देहः) शरीर (हि) निश्चय (त्वम्) तू (न) नहीं है (च) और (असुः, अपि) प्राण भी (वा) या (अक्षनिकरः, अपि) इन्द्रियसमूह भी (वा) या (मनः) मन (वा) अथवा (बुद्धिः) बुद्धि (वा) या (क्वचित्, अपि) कहीं भी (तथा) तैसे ही (अहंकृतिः, अपि) अहंकार भी [न] नहीं है (एषाम्) इन सबका (संघातः, च) समूहरूप भी (त्वम्) तू (न) नहीं (भवसि) है (उ) हे (विद्वन्) ज्ञानिन् (परम्) भले प्रकार (शृणु) सुन (एतेषाम्) इनका (यत्) जो (साक्षी) साक्षीरूप (अमलम्) निर्मल (स्फुरणम्) स्फुरण है (हि) निश्चय (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है ७७४

भावार्थ—हे विद्वन् ! आत्मस्वरूप तू यह शरीर नहीं है, प्राण नहीं है, इन्द्रिय-समूह नहीं है, मन नहीं है, बुद्धि नहीं है, अहङ्कार नहीं है और इन सबका

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

संघात भी नहीं है, ध्यान देकर सुन—तू तो इन शरीर आदि सबका साक्षी स्फुरणरूप निर्मल ब्रह्म है ॥ ७७४ ॥

यज्जायते वस्तु तदेव वर्धते,
तदेव मृत्युं समुपैति काले ।
जन्मैव ते नास्ति तथैव मृत्यु-
र्नास्त्येव नित्यस्य विभोरजस्य ॥ ७७५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) जो (वस्तु) पदार्थ (जायते) उत्पन्न होता है (तत्, एव) वह ही (वर्धते) बढ़ता है (तत्, एव) वह ही (काले) समयपर (मृत्युम्) मृत्युको (समुपैति) प्राप्त होता है (विभोः) व्यापक (अजस्य) जन्मरहित (नित्यस्य) सदा वर्तमान (ते) तेरा (जन्म एव) जन्म ही (न) नहीं (अस्ति) है (तथा, एव) तैसे ही (मृत्युः, एव) मरण (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ७७५ ॥

भावार्थ—जो वस्तु उत्पन्न होती है वह बढ़ती है और समय आने पर वही मृत्यु पाती है, तू व्यापक, जन्मरहित और नित्य है, इसलिये तेरा न जन्म है, न मरण है ॥ ७७५ ॥

य एष देहो जनितः स एव समेधते नश्यति कर्मयोगात् ।
त्वमेतदीयास्वखिलास्ववस्थास्ववस्थितः साक्ष्यसि बोधमात्रः ७७६

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एषः) यह (देहः) शरीर है (कर्मयोगात्) कर्मयोगसे (जनितः) उत्पन्न हुआ (सः, एव) वह ही (समेधते) सम्यक् रीतिसे बढ़ता है (नश्यति) नष्ट होता है (एतदीयासु) इस देहकी (अखिलासु) समस्त (अवस्थासु) अवस्थाओंमें (अवस्थितः) वर्तमान (त्वम्) तू (बोधमात्रः) ज्ञानस्वरूप (साक्षी) द्रष्टा (असि) है ॥ ७७६ ॥

भावार्थ—यह जो शरीर है, यही कर्मवश उत्पन्न होता है, बढ़ता है और नष्ट होजाता है, तू इसकी बालकपन आदि सब अवस्थाओंमें इसमें ही रहता हुआ भी ज्ञानस्वरूप और साक्षी है ॥ ७७६ ॥

यत्स्वप्रकाशमखिलात्मकमासुषुप्ते-
रेकात्मनोऽहमहमित्यवभाति नित्यम् ।

Swami ... Vedа Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बुद्धेः समस्तविकृतेरविकारि बोद्धृ
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ७७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (आसुप्तेः) सुषुप्तिपर्यन्त (स्वप्रकाशम्) स्वयंप्रकाश (अखिलात्मकम्) चराचरस्वरूप (अहम्) मैं (अहम्) मैं (इति) इस प्रकार (नित्यम्) सदा (अवभाति) भासता है (बुद्धेः) बुद्धिसे (समस्तविकृतेः) सकल विकारसे (अविकारि) विकारशून्य (बोद्धृ) ज्ञानस्वरूप है (यत्) जो (केवलबोधमात्रम्) केवल ज्ञानरूप (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७७७ ॥

भावार्थ-जो सुषुप्तिके समय पर्यन्तमें दूसरे प्रकाशकी अपेक्षा न रखकर स्वप्रकाशरूप है, मैं मैं इसप्रकार एकभावसे नित्य भासता है, जिसमें बुद्धि और किसी विकारके कारणसे विकार नहीं आता ऐसा ज्ञाता केवल ज्ञानस्वरूप जो ब्रह्म है वही तू है ७७७ ॥

स्वात्मन्यनस्तमयसंविदि कल्पितस्य
व्योमादि सर्वजगतः प्रददाति सत्ताम् ।
स्फूर्त्तिः स्वकीयमहसा वितनोति साक्षाद्
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ७७८ ॥

अन्वय और पदार्थ (यत्) जो (अनस्तमयसंविदि) कभी अस्त न होने वाले ज्ञानरूप (स्वात्मनि) निजस्वरूपमें (कल्पितस्य) कल्पना किये हुए (व्योमादिसर्वजगतः) आकाश आदि सकल जगत्के (सत्ताम्) अस्तित्वको (प्रददाति) देता है (स्वकीयमहसा) अपने तेजके द्वारा (स्फूर्त्तिम्) स्फुरण को (वितनोति) अर्पण करता है (केवलबोधमात्रम्) केवल ज्ञानस्वरूप (साक्षात्) प्रत्यक्ष (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७७८ ॥

भावार्थ-जो नित्यज्ञानमय अपने स्वरूपमें आरोपित आकाश आदि सकल जगत्को अस्तित्व (जीवन) देता है और जो अपने तेजसे सबमें चेष्टा करनेकी शक्ति डालता है, केवल ज्ञानस्वरूप वह ब्रह्म तू ही है ॥ ७७८ ॥

सम्यक् समाधिनिरतैर्विमलान्तरङ्गे
साक्षादवेक्ष्य निजमक्षयसौख्यं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्तुष्यते परमहंसकुलैरजस्रं
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ७७९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समाधिनिरतैः) ध्यानमें मग्न (परमहंसकुलैः) परमहंसोंके समूहों करके (यत्) जिस (अपारसौख्यम्) असीम सुखरूप (निजतत्त्वम्) आत्मस्वरूपका (विमलान्तरंगे) निर्मल अन्तःकरण में (सम्यक्) भले प्रकार (साक्षात्) प्रत्यक्षरूपसे (अवेक्ष्य) देखकर (अजस्रम्) निरन्तर (सन्तुष्यते) सन्तोष पाया जाता है (तत्) वह (केवलबोधमात्रम्) केवल ज्ञानस्वरूप (ब्रह्म) ब्रह्म (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७७९ ॥

भावार्थ-समाधिमें मग्न परमहंस लोग अपने निर्मल अन्तःकरणमें जिस असीम सुखरूप आत्मतत्त्वका उत्तमरूपसे प्रत्यक्ष दर्शन करके परम आनन्दका अनुभव करते हैं वह केवल ज्ञानस्वरूप ब्रह्म तू है ॥ ७७९ ॥

अन्तर्बहिः स्वयमखण्डितमेकरूप-
मारोपितार्थवदुदञ्चति मूढबुद्धेः ।
मृत्स्नादिवद् विगतविक्रियमात्मवेद्यं
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ७८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्तः) भीतर (बहिः) बाहर (स्वयम्) आप (अखण्डितम्) निरवयव (एकरूपम्) अविकार (मूढबुद्धेः) मूढबुद्धिके (आरोपितार्थवत्) कल्पित पदार्थकी समान (उदञ्चति) उदय होतासा प्रतीत होता है (मृत्स्नादिवत्) सुन्दर मृत्तिका आदिकी समान (विगतविक्रियम्) विकाररहित (आत्मवेद्यम्) आत्माके द्वारा ही अनुभव करने योग्य (केवलबोधमात्रम्)केवल ज्ञानस्वरूप (यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है ॥

भावार्थ-भीतर बाहर अखण्ड, एकरूप, किन्तु जो मन्दबुद्धि मनुष्यकी दृष्टिमें कल्पित पदार्थकी समान भासित होता है तथा उत्तम मृत्तिका (स्फटिक) आदिकी समान विकाररहित (स्वच्छ) और केवल ज्ञानस्वरूप आत्माके द्वारा ही अनुभव योग्य है वह ब्रह्म तू ही है ॥ ७८० ॥

श्रुत्युक्तमव्ययमनन्तमनादिमध्य-
मव्यक्तमक्षरमनाश्रयमप्रमेयम् ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आनन्दसद्घनमनामयमद्वितीयं
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ७८१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (अव्ययम्) अविनाशी (अनन्तम्) व्यापक (अनादिमध्यम्) आदि मध्य रहित (अव्यक्तम्) अव्यक्त (अक्षरम्) सदा एकरूप (अनाश्रयम्) किसीका आश्रय न लेने वाला (अप्रमेयम्) किसी प्रमाणका विषय न होनेवाला (आनन्दसद्घनम्) आनन्दमूर्त्ति और सत्स्वरूप (अनामयम्) रोगरहित (अद्वितीयम्) एक (श्रुत्युक्तम्) श्रुतिका कहा हुआ (केवलबोधमात्रम्) केवल ज्ञानमय (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्) वह (त्वम्) तु (असि) है ॥ ७८१ ॥

भावार्थ-श्रुतिने जिसको अविनाशी, व्यापक, आदि-मध्य-शून्य, अव्यक्त, अक्षर, किसीका आश्रय न लेकर सबका आश्रयरूप, अप्रमेय, आनन्दमूर्त्ति, सत्स्वरूप, अनामय और अद्वितीय कहा है वह केवल ज्ञानमय शुद्ध चैतन्य तू ही है ॥

शरीरतद्योगतदीयधर्माद्यारोपणं भ्रान्तिवशात् त्वदीयम् ।
न वस्तुतः किञ्चिदतस्त्वजस्त्वं मृत्योर्भयं क्वास्ति तवासि पूर्णः

अन्वय और पदार्थ-(त्वदीयम्) तेरा (शरीरतद्योगतदीयधर्माद्यारोपणम्) देह, और आत्माका सम्बन्ध एवं देहके धर्म आदिका आरोपण (भ्रान्तिवशात्) भ्रमके कारण है (वस्तुतः) वास्तवमें (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं [अस्ति] है (अतः) इसकारण (त्वम्) तू (तु) तो (अजः) जन्मरहित [असि] है (तव) तुझे (मृत्योः) मृत्युसे (भयम्) भय (क्व) कहाँ (अस्ति) है (पूर्णः) पूर्ण (असि) है ॥ ७८२ ॥

भावार्थ-तुझमें जो यह देह, और आत्माका सम्बन्ध तथा देहकी स्थूलता कृशता आदि धर्मोंका आरोपण होरहा है, यह भ्रान्तिके कारणसे है, वास्तवमें कुछ भी नहीं है, इसकारण तू जन्मरहित है; फिर तुझे मृत्युका भय कहाँसे आया? तू तो परिपूर्ण स्वभाव ब्रह्म है ॥ ७८२ ॥

यद् यद् दृष्टं भ्रान्तिमत्या स्वदृष्ट्या
तत्तत्सम्यग्वस्तुदृष्ट्या त्वमेव ।
त्वत्तो नान्यद् वस्तु किञ्चित्तु लोके
कस्माद् भीतिस्ते भवेदद्वयस्य ॥ ७८३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(भ्रान्तिमत्या) भ्रमभरी (स्वदृष्ट्या) अपनी दृष्टिसे (यत् यत्) जो जो (दृष्टम्) देखा है (सम्यक्) भलेप्रकार (वस्तुदृष्ट्या) वस्तुका ज्ञानके द्वारा देख लेने पर (तत् तत्) वह वह (त्वम्, एव) तू ही [असि] है (त्वत्तः) तुझसे (अन्यत्) भिन्न (वस्तु, तु) पदार्थ तो (लोके) संसारमें (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं [अस्ति] है (अद्वयस्य) अद्वितीय (ते) तुझे (कस्मात् (किससे (भीतिः) भय (भवेत्) होगा ॥ ७८३ ॥

भावार्थ-भ्रान्तिभरी अपनी दृष्टिसे जो जो वस्तु देखी है, उन सब वस्तुओंका ज्ञानदृष्टिसे उत्तमतया स्वरूप मालूम होजायगा तो समझमें आवेगा, कि—वह सब कुछ तू ही है, खैर, (आत्माके) सिवाय और कुछ तो है ही नहीं, फिर संसारमें तुझ अद्वितीयको भय किससे होगा ? अर्थात् अद्वितीय आत्मज्ञान हो जाने पर संसारभय नहीं रहता ॥ ७८३ ॥

पश्यतस्त्वहमेवेदं सर्वमित्यात्मनाऽखिलम् ।
भयं स्याद्विदुषः कस्मात्स्वस्मान्न भयमिष्यते ॥७८४॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (सर्वम्) सब (अहम्, एव) मैं ही [अस्मि] हूँ (इति) इसप्रकार (अखिलम्) सबको (आत्मनः) आत्मस्वरूप से (पश्यतः) देखतेहुए (विदुषः, तु) पण्डितको तो (कस्मात्) किससे (भयम्) भय (स्यात्) होगा (स्वस्मात्) अपनेसे (भयम्) भय (न) नहीं (इष्यते) इच्छा कियाजाता है ॥ ७८४ ॥

भावार्थ—यह सब वस्तु मैं ही हूँ, इसप्रकार सकल संसारको जो आत्मस्वरूपसे देखता है, उस विद्वान् पुरुषको तो भय होगा ही कहाँसे ? अपने आपसे तो अपनेको भय हो नहीं सकता ॥ ७८४ ॥

तस्मात्त्वमभयं नित्यं केवलानन्दलक्षणम् ।
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं ब्रह्मैवासि सदाद्वयम् ॥ ७८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (त्वम्) तू (अभयम्) निर्भय (नित्यम्) जन्ममरणरहित (केवलानन्दलक्षणम्) केवल आनन्दस्वरूप (निष्कलम्) निरवयव (निष्क्रियम्) क्रियारहित (शान्तम्) निर्मल (सदा) सर्वदा (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (असि) है ॥ ७८५ ॥

भावार्थ—इस लिये तू निर्भय, नित्य, केवल सुखरूप, पूर्ण, क्रियाशून्य, शान्त और सदा एकरूप ब्रह्म ही है ॥ ७८५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनं ज्ञातुरभिन्नं ज्ञानमखण्डम् ।
ज्ञेयाज्ञेयत्वादिविमुक्तं शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ॥ ७८६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनम्) ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेयसे रहित (ज्ञातुः) ज्ञातासे (अभिन्नम्) भेदशून्य (अखण्डम्) एकरूप (ज्ञानम्) ज्ञानस्वरूप (ज्ञेयाज्ञेयत्वादिविमुक्तम्) ज्ञेयत्व अज्ञेयत्व आदिसे मुक्त (शुद्धम्) शुद्ध (बुद्धम्) बोधरूप (तत्त्वम्) तत्त्व (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७८६ ॥

भावार्थ—तू ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयसे पृथक्, ज्ञातासे अभिन्न अखण्ड ज्ञानस्वरूप, ज्ञेयपने और अज्ञेयपनेसे रहित, निर्मल बोधरूप ब्रह्म तू ही है ॥ ७८६ ॥

अन्तःप्रज्ञत्वादिविकल्पैरस्पृष्टं यत्तद्दृशिमात्रम् ।
सत्तामात्रं समरसमेकं शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ॥ ७८७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (अन्तःप्रज्ञत्वादिविकल्पैः) अन्तःकरणमें ज्ञानवत्त्व आदि विकल्पों करके (अस्पृष्टम्) अलिप्त (दृशिमात्रम्) ज्ञानस्वरूप है (तत्) वह (सत्तामात्रम्) सत्स्वरूप (समरसम्) निर्विकार (एकम्) अद्वितीय (शुद्धम्) स्वच्छ (बुद्धम्) बोधरूप (तत्त्वम्) ब्रह्म (त्वम्) तू (असि) है

भावार्थ-अन्तःकरण ज्ञानवान् है इत्यादि विकल्पोंने जिसे स्पर्श भी नहीं किया है ऐसा जो केवल ज्ञानस्वरूप सत्तामात्र, निर्विकार अद्वितीय, निर्मल, बोधरूप ब्रह्म है वह तू ही है ॥ ७८७ ॥

सर्वाकारं सर्वमसर्वं सर्वनिषेधावधिभूतं यत् ।
सत्यं शाश्वतमेकमनन्तं शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ॥ ७८८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (सर्वाकारम्) सकल आकारोंवाला (सर्वम्) सर्वरूप (असर्वम्) सब पदार्थोंसे पृथक् (सर्वनिषेधावधिभूतम्) सकल निषेधों की सीमारूप (सत्यम्) सत्स्वरूप (शाश्वतम्) नित्य (एकम्) अद्वितीय (अनन्तम्) व्यापक (शुद्धम्) निर्मल (बुद्धम्) बोधरूप (तत्त्वम्) ब्रह्म है [तत्] वह (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७८८ ॥

भावार्थ-ये सब पदार्थ जिसका आकार हैं अर्थात् जो सबमें विराजमान है, जो सर्वरूप है और सकल पदार्थोंसे पृथक् है, जो सब निषेधोंकी अवधि, सत्यस्वरूप, नित्य, अद्वितीय, व्यापक, निर्मल, बोधरूप ब्रह्म तत्त्व है वह तू ही है ॥ ७८८ ॥

CC-0. ... Vedа Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नित्यानन्दाखण्डैकरसं निष्कलमक्रियमस्तविकारम् ।
प्रत्यगभिन्नं परमव्यक्तं बुद्धं शुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ॥ ७८९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(नित्यानन्दाखण्डैकरसम्) नित्य—आनन्द-पूर्ण-एकरूप (निष्कलम्) भागरहित (अक्रियम्) क्रियारहित (अस्तविकारम्) विकारशून्य (प्रत्यगभिन्नम्) आत्मासे अभिन्न (परमव्यक्तम्) अत्यन्तव्यक्त (शुद्धम्) निर्मल (बुद्धम्) बोधरूप (तत्) वह (तत्त्वम्) ब्रह्म (त्वम्) तू (असि) है ॥ ७८९ ॥

भावार्थ—नित्य सुखरूप, अखण्ड, एकरूप, अंशरहित, क्रियाशून्य, निर्विकार, आत्मासे अभिन्न, परम अव्यक्त वा, अतिदुरवगाह, शुद्ध बोधरूप ब्रह्मतत्त्व तू ही है ॥ ७७९ ॥

त्वं प्रत्यस्ताशेषविशेषं व्योमेवान्तर्बहिरपि पूर्णम् ।
ब्रह्मानन्दं परमद्वैतं शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ॥ ७९० ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्वम्) तू (प्रत्यस्ताशेषविशेषम्) सकल विशेषोंके पार है (व्योम, इव) आकाशकी समान (अन्तः) भीतर (वहिः, अपि) बाहर भी (पूर्णम्) पूर्ण (ब्रह्मानन्दम्) महान् आनन्दरूप (परम्) अतीव (अद्वितीयम्) अद्वितीय (शुद्धम्) केवल (बुद्धम्) बोधरूप (तत्त्वम्) ब्रह्म (त्वम्) तु (असि) है ॥ ७९० ॥

भावार्थ—जिसमें सब विशेष अस्त होगये हैं, जो आकाशकी समान भीतर बाहर परिपूर्ण है, जो ब्रह्मानन्दस्वरूप, द्वैतरहित, स्वच्छ, ज्ञानस्वरूप तत्त्व है, वह तू ही है ॥ ७९० ॥

ब्रह्मैवाहमहं ब्रह्म निर्गुणं निर्विकल्पकम् ।
इत्येवाखण्डया वृत्त्या तिष्ठ ब्रह्मणि निष्क्रिये ॥ ७९१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही हूँ (अहम्) मैं, (निर्गुणम्) गुणहीन (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (ब्रह्म) ब्रह्म हूँ (इति) इसप्रकार (अखण्डया) एकरूप (वृत्त्या) वृत्तिके द्वारा (निष्क्रिये) क्रियाशून्य (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (तिष्ठ) स्थित हो ॥ ७९० ॥

भावार्थ-मैं ब्रह्म ही हूँ अर्थात् ब्रह्मके सिवाय और कुछ है ही नहीं मैं सत्त्व आदि गुणोंसे शून्य निर्विकल्प ब्रह्म हूँ, इसप्रकार चित्तकी अखण्डवृत्तिसे तू निष्क्रिय ब्रह्ममें स्थित होजा ॥ ७९१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अखण्डामेवैतां घटितपरमानन्दलहरीम्
परिध्वस्तद्वैतप्रमितिममलां वृत्तिमनिशम् ।
अमुञ्चानः स्वात्मन्यनुपमसुखे ब्रह्मणि परे
रमस्व प्रारब्धं क्षपय सुखवृत्त्या त्वमनया ॥ ७९२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(एताम्) इस (अखण्डाम्, एव) एकरूप ही (घटित-परमानन्दलहरीम्) अतिशय आनन्दकी तरङ्गोंवाले (परिध्वस्तद्वैतप्रमितिम्) द्वैतज्ञानशून्य (अमलाम्) निर्मल (वृत्तिम्) चित्तकी वृत्तिको (अमुञ्चानः) न छोड़ता हुआ (त्वम्) तू (अनुपमसुखे) अनुपम सुखरूप (आत्मनि) आत्मा (परे, ब्रह्मणि) परमब्रह्ममें (अनिशम्) निरन्तर (रमस्व) क्रीड़ाकर (अनया) इस (सुखवृत्त्या) सुखाकार वृत्तिके द्वारा (प्रारब्धम्) प्रारब्ध भोगको (क्षपय) नष्ट कर ॥ ७९२ ॥

भावार्थ—इस अखण्ड परम आनन्द तरङ्गोंवाली, द्वैत ज्ञानशून्य, निर्मल, चित्त-वृत्तिको न त्यागकर तू आत्माके साथ अभिन्न परब्रह्ममें निरन्तर मग्न रह, इस सुखरूप चित्तकी वृत्तिके द्वारा प्रारब्धभोगका क्षय करदे ॥ ७९२ ॥

ब्रह्मानन्दरसास्वादतत्परेणैव चेतसा ।
समाधिनिष्ठितो भूत्वा तिष्ठ विद्वन् सदा मुने ॥ ७९३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मुने) हे मुने (विद्वन्) हे ज्ञानी ! (ब्रह्मानन्दरसा-स्वादतत्परेण) ब्रह्मानन्द रसका स्वाद लेनेमें तत्पर (चेतसा, एव) चित्तके द्वारा ही (सदा) सर्वदा (समाधिनिष्ठितः, भूत्वा) समाहित चित्त होकर (तिष्ठ) स्थित हो ॥ ७९३ ॥

भावार्थ—हे मुने ! हे विद्वन् ! ब्रह्मानन्दरूप रसका स्वाद लेनेमें लगे हुए चित्त के द्वारा समाधि लगाकर सदा स्थित रहाकर ॥ ७९३ ॥

शिष्य-उवाच

अखण्डाख्या वृत्तिरेषा वाक्यार्थश्रुतिमात्रतः ।
श्रोतुः सञ्जायते किंवा क्रियान्तरमपेक्षते ॥ ७९४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(शिष्यः) शिष्य (उवाच) बोला (श्रोतुः) श्रोता के (वाक्यार्थश्रुतिमात्रतः) तत्त्वमसि वाक्यके अर्थको सुनने मात्रसे (अखण्डा-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वृत्तिः) अखण्ड नामवाली (एता) यह (वृत्तिः) चित्तकी वृत्ति (सञ्जायते) होजाती है (किंवा) या (क्रियान्तरम्) दूसरी क्रियाको (अपेक्षते) चाहती है ॥

भावार्थ—शिष्यने कहा, कि- हे गुरो ! तत्त्वमसि वाक्यके अर्थ को सुनने-मात्रसे ही क्या श्रोताके चित्तकी अखण्डरूपवृत्ति होजाती है या इसके लिये किसी और क्रियाको करनेकी आवश्यकता है ॥ ७६४ ॥

> समाधिः कः कतिविधस्तत्सिद्धेः किमु साधनम् ।
> समाधेरन्तरायाः के सर्वमेतन्निरूप्यताम् ॥ ७६५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(समाधिः) समाधि (कः) क्या है (कतिविधः) कितने प्रकारका है (तत्सिद्धेः) उसकी सिद्धिका (साधनम्) साधन (किमु) क्या है (समाधेः) समाधिके (अन्तरायाः) विघ्न (के) कौनसे (हैं) (एतत्) यह (सर्वम्) सब (निरूप्यताम्) निरूपण कियाजाय ॥ ७६५ ॥

भावार्थ-समाधि किसको कहते हैं ? वह कितने प्रकारकी है ? समाधिके होनेका उपाय क्या है ? उसमें कौन कौनसे विघ्न हुआ करते हैं ? यह सब वर्णन करिये ॥ ७६५ ॥

अधिकारिनिरूपणम्

श्रीगुरुरुवाच -

> मुख्यगौणादिभेदेन विद्यन्तेऽत्राधिकारिणः ।
> तेषां प्रज्ञानुसारेणाखण्डावृत्तिरुदेष्यते ॥ ७६६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(श्रीगुरुः) श्रीगुरु (उवाच) बोले (अत्र, इस ब्रह्म-विद्यामें (मुख्यगौणादिभेदेन) प्रधान और अप्रधानके भेदसे (अधिकारिणः) अधिकारी (विद्यन्ते) हैं (तेषाम्) उनकी (प्रज्ञानुसारेण) बुद्धिके अनुसार (अखण्डा) एकरूप (वृत्तिः) चित्तकी वृत्ति [उदेष्यते] उदित होगी ॥७६६॥

भावार्थ-गुरुदेवने कहा, कि-मुख्य और गौण भेदसे इस ब्रह्मविद्यामें कितने ही प्रकारके अधिकारी देखनेमें आते हैं, उनके ज्ञानके अनुसार अखंडाकार चित्तकी वृत्तिका उदय होता है ॥ ७६६ ॥

> श्रद्धाभक्तिपुरःसरेण विहितेनैवेश्वरं कर्मणा,
> सन्तोष्यार्जिततत्प्रसादमहिमा जन्मान्तरेष्वेव यः ।
> नित्यानित्यविवेकतीव्रविरतिन्यासादिभिः साधनै-
> र्युक्तः स श्रवणे सतामभिमतो मुख्याधिकारी द्विजः ७६७

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (श्रद्धाभक्तिपुरःसरेण) श्रद्धाभक्तिपूर्वक (विहितेन) शास्त्रमें बताये हुए (कर्मणा, एव) कर्मके द्वारा ही (ईश्वरम्) ईश्वरको (सन्तोष्य) सन्तुष्ट करके (जन्मान्तरेषु, एव) पहले जन्मोंमें ही (अर्जित तत्प्रसादमहिमा) पाया है उनके अनुग्रहसे महत्त्व जिसने (नित्यानित्यविवेक तीव्रविरतिन्यासादिभिः) नित्य और अनित्य वस्तुका विवेक, तीव्र वैराग्य और संन्यास आदि (साधनैः) साधनों करके (युक्तः) युक्त है (सः) वह (द्विज) ब्राह्मण वा द्विजाति (श्रवणे) श्रवणमें (मुख्याधिकारी) प्रधान अधिकारी (सताम्) सत्पुरुषोंका (अभिमतः) माना हुआ है ॥ ७९७ ॥

भावार्थ-जिसने पहले जन्ममें श्रद्धा भक्तिके साथ शास्त्रकी आज्ञानुसार कर्म द्वारा ईश्वरको प्रसन्न करके उनके अनुग्रहसे महत्त्व पालिया है तथा नित्य अनित्य वस्तुका विवेक, परम वैराग्य और संन्यास आदिसे युक्त है वह द्विज ही ब्रह्मविद्या को सुननेका मुख्य अधिकारी है यह सत्पुरुषोंकी सम्मति है ॥ ७९७ ॥

अध्यारोपापवादक्रममनुसरता दैशिकेनात्र वेत्रा,
वाक्यार्थे बोध्यमाने सति सपदि सतः शुद्धबुद्धेरमुष्य ।
नित्यानन्दाद्वितीयं निरुपममलं यत्परं तत्त्वमेकं
तद् ब्रह्मैवाहमस्म्युदयति परमाखण्डताकारवृत्तिः ॥ ७९८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस वेदान्तके विषयमें (अध्यारोपापवादक्रमम्) अध्यारोप और अपवादके क्रमको (अनुसरता) अनुसरण करनेवाले (वेत्रा) ज्ञाता (दैशिकेन) गुरु करके (वाक्यार्थे) तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ (बोध्यमाने सति) बोधित होने पर (सपदि) तत्काल (शुद्धबुद्धेः) केवल ज्ञानस्वरूप (सतः) होते हुए (अमुष्य) इसकी (नित्यानन्दाद्वितीयम्) नित्य आनन्द स्वरूप अद्वितीय (निरुपमम्) उपमारहित (अमलम्) निर्मल (यत्) जो(परम्) परम् (एकम्) अद्वितीय (तत्त्वम्) वस्तु है (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म (अहम् एव) मैं ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसी (परमा) उत्तम (अखण्डाकारवृत्तिः) अखण्डरूप वृत्ति (उदयति) उत्पन्न होती है ॥ ७९८ ॥

भावार्थ—अध्यारोप कहिये रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति और अपवाद कहिये रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति दूर होकर रस्सीका यथार्थ ज्ञान होना इस रीतिके अनुसार उपदेश करनेवाले ज्ञानी उपदेष्टाके द्वारा तत्त्वमसि वाक्यके अर्थका ज्ञान होने

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्काल निर्मल अन्तःकरणवाले इस पुरुषको, "नित्य सुखस्वरूप, अद्वितीय उपमा-रहित, निर्मल, उत्तम एक वस्तु जो ब्रह्म है वह मैं ही हूँ" ऐसी परम अखण्डाकार चित्तकी वृत्तिका उदय होता है ॥ ७९८ ॥

अखण्डाकारवृत्तिः सा चिदाभाससमन्विता ।
आत्माऽभिन्नं परं ब्रह्म विषयीकृत्य केवलम् ॥ ७९९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा) वह (चिदाभाससमन्विता) चैतन्यके स्फुरणसे युक्त (अखण्डाकारवृत्तिः) अखण्डरूपा चित्तकी वृत्ति (केवलम्) शुद्ध (आत्माभिन्नम्) आत्मासे अभिन्न (परं, ब्रह्म) परब्रह्मको (विषयीकृत्य) अवलम्बन करके [वर्त्तते] रहती है ॥ ७९९ ॥

भावार्थ-वह चैतन्यके स्फुरणसे युक्त अखण्डाकार चित्तकी वृत्ति, आत्मासे अभिन्न परब्रह्मका आश्रय लेकर विद्यमान रहती है ॥ ७९९ ॥

बाध्यते तद्गताज्ञानं यदावरणलक्षणम् ।
अखण्डाकारया वृत्त्या त्वज्ञाने बाधिते सति ॥ ८०० ॥

अन्वय और पदार्थ-(तु) परन्तु (अखण्डाकारया) एकरूप (वृत्त्या) चित्तके परिणामके द्वारा (अज्ञाने) अविद्याके (बाधिते, सति) बाधित होने पर (यत्) जो (आवरणलक्षणम्) आवरणरूप (तद्गताज्ञानम्) अन्तःकरणमेंका अज्ञान (बाध्यते) बाधित होता है ॥ ८०० ॥

भावार्थ-अखण्डाकार चित्तकी वृत्तिसे अज्ञानका नाश होजाने पर अन्तः-करणोंका आवरणरूप अज्ञान दूर होजाता है ॥ ८०० ॥

तत्कार्यं सकलं तेन समं भवति बाधितम् ।
तन्तुदाहे तु तत्कार्यपटदाहो यथा तथा ॥ ८०१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (तन्तुदाहे, तु) तन्तुओंके जल जाने पर ही (तत्कार्यपटदाहः) तन्तुके कार्य वस्त्रका जलना [भवति] होता है (तथा) वैसे ही (तेन, समम्) उस अज्ञानके साथ (सकलम्) सब (तत्कार्यम्) उसका का कार्य (बाधितम्) नष्ट (भवति) होता है ॥ ८०१ ॥

भावार्थ-जैसे डोरे जलजाने पर डोरोंका कार्य वस्त्र भी जल जाता है ऐसे ही अज्ञानके नष्ट होनेके साथ ही साथ उस अज्ञानके सब कार्य भी नष्ट होजाते हैं॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्य कार्यतया जीववृत्तिर्भवति बाधिता ।
उपप्रभा यथा सूर्यं प्रकाशयितुमक्षमा ॥ ८०२ ॥
तद्वदेव चिदाभासचैतन्यं वृत्तिसंस्थितम् ।
स्वप्रकाशं परं ब्रह्म प्रकाशयितुमक्षमम् ॥ ८०३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) उसका (कार्यतया) कार्य होनेसे (जीववृत्तिः) जीवका व्यापार (बाधिता) रुका हुआ (भवति) होता है (यथा) जैसे (उप-प्रभा) दीपक आदिका प्रकाश (सूर्यम्) सूर्यको (प्रकाशयितुम्) प्रकाशित करने को (अक्षमा) असमर्थ है (तद्वत्, एव) तैसे ही (वृत्तिसंस्थितम्) चित्तकी वृत्तिरूपमें विद्यमान (चिदाभासचैतन्यम्) चित्का स्फुरणरूप चैतन्य (स्वप्रका-शम्) प्रकाशस्वरूप (परं, ब्रह्म) परब्रह्मको (प्रकाशयितुम्) प्रकाशित करने को (अक्षमम्) असमर्थ [भवति] होता है ॥ ८०२-८०३ ॥

भावार्थ-अज्ञानके बाधित होजाने पर अज्ञानका कार्य होनेसे जीवका व्यापार भी बाधित होजाता है, जैसे दीपक आदिकी ज्योति सूर्यको प्रकाशित नहीं कर सकती, ऐसे ही अन्तःकरणकी वृत्तिमें स्थित चिदाभासरूप चैतन्य परब्रह्मको प्रका-शित नहीं करसकता ॥ ८०२ ॥ ८०३ ॥

प्रचण्डातपमध्यस्थदीपवन्नष्टदीधितिः ।
तत्तेजसाऽभिभूतं सल्लीनोपाधितया ततः ॥ ८०४ ॥
बिम्बभूतपरब्रह्ममात्रं भवति केवलम् ।
यथाऽपनीते त्वादर्शे प्रतिबिम्बमुखं स्वयम् ॥ ८०५ ॥
मुखमात्रं भवेत्तद्वदेतच्चोपाधिसंक्षयात् ।
घटाज्ञाने यथा वृत्त्या व्याप्तया बाधिते सति ॥ ८०६ ॥
घटं विस्फुरयत्येषश्चिदाभासः स्वतेजसा ।
न तथा स्वप्रभे ब्रह्मण्याभास उपयुज्यते ॥ ८०७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रचण्डातपमध्यस्थदीपवत्) प्रचण्ड धूपमें रखे हुए दीपककी समान (नष्टदीधितिः) नष्ट होगयी है प्रभा जिसकी ऐसा [चिदाभासः] चिदाभास (तत्तेजसा) ब्रह्मके प्रकाशके द्वारा (अभिभूतं, सत्) तिरस्कारको

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्राप्त होता हुआ (लीनोपाधितया) उपाधिके लय होजानेके कारण ॥ (ततः) तद-नन्तर (केवलम्) शुद्ध (बिम्बभूतपरब्रह्ममात्रम्) बिम्बरूप केवल परब्रह्म (भवति) होता है (यथा) जैसे (आदर्शे, अपनीते, तु) शीशेको दूर करलेने पर तो (स्वयम्) आप (प्रतिबिम्बमुखम्) प्रतिबिम्बमें स्थित मुख (मुखमात्रम्) केवल मुख ही (भवेत्) होता है (तद्वत्) तैसे ही (उपाधिसंक्षयात्) उपाधिका नाश होनेसे (एतत्, च) यह भी [भवति] होता है (यथा) जैसे (व्याप्तया) व्याप्त (वृत्त्या) चित्तकी वृत्तिके द्वारा (घटाज्ञाने) घटविषयक अज्ञानके (बाधिते, सति) नाशको प्राप्त होने पर (एषः) यह (चिदाभासः) अन्तःकरणका चित् प्रतिबिम्ब (स्वतेजसा) अपने तेजसे (घटम्) घटको (विस्फूरयति) प्रकाशित करता है (तथा) तैसे ही (स्वप्रभे) स्वयंज्योतिःस्वरूप (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (आभासः) चित्प्रतिबिम्ब (न) नहीं (उपयुज्यते) उपयोगी होता है ८०४-७

भावार्थ—सूर्यकी प्रचण्ड धूपके मध्यमें रक्खे हुए प्रभाहीन दीपककी समान चिदाभास, ब्रह्मतेजके द्वारा तिरस्कृत होकर उपाधिका लय होजानेके कारण बिम्ब-स्वरूप परब्रह्ममें ही स्थित होता है । जैसे दर्पणको हटा लेने पर प्रतिबिम्बमें स्थित मुख मुखरूपमें स्थित होता है, ऐसे ही उपाधिके नष्ट होजाने पर चिदाभास भी परब्रह्मस्वरूपमें स्थित होता है, जैसे व्याप्त हुई चित्तकी वृत्तिके द्वारा घटविषयक अज्ञानके बाधित होजाने पर चिदाभास अपने तेजके द्वारा घटको प्रकाशित करता है, ऐसे ही स्वयंज्योति ब्रह्ममें आभास (चित्प्रतिबिम्ब) उपयोगी नहीं है ॥

अत एव मतं वृत्तिव्याप्यत्वं वस्तुनः सताम् ।
न फलव्याप्यता तेन न विरोधः परस्परम् ॥ ८०८ ॥
श्रुत्योदितन्ततो ब्रह्म ज्ञेयं बुद्धयैव सूक्ष्मया ।
प्रज्ञामांद्यं भवेद्येषां तेषां न श्रुतिमात्रतः ।
स्यादखण्डाकारवृत्तिर्विना तु मननादिना ॥ ८०९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अत एव) इसलिये ही (वस्तुनः) ब्रह्मका (वृत्ति-व्याप्यत्वम्) अन्तःकरणकी वृत्तिका कर्मरूप होना (सताम्) साधुओंका (मतम्) अभिमत है (फलव्याप्यता) फलके प्रकाशका कर्मरूप होना (न) नहीं (तेन) तिससे (श्रुत्या, उदितः) श्रुतिका कहा हुआ (परस्परम्) आपसमें (विरोधः) विरोध (न) नहीं है (ततः) तिससे (सूक्ष्मतया) सूक्ष्म (बुद्धया, एव) बुद्धि

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

के द्वारा ही (ब्रह्म) शुद्ध-चेतन (ज्ञेयम्) जानना चाहिये (तु) परन्तु (येषाम्) जिनकी (मन्दामान्द्यम्) ज्ञानकी मन्दता है (तेषाम्) उनकी (मननादिना विना) मनन आदिके बिना (श्रुतिमात्रतः) श्रवणमात्रसे (अखण्डाकारवृत्तिः) अखण्ड चैतन्यरूपसे अन्तःकरणकी वृत्ति (न) नहीं (स्यात्) होती है ॥ ८०८ ॥ ८०९ ॥

भावार्थ-घट आदि जड़ वस्तुओंमेंका अज्ञान अन्तःकरणकी वृत्तिसे दूर हो जाता है, फिर उसको चैतन्य प्रकाशित करता है, इसलिये घट आदि जड पदार्थ वृत्तिव्याप्य हैं, और फल (चैतन्य-प्रकाश) व्याप्य है परन्तु ब्रह्म केवल चित्तवृत्तिका व्याप्य है अर्थात् चित्तवृत्तिके द्वारा 'ब्रह्म नास्ति' ऐसा अज्ञान दूर होजाता है, परन्तु ब्रह्म स्वयंप्रकाश है इसलिये वह फलव्याप्य अर्थात् प्रकाशका कर्म नहीं होता है इसलिये ब्रह्मके स्वयंप्रकाश होनेसे साधु पुरुष ब्रह्मको चित्तकी वृत्तिका व्याप्य मानते हैं, और ब्रह्मको फलव्याप्यता नहीं मानते हैं इसप्रकार श्रुतियोंमें परस्पर विरोध नहीं पडता है, इसलिये सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा ब्रह्मको जाने, जो जड़बुद्धि हैं उनकी मननके सिवाय केवल श्रवण मात्रसे अखण्डाकार चित्तकी वृत्ति उत्पन्न नहीं होती है ॥ ८०८ ॥ ८०९ ॥

श्रवणादिनिरूपणम्

श्रवणान्मननाद् ध्यानात्तात्पर्येण निरन्तरम् ।
बुद्धेः सूक्ष्मत्वमायाति ततो वस्तूपलभ्यते ॥ ८१० ॥
मन्दप्रज्ञावतां तस्मात्कारणीयं पुन पुनः ।
श्रवणं मननं ध्यानं सम्यग्वस्तूपलब्धये ॥ ८११ ॥
सर्ववेदान्तवाक्यानां षड्भिर्लिंगैः सदद्वये ।
परे ब्रह्मणि तात्पर्यनिश्चयं श्रवणं विदुः ॥ ८१२ ॥
श्रुतस्यैवाद्वितीयस्य वस्तुनः प्रत्यगात्मनः ।
वेदान्तवाक्यानुगुणयुक्तिभिस्त्वनु चिन्तनम् ।
मननं तच्छ्रुतार्थस्य साक्षात्करणकारणम् ॥ ८१३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निरन्तरम्) निरन्तर (तात्पर्येण) तत्परताके साथ (श्रवणात्) गुरुमुखसे श्रवण करनेसे (मननात्) मनन करनेसे (ध्यानात्)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

निदिध्यासन करनेसे (बुद्धेः) बुद्धिकी (सूक्ष्मत्वम्) सूक्ष्मता (आयाति) आती है (ततः) तदनन्तर (वस्तु) ब्रह्म वस्तु (उपलभ्यते) प्राप्त होती है (तस्मात्) तिससे (सम्यक्) भले प्रकार (वस्तूपलब्धये) वस्तुकी प्राप्तिके लिये (मन्दप्रज्ञानताम्) मन्द बुद्धि वालोंको (पुनः,पुनः) वार वार (श्रवणम्)श्रवण (मननम्) मनन (ध्यानम्) निदिध्यासन (करणीयम्) करना चाहिये[बुधाः] पण्डित (षड्भिः) छः (लिङ्गैः) हेतुओंके द्वारा (सदद्वये) सत्स्वरूप अद्वितीय (परे, ब्रह्मणि) परब्रह्म में (सर्ववेदान्तवाक्यानाम्) सकल वेदान्त वाक्योंके [तात्पर्यनिश्चयम्] तात्पर्यनिश्चयको (श्रवणम्) श्रवण (विदुः) मानते हैं (तु) परन्तु (श्रुतस्य) श्रवण किये हुए [अद्वितीयस्य,एव] एकही (प्रत्यगात्मनः) व्यापक आत्मस्वरूप (वस्तुनः) वस्तुके (वेदान्तवाक्यानुगुणयुक्तिभिः) वेदान्तवाक्योंके अनुकूल युक्तियोंके द्वारा (अनुचिन्तनम्) चिन्तवनको (तच्च तपदार्थस्य) उस श्रवण किये हुए पदार्थके (साक्षात्कारकारणम्) प्रत्यक्ष होनेका हेतु (मननम्) मनन [विदुः] जानते हैं ॥ ८१०-८१३ ॥

भावार्थ—निरन्तर तत्परभावसे श्रवण मनन और निदिध्यासन करने पर बुद्धिमें सूक्ष्मता आती है, फिर यथार्थ वस्तु प्राप्त होती है, इसकारण उत्तमरीतिसे वस्तुका तत्त्व पानेके लिये जडबुद्धि मनुष्योंको वार वार श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिये, उपक्रम और संहारकी एकवाक्यता आदि छः प्रकारके हेतुओंके द्वारा सत्यरूप अद्वितीय परब्रह्ममें सकल वेदान्तवाक्योंके तात्पर्यनिर्णय को पण्डित पुरुष श्रवण नामसे कहते हैं और वेदान्तवाक्योंके अनुकूल युक्तियों के द्वारा गुरुमुखसे सुनेहुए अद्वितीय व्यापक ब्रह्मके चिन्तवनको पण्डित मनन कहते हैं, यह मननही श्रवण कियेहुए पदार्थके साक्षात्कारका हेतु है ॥८१०-८१३ ॥

विजातीयशरीरादिप्रत्ययत्यागपूर्वकम् ।
सजातीयात्मवृत्तानां प्रवाहकरणम् यथा ॥ ८१४ ॥
तैलधारावदाच्छिन्नं वृत्त्यै तद्ध्यानमिष्यते ।
तावत्कालं प्रयत्नेन कर्त्तव्यं श्रवणं सदा ॥ ८१५ ॥
प्रमाणसंशयो यावत् स्वबुद्धेर्न निवर्त्तते ।
प्रमेयसंशयो यावत तावत्तु श्रुतियुक्तिभिः ॥ ८१६ ॥
आत्मयाथार्थ्यनिश्चित्यै कर्त्तव्यं मननं मुहुः ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विपरीतात्मधीर्यावन्न विनश्यति चेतसि ।
तावन्निरन्तरं ध्यानं कर्तव्यं मोक्षमिच्छता ॥ ८१७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (विजातीयशरीरादिप्रत्ययत्यागपूर्वकम्) विरुद्ध जाति वाले देह आदिके विषयके ज्ञानको त्यागकर (तैलधारावत्) तेलकी धारकी समान (अच्छिन्नवृत्त्या) बीचमें न टूटनेवाली वृत्तिसे (सजातीयात्मवृत्तीनाम्) समान जातिवालीं आत्माकार वृत्तियोंका (प्रवाहकरणम्) निरन्तर प्रवाह रूपसे चलाना (तद्) वह (ध्यानम्) निदिध्यासन (इष्यते) माना जाता है (यावत्) जबतक (स्वबुद्धेः) अपनी बुद्धिसे (प्रमाणसंशयः) प्रमाणोंके विषयका सन्देह (न) नहीं (निवर्त्तेत) दूर होय (तावत्कालम्) उतने समय तक (सदा) सर्वदा (प्रयत्नेन) यत्न करके (श्रवणम्) श्रवण (कर्त्तव्यम्) करना चाहिये (यावत्) जबतक (प्रमेयसंशयः) प्रमेयके विषयका सन्देह है (तावत्,तु) तबतक तो (श्रुतियुक्तिभिः) श्रुति और वेदानुकूल युक्तियोंके द्वारा (आत्मयाथार्थ्यनिश्चित्यै) आत्माकी यथार्थताका निश्चय करनेके लिये (मुहुः) वार वार (मननम्) मनन (कर्त्तव्यम्) करना चाहिये (यावत्) जबतक (चेतसि) अन्तःकरणमें (विपरीतात्मधीः) विपरीत आत्मज्ञान (न) नहीं (विनश्यति) नष्ट होता है (तावत्) तबतक (मोक्षं, इच्छता) मोक्ष चाहने वालेको (निरन्तरम्) बराबर (ध्यानम्) निदिध्यासन (कर्त्तव्यम्) करना चाहिये॥ ८१४*८१७ ॥

भावार्थ—देह आदिमें आत्मबुद्धिरूप विजातीय प्रतीतिको त्यागकर तेलकी धारकी समान अविच्छिन्नभावसे आत्मरूप सजातीय अन्तःकरण वृत्तियोंको एकरूपसे प्रवाहित करनेका नाम ध्यान है, जबतक प्रमाणोंमेंका सन्देह दूर न होय तबतक उद्योग कर निरन्तर श्रवण करता रहे, जबतक प्रमेयका सन्देह दूर न हो जाय तबतक श्रुतियोंसे और उनके अनुकूल युक्तियोंसे आत्माके यथार्थ स्वरूपका निर्णय करनेके लिये वार वार मनन करे, जबतक चित्तमेंका विपरीत आत्मज्ञान अर्थात् देह इन्द्रियादिमेंकी आत्मबुद्धि दूर न होय तबतक मुमुक्षु पुरुषको निरन्तर निदिध्यासन करना चाहिये ॥ ८१४-८१७ ॥

यावन्न तर्केण निरासितोऽपि
दृश्यप्रपञ्चस्त्वपरोक्षबोधात् ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

निलीयते तावदमुष्य भिक्षो-
ध्यानादि सम्यक् करणीयमेव ॥ ८१८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यावत्) जबतक (तर्केण) मननके द्वारा (दृश्यप्रपञ्चः) यह दीखने वाला जगत् (निरासितः, अपि) दूर किया हुआ भी (अपरोक्षबोधात्) प्रत्यक्षज्ञानसे (न) नहीं (विलीयते) विलीन होता है (तावत्, तु) तब तक तो (अमुष्य) इस (भिक्षोः) संन्यासीको (ध्यानादि) निदिध्यासन आदि (सम्यक्) उत्तम प्रकारसे (करणीयम्, एव) करना ही चाहिये ॥८१८ ॥

भावार्थ-मननके द्वारा इस दीखनेवाले जगत्को दूर करने पर भी जब तक यह प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा विलीन न होय तब तक इस संन्यासीको उत्तम रीतिसे ध्यान करना चाहिये ॥ ८१८ ॥

सविकल्पसमाधिः ।

सविकल्पो निर्विकल्प इति द्वेधा निगद्यते ।
समाधिः सविकल्पस्य लक्षणं वच्मि तच्छृणु ॥ ८२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समाधिः) समाधि (सविकल्पः) सविकल्प (निर्विकल्पः) निर्विकल्प (इति) इसप्रकार (द्वेधा) दो प्रकारका (निगद्यते) कहा जाता है (सविकल्पस्य) सविकल्पके (लक्षणम्) लक्षणको (वच्मि) कहता हूँ (तत्) उसको (शृणु) सुन ॥ ८१९ ॥

भावार्थ-समाधि दो प्रकारकी है एक सविकल्प और दूसरी निर्विकल्प, इनमें से सविकल्प समाधिका लक्षण कहता हूँ उसको सुन ॥ ८१९ ॥

ज्ञात्राद्यविलये नैव ज्ञेये ब्रह्मणि केवले ।
तदाकाराकारितया चित्तवृत्तेरवस्थितिः ॥ ८२० ॥
सद्भिः स एव विज्ञेयः समाधिः सविकल्पकः ।
मृद एवावभानेऽपि मृन्मयद्विपभानवत् ॥ ८२१ ॥
सन्मात्रवस्तुभानेऽपि त्रिपुटी भाति सन्मयी ।
समाधिरत एवायं सविकल्प इतीर्यते ॥ ८२२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञात्राद्यविलयेन, एव) ज्ञाता आदिका विलय न होनेसे ही (केवले) शुद्ध (ज्ञेये) ज्ञानके विषय (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (तदाकारा-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कारितया) उसके आकारके आकारवाली (चित्तवृत्तेः) चित्तकी वृत्तिकी (अवस्थितः) स्थिति (सद्भिः) सत्पुरुषों करके (सः, एव) वह ही (सविकल्पः) विकल्पसहित (समाधिः) समाधिः (विज्ञेयः) जानने योग्य है (मृदः, एव) मट्टीके ही (अवभाने, अपि) भासित होने पर भी (मृन्मयद्विपभानवत्) मट्टीके हाथीकी प्रतीतिकी समान (सन्मात्रवस्तुभाने, अपि) सत् पदार्थ मात्रके भासित होने पर भी (सन्मयी) सत्तावाली (त्रिपुटी) त्रिपुटी (भाति) भासित होती है (अत एव) इसलिये ही (सविकल्पः) सविकल्प (समाधिः) समाधि (इति) ऐसा (ईर्यते) कहाजाता है ॥ ८२१-८२२ ॥

भावार्थ- ज्ञाता और ज्ञानके भेदभावका विलय न होकर शुद्ध ज्ञेय ब्रह्ममें उसके ही आकारको धारण करनेवाली चित्तकी वृत्ति जब स्थित होती है तो उसको सज्जन पुरुष सविकल्प समाधि कहते हैं, मट्टीके हाथीको देखकर उसमें मट्टीका ज्ञान हो जाने पर भी जैसे मट्टीका हाथी भासता है, ऐसे ही सत्स्वरूप वस्तुका ज्ञान हो जाने पर भी ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय यह त्रिपुटी भासित होती ही है; इसलिये ही विद्वानोंने इसका नाम सविकल्प समाधि कहा है ॥ ८२०-८२२ ॥

निर्विकल्पसमाधिः ।

ज्ञात्रादिभावमुत्सृज्य ज्ञेयमात्रस्थितिर्दृढा ।
मनसो निर्विकल्पः स्यात्समाधिर्योगसंज्ञितः ॥ ८२३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञात्रादिभावम्) ज्ञाता आदिके भावको (उत्सृज्य) छोडकर (मनसः) मनकी (दृढा) दृढरूप (ज्ञेयमात्रस्थितिः) ज्ञानके विषयमात्र से स्थिति (योगसंज्ञितः) योग नामवाला (निर्विकल्पः) विकल्परहित (समाधिः) समाधि (स्यात्) होगा ॥ ८२३ ॥

भावार्थ-ज्ञातापन आदिको छोडकर ज्ञेयरूपमें मनकी दृढस्थितिका नाम योगमें निर्विकल्प समाधि कहा है ॥ ८२३ ॥

जले निक्षिप्तलवणं जलमात्रतया स्थितम् ।
पृथङ्न भाति किन्त्वम्भ एकमेवावभासते ॥ ८२४ ॥
यथा तथैव सा वृत्तिर्ब्रह्ममात्रतया स्थिता ।
पृथङ्न भाति ब्रह्मैवाद्वितीयमवभासते ॥ ८२५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ (यथा) जैसे , जले) जलमें (निक्षिप्तलवणम्) डाला हुआ लवण (जलमात्रतया) केवल जलरूपसे (स्थितम्) स्थित हुआ (पृथक्) भिन्न (न) नहीं (भाति) भासित होता है (किन्तु) किन्तु (एकम्) एक (अम्भः एव) जल ही (अवभासते) भासता है (तथा तैसे ही (ब्रह्ममात्रतया) केवल ब्रह्मरूपसे (स्थिता) स्थित हुई (सा) वह (वृत्तिः) चित्तकी वृत्ति (पृथक्) अलग (न) नहीं (भाति) भासती है (अद्वितीयम्) एक (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही (अवभासते) प्रकाशित होता है ॥ ८२४ ॥ ८२५ ॥

भावार्थ-जैसे जलमें डाला हुआ लवण जलरूपमें ही स्थित होजाता है, अलग प्रतीत नहीं होता, किन्तु केवल जल ही भासता है, ऐसे ही केवल ब्रह्मरूप से स्थित अन्तःकरणकी वृत्ति अलग प्रकाशित नहीं होती किन्तु अद्वितीय ब्रह्मरूप से ही भासती है ॥ ८२४ ॥ ८२५ ॥

ज्ञात्रादिकल्पनाभावान्मतोऽयं निर्विकल्पकः ।
वृत्तेः सद्भावबाधाभ्यामुभयोर्भेद इष्यते ॥ ८२६ ॥

अन्वय और पदार्थ- ज्ञात्रादिकल्पनाभावात्) ज्ञाता आदिकी कल्पना न होनेसे (अयम्) यह (निर्विकल्पः) निर्विकल्प समाधि (मतः) मानागया है (वृत्तेः) चित्तकी वृत्तिके (सद्भावबाधाभ्याम्) स्थिति और नाशके द्वारा (उभयोः) दोनोंका (भेदः) भेद (इष्यते) मानाजाता है ॥ ८२६ ॥

भावार्थ—ज्ञाता और ज्ञानकी कल्पना न होनेसे यह निर्विकल्प समाधि कहलाती है, सविकल्प समाधिमें चित्तकी वृत्ति होती है और निर्विकल्प समाधिमें चित्तकी वृत्ति नहीं होती, यही इन दोनों समाधियोंमें भेद है ॥ ८२६ ॥

समाधिसुप्त्योर्ज्ञानञ्चाज्ञानं सुप्त्यात्र नेष्यते ।
सविकल्पो निर्विकल्पः समाधी द्वाविमौ हृदि ॥ ८२७ ॥
मुमुक्षोर्यत्नतः कार्यौ विपरीतनिवृत्तये ।
कृतेऽस्मिन् विपरीताया भावनाया निवर्त्तनम् ॥ ८२८ ॥
ज्ञानस्याप्रतिबद्धत्वं सदानन्दश्च सिद्ध्यति ।

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस समाधिमें (सुप्त्या) सुपुप्तिके द्वारा (समाधिसुप्त्योः) समाधि और सुपुप्तिका (ज्ञानम्) ज्ञान (च) और (अज्ञानम्) अज्ञान (न) नहीं (इष्यते) इच्छा कियाजाता है (सविकल्पः) विकल्पसहित (निर्विकल्पः) विकल्परहित (इमौ) ये (द्वौ) दो (समाधी) समाधि (विप-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रीतनिवृत्तये विरुद्धभावनाको दूर करनेके लिये (मुमुक्षोः) मुमुक्षुको (हृदि) हृदयमें (यत्नतः) यत्नके साथ (कार्यौ) करने चाहियें (अस्मिन्, कृते) इस समाधिके करलेने पर (विपरीतभावनायाः) विरुद्धविचारकी (निवर्त्तनम्) निवृत्ति [भवति] होती है (ज्ञानस्य) ज्ञानका (अप्रतिवद्धत्वम्) न रुकना (च) और (आनन्दः) आनन्द (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ८२७ ॥ ८२८ ॥

भावार्थ—निर्विकल्प समाधिमें विद्वान् सविकल्प समाधि और सुषुप्तिके प्रति अज्ञानको नहीं मानते हैं, मुमुक्षु पुरुषको आत्मस्वरूपके विपरीत जो विचार उठते हैं उनको दूर करनेके लिये अपने मनमें यत्नके साथ सविकल्प और निर्विकल्प दोनों समाधियोंका अनुष्ठान करना चाहिये, इन समाधियोंका अनुष्ठान होने पर विपरीत विचार नहीं उठते बिना रुकावटका ज्ञान उत्पन्न होता है और नित्य आनन्द प्रकट होता है ॥ ८२७ ॥ ८२८ ॥

दृश्यानुविद्धसविकल्पः ।

दृश्यानुविद्धः शब्दानुविद्धश्चेति द्विधा मतः ॥ ८२९ ॥
सविकल्पस्तयोर्यत्तल्लक्षणं वच्मि तच्छृणु ।
कामादिप्रत्ययैः दृश्यैः संसर्गो यत्र दृश्यते ॥ ८३० ॥
सोऽयं दृश्यानुविद्धः स्यात्समाधिः सविकल्पकः ।
अहं ममेदमित्यादिकामक्रोधादिवृत्तयः ॥ ८३१ ॥
दृश्यन्ते येन संदृष्टा दृश्याः स्युरहमादयः ।
कामादिसर्ववृत्तीनां द्रष्टारमविकारिणम् ॥ ८३२ ॥
साक्षिणं स्वं विजानीयाद्यस्ताः पश्यति निष्क्रियः ।
कामादीनामहं साक्षी दृश्यन्ते ते मया ततः ॥ ८३३ ॥
इति साक्षितयात्मानं जानात्यात्मनि साक्षिणम् ।
दृश्यं कामादि सकलं स्वात्मन्येव विलापयेत् ॥ ८३४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सविकल्पः) सविकल्प समाधि (दृश्यानुविद्धः) दृश्यके सम्बन्ध वाला (च) और (शब्दानुविद्धः) शब्दके सम्बन्धवाला (द्विधा) दो प्रकारका (मतः) माना गया है (तयोः) उनका (यत्) जो (लक्षणम्) लक्षण है (तत्) उसको (वच्मि) कहता हूँ (शृणु) सुन (यत्र)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जिस समाधिमें (कामादिप्रत्ययैः) काम आदिके ज्ञानरूप (दृश्यैः) दृश्योंके द्वारा (संसर्गः) सम्बन्ध (दृश्यते) दीखता है (सः) वह (अयम्) यह (दृश्यानुविद्धः) दृश्यके सम्बन्धवाला (सविकल्पकः) सविकल्प (समाधिः) समाधि (स्यात्) होगा (अहं ममेदं इत्यादि कामक्रोधादिवृत्तयः) मैं, यह मेरा, इत्यादि काम क्रोध आदि चित्तकी वृत्तियें (येन) जिसके द्वारा (दृश्यन्ते) दीखतीं हैं (अहमादयः) मैं आदि ((दृश्याः) दृश्य [येन] जिसके द्वारा (संदृष्टाः) देखे गये हैं (कामादिसर्ववृत्तीनाम्) काम आदि सब वृत्तियोंके (द्रष्टारम्) द्रष्टा (अविकारिणम्) विकाररहित (साक्षिणम्) साक्षी (स्वम्) अपनेको (यः) जो (विजानीयात्) जाने [यः] जो (निष्क्रियः) व्यापाररहित [सन्] होता हुआ (ताः) उन वृत्तियोंको (पश्यति) देखता है (अहम्) मैं (कामादीनाम्) काम आदिका (साक्षी) द्रष्टा [अस्मि] हूँ (ततः) तिससे (ते) वे कामादि (मया) मुझ करके (दृश्यन्ते) देखे जाते हैं (इति) इसप्रकार (साक्षितया) साक्षीरूप से (आत्मनि) अपनेमें (आत्मानम्) अपने आपको (विजानीयात्) जाने (कामादि) काम आदि (सकलम्) सब (दृश्यम्) दृश्यको (आत्मनि, एव) आत्मामें ही (विलापयेत्) विलीन करे ॥ ८२९-८३४ ॥

भावार्थ–सविकल्प समाधि दो प्रकारकी होती है दृश्यानुविद्ध और शब्दानुविद्ध, इन दोनोंके लक्षण कहता हूँ, सुन–जिसमें काम क्रोध आदि प्रत्ययरूप दृश्य पदार्थोंके साथ सम्बन्ध होता है उसको दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि कहते हैं, जिसके द्वारा मैं मेरा इत्यादि काम क्रोध आदिकी वृत्तियें देखनेमें आती हैं, जो अहं मम आदि दृश्य पदार्थोंका द्रष्टा है, सकल काम आदि वृत्तियोंके दर्शक, अविकारी साक्षी आत्माको जो जानते हैं, जो व्यापाररहित होकर इन सब वृत्तियोंको देखता है, मैं काम क्रोध आदि वृत्तियोंका साक्षी हूँ इसलिये मैं उन सबको देखता हूँ, इस प्रकार साक्षीभावसे आत्मामें आत्माको जो जानते हैं वे काम आदि सकल वृत्तियों को आत्मामें ही लीन कर देते हैं ॥ ८२९-८३४ ॥

नाहं देहो नाप्यसुर्नाक्षवर्गो नाहंकारो नो मनो नाऽपि बुद्धिः।
अन्तस्तेषां चापि तद्विक्रियाणां साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥८३५॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (देहः) शरीर (न) नहीं हूँ (असुः अपि) प्राण भी (न) नहीं हूँ (अक्षवर्गः) इन्द्रियसमूह (न) नहीं हूँ (अहङ्कारः) अभिमान (न) नहीं हूँ (मनः) मन (न) नहीं हूँ (बुद्धिः) अपि

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बुद्धि भी (न) नहीं हूँ [यत्र] जहाँ (तेषाम्) उन देह आदिकोंको (च) और (तद्विक्रियाणाम्, अपि) उनके विकारोंकी भी (अन्तः) समाप्ति है [सः] वह (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्स्वरूप (प्रत्यक्) व्यापक आत्मा (अहम् एव) मैं ही (अस्मि) हूँ ॥ ८३५ ॥

भावार्थ-मैं देह नहीं हूँ, प्राण नहीं हूँ, कोई इन्द्रिय नहीं हूँ अहङ्कार नहीं हूं. मन नहीं हूँ, और बुद्धि नहीं हूँ, किन्तु इन देह आदि और देह आदिके विकारोंकी जहाँ समाप्ति होजाती है, वह साक्षिस्वरूप, नित्य, व्यापक आत्मा मैं ही हूँ ॥ ८३५ ॥

वाचः साक्षी प्राणवृत्तेश्च साक्षी बुद्धेः साक्षी बुद्धिवृत्तेश्च साक्षी।
चक्षुःश्रोत्रादीन्द्रियाणाञ्च साक्षी साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि॥

अन्वय और पदार्थ-[यः] जो (वाचः वाणीका (साक्षी) द्रष्टा है (च) और प्राणवृत्तेः) प्राणके व्यापारका (साक्षी) द्रष्टा है (बुद्धेः) बुद्धिका (साक्षी) द्रष्टा है (च) और (बुद्धिवृत्तेः, च) बुद्धिकी वृत्तिका भी (साक्षी) द्रष्टा है (च) और (चक्षुःश्रोत्रादीन्द्रियाणाम्) आँख कान आदि इन्द्रियोंका (साक्षी) द्रष्टा है [सः] वह (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्स्वरूप (प्रत्यक्) व्यापक आत्मा (अहं, एव) मैं ही (अस्मि) हूँ ॥ ८३६ ॥

भावार्थ-जो वाणीका और प्राणके व्यापारका साक्षी है, बुद्धिका और बुद्धि की वृत्तिका साक्षी है तथा जो चक्षु श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका भी साक्षी है वह साक्षी सत्स्वरूप व्यापक आत्मा मैं ही हूँ ॥ ८३६ ॥

नाहं स्थूलो नापि सूक्ष्मो न दीर्घो नाहं बालो नो युवा नापि वृद्धः।
नाहं काणो नापि मूको न षण्डः साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (स्थूलः) मोटा (न) नहीं हूँ (सूक्ष्मः, अपि) पतला भी (न) नहीं हूँ (दीर्घः) लम्बा (न) नहीं हूँ (अहम्) मैं (बालः) बालक (नः) नहीं हूँ (युवा) जवान (न) नहीं हूँ (वृद्धः, अपि) बूढा भी (न) नहीं हूँ (अहम्) मैं (काणः) काना (न) नहीं हूँ (मूकः) गूँगा (न) नहीं हूँ (षण्डः, अपि) नपुंसक भी (न) नहीं हूँ (अहम्) मैं (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्स्वरूप (प्रत्यक,एव) व्यापक आत्मा ही (अस्मि) हूँ ।

भावार्थ-मैं मोटा नहीं, पतला नहीं, लम्बा नहीं, बालक नहीं, युवा नहीं, बूढा नहीं, काणा नहीं, गूँगा नहीं और नपुंसक भी नहीं हूँ, किन्तु साक्षी, सत्स्वरूप व्यापक आत्मा मैं ही हूँ ॥ ८३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नास्म्यागन्ता नाऽपि गन्ता न हन्ता
नाहं कर्त्ता न प्रयोक्ता न वक्ता।
नाहं भोक्ता नो सुखी नैव दुःखी
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ८३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आगन्ता) आनेवाला (न) नहीं (अस्मि) हूँ (गन्ता) जाने वाला (न) नहीं (हन्ता, अपि) मारनेवाला भी (न) नहीं (अहम्) मैं (कर्त्ता) करनेवाला (न) नहीं (प्रयोक्ता) प्रयोग करनेवाला (न) नहीं (वक्ता) बोलनेवाला (न) नहीं (अहम्) मैं (भोक्ता) भोगने वाला (न) नहीं (सुखी) सुखका अनुभव करनेवाला (नो) नहीं (दुःखी) दुःख पानेवाला [च] भी (न) नहीं (एव) ही [अस्मि] हूँ (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्स्वरूप (प्रत्यक्) व्यापक आत्मा (अहं, एव) मैं ही (अस्मि) हूँ ॥ ८३८ ॥

भावार्थ-मैं न कहींसे आया हूँ, न कहीं जाऊँगा, किसीका वध करनेवाला प्रयोग करनेवाला, वक्ता, भोक्ता, सुख या दुःख भोगनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं तो साक्षी सत्स्वरूप व्यापक आत्मा हूँ ॥ ८३८ ॥

नाहं योगी नो वियोगी न रागी नाहं क्रोधी नैव कामी न लोभी।
नाहं बद्धो नाऽपि युक्तो न मुक्तः साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ३६

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (योगी) योग साधन करनेवाला (न) नहीं (वियोगी) वियुक्त होनेवाला (नो) नहीं (रागी) अनुराग करने वाला (न) नहीं (अहम्) मैं (क्रोधी) क्रोध करने वाला (न) नहीं (कामी) कामके वशीभूत (न, एव) कदापि नहीं (लोभी) लोभ करने वाला (न) नहीं (अहम्) मैं (बद्धः) बन्धनमें पड़ा हुआ (न) नहीं (युक्तः) कार्यमें लगा हुआ (न) नहीं (मुक्तः,अपि) छूटने वाला भी (न) नहीं [अस्मि] हूँ (अहम्) मैं [तु] तो (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्य स्वरूप (प्रत्यक,एव) व्यापक आत्माही (अस्मि) हूँ ॥ ८३६ ॥

भावार्थ-मैं योगी नहीं, वियोगी नहीं, रागी नहीं, मैं क्रोधी नहीं, कामी नहीं, लोभी नहीं, मैं बद्ध नहीं, किसी कार्यमें युक्त नहीं,और मुक्ति पाने वाला भी नहीं, किन्तु मैं द्रष्टा, सत्यरूप व्यापक आत्मा हूँ ॥ ८३६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नान्तःप्रज्ञो न बहिःप्रज्ञको वा नैव प्रज्ञो नापि चाप्रज्ञ एषः।
नाहं श्रोता नापि मन्ता न बोद्धा साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (अहम्) मैं (अन्तःप्रज्ञः) भीतरी ज्ञान वाला (न) नहीं (बहिःप्रज्ञकः) बाहरी संज्ञा वाला (न) नहीं (वा) व (प्रज्ञः, एव) उत्तम ज्ञान वाला भी (न) नहीं (च) और (अप्रज्ञः, अपि) प्रज्ञानशून्य भी (न) नहीं (श्रोता) सुननेवाला भी (न) नहीं (मन्ता) मनन करने वाला (न) नहीं (बोद्धा, अपि) ज्ञाता भी (न) नहीं (अहम्) मैं (साक्षी) द्रष्टा (नित्यः) सत्स्वरूप (प्रत्यक्, एव) व्यापक आत्मा ही (अस्मि) हूँ ॥ ८४० ॥

भावार्थ-मैं भीतरी संज्ञा वाला या बाहरी संज्ञा वाला नहीं हूँ. मैं उत्तम ज्ञानी वा अज्ञानी नहीं हूँ, मैं सुनने वाला वा मनन करने वाला अथवा ज्ञाता भी नहीं हूँ, मैं तो द्रष्टा, सत्स्वरूप व्यापक आत्मा ही हूँ ॥ ८४० ॥

न मेऽस्ति देहेन्द्रियबुद्धियोगो न पुण्यलेशोऽपि न पापलेशः।
क्षुधापिपासादिषडूर्मिदूरः सदा विमुक्तोऽस्मि चिदेव केवलः ८४१

अन्वय और पदार्थ-(मे) मुझे (देहेन्द्रियबुद्धियोगः) शरीर, इन्द्रियें और बुद्धिका संयोग (न) नहीं (अस्ति) है (पुण्यलेशः) पुण्यका सम्पर्क (न) नहीं (पापलेशः, अपि) पापका सम्पर्क भी (न) नहीं [अस्ति] है (क्षुधापिपासादिषडूर्मिदूरः) भूख प्यास आदि छः ऊर्मियोंसे दूर (सदा) सर्वदा (विमुक्तः) विशेषरूपसे मुक्त (केवलः) शुद्ध (चित्, एव) ज्ञानस्वरूप ही (अस्मि) हूँ ८४१

भावार्थ-शरीर, इन्द्रियें और बुद्धिके साथ मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है; जरासा भी पुण्य वा पाप मुझे स्पर्शमात्र भी नहीं कर सकता। भूख प्यास शोक मोह जरा और मरण ये छः शरीरके धर्म मुझसे दूर रहते है, मैं तो सदा मुक्त शुद्ध ज्ञान-स्वरूप आत्मा हूँ ॥ ८४१ ॥

अपाणिपादोऽहमवागचक्षुरप्राण एवास्म्यमना ह्यबुद्धिः।
व्योमेव पूर्णोऽस्मि विनिर्मलोऽस्मि सदैकरूपोऽस्मि चिदेव केवलः॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (अपाणिपादः) हाथ पैर रहित (अवाक्) वाणीरहित (अचक्षुः) चक्षुःशून्य (अप्राणः) प्राणरहित (हि) निश्चय (अमनः) मनःशून्य (अबुद्धि, एव) बुद्धिरहित ही (अस्मि) हूँ (व्योम, इव):

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आकाशकी समान (पूर्णः) पूर्ण ((अस्मि) हूँ (विनिर्मलः) विशेष स्वच्छ (अस्मि) हूँ (सदा) सर्वदा (एकरूपः) अद्वितीय (केवलः) शुद्ध (चित्, एव) ज्ञानस्वरूप ही (अस्मि) हूँ ॥ ८४२ ॥

भावार्थ–मेरे हाथ पैर नहीं हैं, मैं वाणी, चक्षु, प्राण, मन और बुद्धिसे रहित हूँ, मैं आकाशकी समान विभु हूँ, निर्मल हूँ, और सदा कूटस्थ शुद्ध ज्ञानस्वरूपसे स्थित रहता हूँ ॥ ८४२ ॥

इति स्वमात्मानमवेक्षमाणः प्रतीतदृश्यं प्रविलापयन् सदा ।
जहाति विद्वान् विपरीतभावं स्वाभाविकं भ्रान्तिवशात्प्रतीतम् ॥

अन्वय और पदार्थ–(इति) इसप्रकार (स्वम्) अपने (आत्मज्ञानम्) आत्माको (अवेक्षमाणः) देखता हुआ (विद्वान्) पण्डित (सदा) सर्वदा (प्रतीतदृश्यम्) भासनेवाले दृश्यको (प्रविलापयन्) विलीन करता हुआ (भ्रान्तिदर्शनात्) भ्रमके दर्शनसे (प्रतीतम्) अनुभवमें आनेवाले (स्वाभाविकम्) अविद्याकल्पित (विपरीतभावम्) विरुद्धभावको (जहाति) त्याग देताहै ८४३

भावार्थ–विद्वान् पुरुष ऊपर कही हुई रीतिसे अपने आत्माका दर्शन करता हुआ निरन्तर अनुभवमें आने वाले घट पट आदि दृश्यप्रपञ्चको कारणके भीतर लीन करके भ्रान्तिसे भासनेवाले अविद्याकल्पित देहादिमें आत्मबुद्धिरूप विपरीत-भावको त्याग देते हैं ॥ ८४३ ॥

विपरीतात्मतास्फूर्तिरेव मुक्तिरितीर्यते ।
सदा समाहितस्यैव सैषा सिध्यति नान्यथा ॥ ८४४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(विपरीतात्मतास्फूर्तिः, एव) विपरीत-भावसे आत्मा का स्फुरण ही (मुक्तिः, इति) मुक्ति इस नामसे (ईर्यते) कहाजाता है (सा) वह (एषा) यह (सदा) सर्वदा (समाहितस्य, एव) समाधिमान्को ही (सिध्यति) सिद्ध होती है (अन्यथा) और प्रकारसे (न) नहीं ॥ ८४४ ॥

भावार्थ–देह इन्द्रियादिमें जो आत्मबुद्धि होरही है इसके विपरीत आत्मस्वरूप-मात्रका स्फुरण ही मुक्ति नामसे कहाजाता है, यह मुक्ति सदा समाधिमान् पुरुष को ही सिद्ध होती है, और प्रकारसे नहीं होती ॥ ८४४ ॥

न वेषभाषाभिरमुष्य मुक्तिर्या केवलाखण्डचिदात्मना स्थितिः ।
तत्सिद्धये स्वात्मनि सर्वदा स्थितो जह्यादहन्तां ममतामुपाधौ ॥ ८४५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(अमुष्य) इस पुरुषकी (वेषभाषाभिः) वेष और भाषाओंसे (मुक्तिः) मोक्ष (न) नहीं [भवति] होती है (या) जो (केवलाखण्डचिदात्मना) शुद्ध अखण्ड चेतन आत्मस्वरूपसे (स्थितिः) स्थितरूप [अस्ति] है (तत्सिद्धये) उस मुक्तिकी सिद्धिके लिये (स्वात्मनि) अपने स्वरूपमें (सर्वदा) सदा (स्थितः) स्थित पुरुष (अहन्ताम्) अहंभावको (ममताम्) ममताको (उपाधी) दोनों उपाधियोंको (जह्यात्) त्याग देय ॥ ८४५ ॥

भावार्थ-मुमुक्षुओंकेसा वेष या मुमुक्षुओंकेसी बातें करनेसे मुक्ति नहीं मिलती है, शुद्ध अखण्ड ज्ञानस्वरूप आत्मामें स्थिति ही मुक्ति कहलाती है, विवेकी मनुष्य को मुक्ति पानेकी इच्छा हो तो सदा आत्मस्वरूपमें स्थित रहकर मैं मोटा हूँ दुबला हूँ इत्यादि अहन्ता और मेरा देह आदि हैं इत्यादि ममतारूप उपाधियोंको त्याग देना चाहिये ॥ ८४५ ॥

स्वात्मतत्त्वं समालम्ब्य कुर्यात्प्रकृतिनाशनम् ।
तेनैव मुक्तो भवति नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥ ८४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मतत्त्वम्) आत्माके यथार्थ स्वरूपको (समालम्ब्य) आश्रय करके (प्रकृतिनाशनम्) प्रकृतिके नाशको (कुर्यात्) करे (तेन, एव) तिससे ही (मुक्तः) मुक्त (भवति) होता है (अन्यथा) और प्रकारके (कर्मकोटिभिः, अपि) करोड़ों कर्मोंसे भी (न) नहीं ॥ ८४६ ॥

भावार्थ-मनुष्यको, आत्माके यथार्थ स्वरूपका आश्रय लेकर (-जान कर) अविद्याका नाश कर डालना चाहिये, एकमात्र आत्मज्ञानसे ही मुक्ति होती है, इस को छोडकर करोडो कर्म करनेसे भी मुक्ति नहीं होती है ॥ ८४६ ॥

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ।
इत्येवैषा वैदिकी वाग् ब्रवीति क्लेशक्षत्यां जन्ममृत्युप्रहाणिम् ८४७

अन्वय और पदार्थ-(देवम्) आत्मदेवको (ज्ञात्वा) जानकर (सर्वपाशापहानिः) सकल बन्धनोंका नाश [भवति] होता है (क्लेशैः, क्षीणैः) क्लेशोंके क्षीण होनेसे (जन्ममृत्युप्रहाणिः) जन्म मरणका अभाव [भवति] होता है (एषा) यह (वैदिकी) वेदकी (वाक्) श्रुति (इति, एव) इसप्रकार ही (क्लेशक्षत्याम्) क्लेशोंके नाश होने पर (जन्ममृत्युप्रहाणिम्) जन्म मरणके अभावको (ब्रवीति) कहती है ॥ ८४७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ--ब्रह्मको जानकर सकल बन्धन नष्ट होजाते हैं, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पाँच क्लेशोंका क्षय होजाने पर जन्म और मरणके चक्रसे छूट जाता है, इसप्रकार वेदकी श्रुति क्लेशोंका क्षय होने पर जन्म मरणसे मुक्ति बतलाती है ॥ ८४७ ॥

भूयो जन्माद्यप्रसक्तिर्विमुक्तिः क्लेशक्षयां भाति जन्माद्यभावः ।
क्लेशक्षयो हेतुरात्मैकनिष्ठा तस्मात्कार्या ह्यात्मनिष्ठा मुमुक्षोः ॥

अन्वय और पदार्थ--(भूयः) फिर (जन्माद्यप्रसक्तिः) जन्म आदिका प्रसङ्ग न होना (मुक्तिः) मुक्ति [कथ्यते] कही जाती है (क्लेशक्षयाम्) क्लेशोंका क्षय होने पर (जन्माद्यभावः) जन्म आदिका अभाव (भाति) प्रकाशित होता है (आत्मैकनिष्ठा) एकमात्र आत्मपरायणता (क्लेशक्षयः) क्लेशक्षयका (हेतुः) कारण [अस्ति] है (तस्मात्) तिससे (मुमुक्षोः) मुमुक्षुको (आत्मनिष्ठा, हि) आत्मपरायणता ही (कार्या) करनी चाहिये ॥ ८४८ ॥

भावार्थ-फिर कभी जन्म मरण न हो इसका ही नाम मोक्ष है, अविद्या आदि क्लेशोंका क्षय होजाने पर जन्म मरणका प्रवाह रुक जाता है, एकमात्र आत्मस्वरूपमें स्थिति ही क्लेशोंका क्षय करनेवाली है, इसलिये मोक्ष चाहनेवाले मनुष्यको आत्मनिष्ठ हो होना चाहिये ॥ ८४८ ॥

क्लेशा स्युर्वासना एव जन्तोर्जन्मादिकारणम् ।
ज्ञाननिष्ठाग्निना दाहे तासां नो जन्महेतुता ॥ ८४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वासनाः, एव) संस्कार ही (क्लेशाः) क्लेश नामसे (जन्तोः) प्राणीके (जन्मादिकारणम्) जन्म आदिका कारण (स्युः) होंगे (ज्ञाननिष्ठाग्निना) ज्ञानकी पराकाष्ठारूप अग्निके द्वारा (तासाम्) उनके (दाहे) भस्म होजाने पर (जन्महेतुता) जन्मकी कारणता (नो) नहीं रहती है ॥ ८४६ ॥

भावार्थ--वासना (संस्कार) ही क्लेश कहलाते हैं, ये ही प्राणियोंके जन्म मरणका कारण होते हैं, ज्ञानकी उत्कर्षरूप अग्निसे जब यह वासनायें भस्म होजाती हैं तब इनमें जन्म आदि देनेकी शक्ति नहीं रहती ॥ ८४६ ॥

बीजान्यग्निप्रदग्धानि न रोहंति यथा पुनः ।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा संपद्यते पुनः ॥ ८५० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (अग्निप्रदग्धानि) अग्निसे जले हुए (बीजानि) बीज (पुनः) फिर (न) नहीं (रोहन्ति) उगते हैं (तथा) तैसे ही (ज्ञानदग्धैः) ज्ञानसे भस्म हुए (क्लेशैः) क्लेशोंके द्वारा (आत्मा) आत्मा (पुनः) फिर (न) नहीं (सम्पद्यते) जन्म धारता है ॥ ८५० ॥

भावार्थ—जैसे अग्निसे जले हुए बीज फिर नहीं उग सकते, ऐसे ही ज्ञानके द्वारा भस्म हुए क्लेश आत्माको फिर जन्म नहीं देसकते ॥ ८५० ॥

तस्मान्मुमुक्षोः कर्त्तव्या ज्ञाननिष्ठा प्रयत्नतः ।
निःशेषवासनाक्षत्यै विपरीतनिवृत्तये ॥ ८५१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मात्) तिससे (मुमुक्षोः) मुक्ति चाहनेवालेको (निःशेषवासनाक्षत्यै) निःशेषरूपसे वासनाओंका नाश होनेके लिये (विपरीत-निवृत्तये) विपरीत भावनाके दूर होनेके लिये (प्रयत्नतः) उद्योग करके (ज्ञान-निष्ठा) ज्ञानकी उन्नति (कर्त्तव्या) करनी चाहिये ॥ ८५१ ॥

भावार्थ—इसलिये मुमुक्षु पुरुषको निःशेषरूपसे वासनारूप क्लेशोंका क्षय करनेके लिये और देह इन्द्रियादि अनात्मपदार्थोंमें आत्मबुद्धिरूप विपरीतभावना को दूर करनेके लिये उद्योग करके ज्ञानकी उन्नति करनी चाहिये ॥ ८५१ ॥

ज्ञाननिष्ठायां कर्मानुपयोगः ।

ज्ञाननिष्ठातत्परस्य नैव कर्मोपयुज्यते ।
कर्मणो ज्ञाननिष्ठाया न कदापि सह स्थितिः ॥ ८५२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ज्ञाननिष्ठातत्परस्य) ज्ञाननिष्ठामें लगेहुएको (कर्म) कर्म (न) नहीं (उपयुज्यते) उपयोगी होता है (कर्मणः) कर्मकी [च] और (ज्ञाननिष्ठायाः) ज्ञाननिष्ठाकी (सहस्थितिः) एकसाथ स्थिति (कदापि) कभी भी (न) नहीं [भवितुम् अर्हति] होसकती है ॥ ८५२ ॥

भावार्थ—ज्ञानकी उन्नतिमें लगेहुए पुरुषको कर्म उपयोगी नहीं होता है कर्म और ज्ञाननिष्ठा कभी एक साथ नहीं रहसकते ॥ ८५२ ॥

परस्परविरुद्धत्वात्तयोर्भिन्नस्वभावयोः ।
कर्तृत्वभावनापूर्वं कर्मज्ञानं विलक्षणम् ॥ ८५३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भिन्नस्वभावयोः) पृथक् २ स्वभाववाले (तयोः) उन ज्ञान और कर्मके (परस्परविरुद्धत्वात्) आपसमें विरोधी होनेसे [सह-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) : Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्थितिः, न सिध्यति) एकत्र स्थिति नहीं होसकती (कर्म) कर्म (कर्तृत्वभावना-पूर्वम्) कर्तापनकी भावना है पहले जिसमें ऐसा [भवति] होता है (ज्ञानम्) ज्ञान (विलक्षणम्) इसके विपरीत है ॥ ८५३ ॥

भावार्थ—कर्म और ज्ञानका स्वभाव भिन्न २ है, अतः परस्पर विरोधी होनेसे ये दोनों एकत्र नहीं रहसकते, क्योंकि-कर्ममें पहले ही कर्तापनकी भावना होती है और ज्ञान इसके विपरीत अर्थात् कर्तापनकी भावनाको दूर करनेवाला है।

देहात्मबुद्धेर्विच्छित्त्यै ज्ञानं कर्मविवृद्धये ।
अज्ञानमूलकं कर्म ज्ञानं तूभयनाशकम् ॥८५४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञानम्) ज्ञान (देहात्मबुद्धेः) शरीरमें आत्मज्ञानके (विच्छित्त्यै) नाशके लिये (कर्म) कर्म (विवृद्धये) वृद्धिके लिये [भवति] होता है (कर्म) कर्म (अज्ञानमूलकम्) अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला (तु परन्तु (ज्ञानम्) ज्ञान (उभयनाशकम्)दोनोंका नाश करनेवाला[भवति,होता है।।८५४।।

भावार्थ-ज्ञान और कर्मके एकत्र न रहनेका कारण यह है, कि-ज्ञान देहमें आत्मबुद्धिका नाश करता है और यज्ञादि कर्म देह में आत्मबुद्धिको बढ़ाता है: क्योंकि कर्मका कारण अज्ञान है, परन्तु ज्ञान अज्ञान का और अज्ञानजनितका कर्मका नाशक है ॥ ८५४ ॥

ज्ञानेन कर्मणो योगः कथं सिध्यति वैरिणा ।
सहयोगो न घटते तथा तिमिरतेजसोः ॥ ८५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वैरिणा) वैरी (ज्ञानेन) ज्ञानके साथ (कर्मणः) कर्मका (योगः) सम्बन्ध (कथम्) कैसे (सिध्यति) बनसकता है (यथा) जैसे (तिमिरतेजसोः) अन्धकार और प्रकाशका (सहयोगः) साथ रहना (न) नहीं (संघटते) सम्भव है ॥ ८५५ ॥

भावार्थ-जैसे अन्धकार और प्रकाश नित्य विरोधी होनेसे एक स्थानमें नहीं रह सकते, ऐसे ही ज्ञान कर्मका शत्रु है, इस कारण दोनोंका संबन्ध नहीं होसकता ॥ ८५५ ॥

निमेषोन्मेषयोर्वापि तथैव ज्ञानकर्मणोः ।
प्रतीचीं पश्यतः पुंसः कुतः प्राचीविलोकनम् ॥
प्रत्यक्प्रवणचित्तस्य कुतः कर्मणि योग्यता ॥ ८५६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ- अपि वा.) या [यथा] जैसे (निमेषोन्मेषयोः) आँखके मूँदने और खोलनेका, तथा एव) तैसेही (ज्ञानकर्मणोः) ज्ञान और कर्मका [सहयोगः, न घटते] सम्बन्ध नहीं होसकता (प्रतीचीम्) पश्चिमकी ओरको (पश्यतः) देखनेवाले (पुँसः) पुरुषका (प्राचीविलोकनम्)पूर्वकी ओर को देखना (कुतः) कहाँ (प्रत्यक्प्रवणचित्तस्य) आत्माकी ओरको उन्मुख चित्त वालेकी (कर्मणि) कर्ममें (योग्यता) अधिकार (कुतः) कहाँ ॥ ८५६ ॥

भावार्थ-अथवा जैसे आँखका मींचना और खोलना एकसाथ नहीं होसकता; ऐसे ही ज्ञान और कर्मकी एकत्र स्थिति नहीं होसकती,जो पश्चिमकी ओरको देख रहा है वह उसी कालमें पूर्वकी ओरको कैसे देख सकता है, ऐसेही जिसका चित्त ब्रह्ममें तत्पर है उसकी कर्ममें योग्यता कहाँ ॥ ८५६ ॥

ज्ञानैकनिष्ठानिरतस्य भिक्षोर्नैवावकाशोऽस्ति हि कर्मतन्त्रे ।
तदेव कर्मास्य तदेव सन्ध्या तदेव सर्वं न ततोऽन्यदस्ति॥८५७॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञानैकनिष्ठानिरतस्य) एकमात्र ज्ञाननिष्ठामें ही लगे हुए (भिक्षोः) संन्यासीको (कर्मतन्त्रे) कर्मकाण्डमें (अवकाशः) अवकाश (न, एव) कदापि नहीं है (हि) निश्चय (अस्य) इसका (तत्, एव) वह ज्ञानही (कर्म) कर्म है (तत्, एव) वह ही (सन्ध्या) सम्यक् ध्यान है (तत्, एव) वह ही (सर्वम्) सब है (ततः) तिससे (अन्यत्) और (न) नहीं (अस्ति)है

भावार्थ—जो ज्ञाननिष्ठ है, उस त्यागीको कर्म करनेका अवसर नहीं, उसका तो वह ज्ञान ही कर्म है, वही सन्ध्या है वह ज्ञान ही सब कुछ है, उसके सिवाय और कुछ है ही नहीं ॥ ८५७ ॥

बुद्धिकल्पितमालिन्यक्षालनं स्नानमात्मनः ।
तेनैव शुद्धिरेतस्य न मृदा न जलेन च ॥ ८५८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(बुद्धिकल्पितमालिन्यक्षालनम्) बुद्धिकी कल्पना की हुई मलिनताको दूर करना (आत्मनः) आत्माका (स्नानम्) स्नान है (तेन, एव) उससे ही (एतस्य) इसकी (शुद्धिः) शुद्धि होती है (मृदा) मट्टीसे (न) नहीं (च) और (जलेन) जलसे (न) नहीं ॥ ८५८ ॥

भावार्थ—बुद्धिकी कल्पना की हुई मलिनताको दूर करना ही आत्माका स्नान है, इससे ही आत्माकी विशुद्धता होती है, मृत्तिका या जलसे नहीं होती ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वस्वरूपे मनःस्थानमनुष्ठानं तदिष्यते ।
करणत्रयसाध्यं यत्तन्मृषा तदसत्यतः ॥ ८५९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वस्वरूपे) अपनेस्वरूपमें (यत्) जो (मनःस्थानम्) मनकी स्थिति है (तत्) वह (अनुष्ठानम्) अनुष्ठान (इष्यते) मानाजाता है (यत्) जो (करणत्रयसाध्यम्) तीनों करणोंके द्वारा साध्य है (तत्) वह (तदसत्यतः) उनके असत्य होनेके कारण (मृषा) मिथ्या है ॥ ८५९ ॥

भावार्थ-अपने यथार्थ स्वरूपमें मनकी स्थितिका नाम अनुष्ठान है, जो ज्ञानेन्द्रियें, कर्मेन्द्रियें और मनसे सिद्ध होता है वह सत्य नहीं होसकता, क्योंकि-वे इन्द्रियें और मन ही मिथ्या हैं ॥ ८५९ ॥

विनिषिध्याखिलं दृश्यं स्वस्वरूपेण या स्थितिः ।
सा सन्ध्या तदनुष्ठानं तद्दानं तद्धि भोजनम् ॥ ८६० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अखिलम्) सकल (दृश्यम्) दृश्यको (विनिषिध्य) निषेध करके (स्वस्वरूपेण) आत्मस्वरूपसे (या) जो (स्थितिः) स्थिति है (सा) वह (सन्ध्या) सन्ध्या है (तत्) वह (अनुष्ठानम्) अनुष्ठान है (तत्) वह (दानम्) दान है (तत्, हि) वह ही (भोजनम्) भोजन है ॥ ८६० ॥

भावार्थ-सकल दृश्य पदार्थोंका निषेध करके निज आत्मस्वरूपमें स्थिति ही सन्ध्या है, वही अनुष्ठान, दान और वही भोजन है ॥ ८६० ॥

विज्ञातपरमार्थानां शुद्धसत्त्वात्मनां सताम् ।
यतीनां किमनुष्ठानं स्वानुसन्धिं विना परम् ॥ ८६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञातपरमार्थानाम्) परम तत्त्वको जाननेवाले (शुद्धसत्त्वात्मनाम्) विशुद्ध सत्त्वगुणी चित्तवाले (सताम्) साधु (यतीनाम्) यतियों का (स्वानुसन्धिं, विना) आत्मानुसन्धानके सिवाय (अपरम्) और (किम्) क्या (अनुष्ठानम्) आचरण [अस्ति] है ॥ ८६१ ॥

भावार्थ-जिन्होंने परम पदार्थ ब्रह्मको जान लिया है, जिनका चित्त विशुद्ध सत्त्वगुणसे भरा हुआ है ऐसे साधु संन्यासियोंका आत्मानुसन्धानके सिवाय और क्या आचरण होसकता है ? ॥ ८६१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्मात् क्रियान्तरं त्यक्त्वा ज्ञाननिष्ठापरो यतिः ।
सदात्मनिष्ठया तिष्ठेन्निश्चलस्तत्परायणः ॥ ८६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (क्रियान्तरम्) अन्य क्रियाको (त्यक्त्वा) त्यागकर (ज्ञाननिष्ठापरः) ज्ञानकी उन्नति करनेमें तत्पर (यतिः) संन्यासी (सदा) सर्वदा (आत्मनिष्ठया) आत्मपरायणताके द्वारा (निश्चलः) स्थिर (तत्परायणः) आत्मपरायण [सन्] होता हुआ (तिष्ठेत्) स्थिर होय ८६२

भावार्थ—इसलिये ज्ञाननिष्ठामें लगा हुआ संन्यासी अन्य क्रियाको त्याग कर सर्वदा ज्ञानोत्कर्षके द्वारा स्थिर और आत्मपरायण होकर स्थिर रहे ॥८६२॥

कर्त्तव्यं स्वोचितं कर्म योगमारोढुमिच्छता ।
आरोहणं कुर्वतस्तु कर्म नारोहणं मतम् ॥ ८६३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(योगं, आरोढुम्) योग पर चढना (इच्छतां, चाहने वालेको (स्वोचितम्) अपने योग्य (कर्म) कर्म (कर्त्तव्यम्) करना चाहिये (आरोहणम्) आरोहण (कुर्वतः) करते हुएको (कर्म) कर्म (न) नहीं (तु) किन्तु (आरोहणम्) आरोहण (मतम्) माना है ॥ ८६३ ॥

भावार्थ—जिसको योगरूप महल पर चढ़नेकी इच्छा हो उसको अपना कर्त्तव्य करना चाहिये, जो योगमेंको चढता जारहा है वह अन्य कर्मानुष्ठानमें न लगे।

योगं समारोहति यो मुमुक्षुः क्रियान्तरं तस्य न युक्तमीषत् ।
क्रियान्तरासक्तमनाः पतत्यसौ तालद्रुमारोहणकर्तृवद् ध्रुवम् ८६४

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (मुमुक्षुः) मुक्तिका अभिलाषी (योगम्, समारोहति) समाधियोगके साधनमें लगता है (तस्य) उसको (ईषत्) जरासा भी (क्रियान्तरम्) अन्य कर्म करना (युक्तम्) उचित (न) नहीं है (असौ) वह (क्रियान्तरासक्तमनाः) अन्य कार्यमें लगा है मन जिसका ऐसा [सन्] होता हुआ (ध्रुवम्) निश्चय (तालद्रुमारोहणकर्तृवत्) तालके वृक्ष पर चढनेवालेकी समान (पतति) गिरजाता है ॥ ८६४ ॥

भावार्थ-जो मुमुक्षु पुरुष समाधिकी साधनामें लगा हो उसको जरासा भी अन्य कर्मका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये, यदि वह पुरुष दूसरे कर्ममेंको चित्त लगावेगा तो तालके वृक्ष पर चढनेवालेकी समान समाधियोगसे गिरजायगा ८६४

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

योगारूढस्य सिद्धस्य कृतकृत्यस्य धीमतः ।
नास्त्येव हि बहिर्दृष्टिः का कथा तत्र कर्मणाम् ॥
दृश्यानुविद्धः कथितः समाधिः सविकल्पकः ॥ ८६५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(योगारूढस्य) समाधिमें चढ़े हुए (सिद्धस्य) सिद्धि पाये हुए (कृतकृत्यस्य) कृतार्थ हुए (धीमतः) बुद्धिमान्की (बहिर्दृष्टिः) बाहरकी दृष्टि (न एव) कदापि नहीं (अस्ति) है (हि) निश्चय (तत्र) उस अवस्थामें (कर्मणाम्) कर्मोंका (का) कौन (कथा) बात है (दृश्यानुविद्धः) दृश्यके सम्बन्धवाला (सविकल्पकः) सविकल्पक (समाधिः) समाधि (कथितः) कह दिया है ॥ ८६५ ॥

भावार्थ-जो समाधिमें चढ गया है, ऐसे सिद्ध कृतार्थ बुद्धिमान् पुरुषकी बाहरी विषयोंमें संज्ञा भी नहीं होती, फिर कर्मोंके करनेकी तो चर्चा ही क्या ? ऐसा इस दृश्य पदार्थके सम्बन्धवाले सविकल्प समाधिका वर्णन है ॥ ८६५ ॥

शुद्धोऽहं बुद्धोऽहं प्रत्यग्रूपेण नित्यसिद्धोऽहम् ।
शान्तोऽहमनन्तोऽहं सततपरानन्दसिन्धुरेवाहम् ॥ ८६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (शुद्धः) गुणसङ्गरहित (अहम्)मैं (बुद्धः) ज्ञानस्वरूप (अहम्) मैं (प्रत्यग्रूपेण) आत्मस्वरूपसे (नित्यसिद्धः) सदा सिद्ध (अहम्) मैं (शान्तः) निर्मल (अहम्) मैं (अनन्तः) व्यापक (अहम्) मैं (सततपरानन्दसिन्धुः, एव) निरन्तर परम आनन्दका सागर ही [अस्मि] हूँ॥

भावार्थ-मैं शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, आत्मस्वरूपसे नित्यसिद्ध, शान्त, व्यापक और सदा परमानन्दका सागर हूँ, योगीको ऐसा ज्ञान उत्पन्न होजाता है ॥ ८६६ ॥

आद्योऽहमनाद्योऽहं वाङ्मनसा साध्यवस्तुमात्रोऽहम् ।
निगमवचोवेद्योऽहमनवद्याखण्डबोधरूपोऽहम् ॥ ८६७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अहम्) मैं (आद्यः) सबसे पहला (अहम्) मैं (अनाद्यः) आदिशून्य (अहम्) मैं (वाङ्मनसा) वाणी और मनके द्वारा (साध्यवस्तुमात्रः) साधन करने योग्य पदार्थमात्र (अहम्) मैं (निगमवचोवेद्यः) वेदवाक्यके द्वारा जानने योग्य (अहम्) मैं (अनवद्याखण्डबोधरूपः) प्रशंसनीय अखण्ड ज्ञानरूप [अस्मि] हूँ ॥ ८६७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—समाधिसिद्ध योगी मानता है, कि—मैं सबका आदि स्वयं अनादि, विशुद्ध वाक्य और मनके द्वारा लभ्य पदार्थ, वेदवाणीसे जानने योग्य और प्रशंसनीय अखण्ड ज्ञानस्वरूप हूँ ॥ ८६७ ॥

विदिताऽविदितान्योऽहं मायातत्कार्यलेशशून्योऽहम् ।
केवलदृगात्मकोऽहं संविन्मात्रः सकृद्विभातोऽहम् ॥ ८६८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अहम्) मैं (विदिताविदितान्यः) विदित और अविदितसे भिन्न (अहम्) मैं (मायातत्कार्यलेशशून्यः) माया और उसके कार्यके सम्पर्कसे शून्य (अहम्) मैं (केवलदृगात्मकः) केवल द्रष्टारूप (अहम्) मैं (संविन्मात्रः) ज्ञानमात्र (सकृद्विभातः) एकरूपसे भासनेवाला [अस्मि] हूँ ८६८

भावार्थ—मैं जाने हुए और न जाने हुए पदार्थसे अन्य, माया और मायाके कार्यकी छूतसे बचा हुआ, केवल द्रष्टा, ज्ञानरूप और एकमात्रमें भासने वाला हूँ ८६८

अपरोऽहमनपरोऽहं बहिरन्तश्चापि पूर्ण एवाऽहम् ।
अजरोऽहमक्षरोऽहं नित्यानन्दोऽहमद्वितीयोऽहम् ॥ ८६९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अहम्) मैं (अपरः) परभिन्न (अहम्) मैं (अनपरः) अपरभिन्न (अहम्) मैं (बहिः) बाहर (च) और (अन्तः, अपि) भीतर भी (पूर्णः, एव) पूर्णही (अहम्) मैं (अजरः) जरारहित (अहम्) मैं (अक्षरः) क्षयरहित (अहम्) मैं (नित्यानन्दः) नित्यसुखरूप (अहम्) मैं (अद्वितीयः) द्वितीयरहित [अस्मि] हूँ ॥ ८६९ ॥

भावार्थ—मैं ही अपर, मैं ही अनपर, मैं ही भीतर मैं ही बाहर पूर्णरूपसे विराजमान, मैं अजर, अमर, नित्यसुखरूप और अद्वितीय हूँ ॥ ८६९ ॥

प्रत्यगभिन्नमखण्डं सत्यज्ञानादिलक्षणं शुद्धम् ।
श्रुत्यवगम्यं तथ्यं ब्रह्मैवाऽहं परं ज्योतिः ॥ ८७० ॥

अन्वय और पदार्थ—(अहम्) मैं (प्रत्यगभिन्नम्) व्यापक आत्मासे अभिन्न (अखण्डम्) एकरूप (सत्यज्ञानादिलक्षणम्) सत्य ज्ञान और आनन्दरूप (शुद्धम्) शुद्ध (श्रुत्यवगम्यम्) उपनिषद्के द्वारा जानने योग्य (तथ्यम्) यथार्थ (परं ज्योतिः) परमप्रकाशरूप (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही [अस्मि] हूँ ॥ ८७० ॥

भावार्थ—मैं परमात्मासे अभिन्न, अखण्ड, सत्यज्ञान आनन्दस्वरूप, शुद्ध उपनिषद्के द्वारा जानने योग्य, परमसत्य और स्वयंप्रकाश ब्रह्म ही हूँ ॥ ८७० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवं सन्मात्रग्राहिण्या वृत्त्या तन्मात्रग्राहकैः ।
शब्दैः समर्पितं वस्तु भावयेन्निश्चलो यतिः ॥ ८७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एवम्) इसप्रकार (यतिः) संन्यासी (सन्मात्रग्राहिण्या) ब्रह्ममात्रको ग्रहण कराने वाली (वृत्त्या) चित्तकी वृत्तिके द्वारा (निश्चलः) स्थिर [सन्] होता हुआ (तन्मात्रग्राहकैः) उस ब्रह्ममात्रको ग्रहण कराने वाले (शब्दैः) शब्दोंके द्वारा (समर्पितम्) पाये हुए (वस्तु) पदार्थको (भावयेत्) चिन्तवन करे ॥ ८७१ ॥

भावार्थ संन्यासी पूर्वोक्त रीतिसे ब्रह्ममात्रको ग्रहण करानेवाली चित्तकी वृत्ति के द्वारा, ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाले शब्दोंसे पाये हुए सत्य पदार्थका स्थिरभावसे चिन्तवन करे ॥ ८७१ ॥

कामादिदृश्यप्रविलापपूर्वं, शुद्धोऽहमित्यादिकशब्दमिश्रः ।
दृश्येव निष्ठस्य य एष भावः,शब्दानुविद्धः कथितः समाधिः ७२

अन्वय और पदार्थ-(कामादिदृश्यप्रविलापपूर्वम्) काम आदि दृश्य पदार्थों का नाश करता हुआ (अहम्) मैं (शुद्धः) शुद्ध हूँ (इत्यादिकशब्दमिश्रः) इत्यादि शब्दोंसे युक्त (दृशि, एव) द्रष्टामें ही (निष्ठस्य) स्थित पुरुषका (यः) जो (एषः) यह (भावः) भाव है [सः] वह (शब्दानुविद्धः) शब्द के सम्बन्धवाला (समाधिः) समाधि (कथितः) कहा है ॥ ८७२ ॥

भावार्थ-काम आदि दृश्य पदार्थोंका लय करके ब्रह्मनिष्ठ हुए पुरुषकी 'मैं शुद्ध हूँ' इस प्रकारके शब्दसे युक्त जो अवस्था देखनेमें आती है, उसको विद्वान् पुरुष शब्दानुविद्ध समाधि कहते हैं ॥ ८७२ ॥

निर्विकल्पसमाधिः ।

दृश्यस्यापि च साक्षित्वात्समुल्लेखनमात्मनि ।
निवर्त्तकमनोऽवस्था निर्विकल्प इतीर्यते ॥ ८७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(दृश्यस्य, अपि) दृश्यका भी (साक्षित्वात्) साक्षी होनेसे (आत्मनि) आत्मामें (समुल्लेखनम्) कथन (निवर्त्तकमनोऽवस्था) निवृत्तिजनक मनकी दशा (निर्विकल्पः, इति) निर्विकल्प इस नामसे (ईर्यते) कहा जाता है ॥ ८७३ ॥

भावार्थ-देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि दृश्य पदार्थोंके साक्षिरूपसे आत्मामें दृढ़ प्रतिष्ठा और चित्तकी शान्त अवस्था निर्विकल्प समाधि कहलाती है ॥ ८७३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सविकल्पसमाधिं यो दीर्घकालं निरन्तरम् ।
संस्कारपूर्वकं कुर्यान्निर्विकल्पोऽस्य सिध्यति ॥ ८७४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (दीर्घकालम्) चिरकाल तक (निरन्तरम्) बराबर (संस्कारपूर्वकम्) संस्कारके साथ (सविकल्पसमाधिम्) सविकल्प समाधिको (कुर्यात्) करे (अस्य) इसका (निर्विकल्पः) निर्विकल्प समाधि (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ८७४ ॥

भावार्थ-जो चिरकालतक अविच्छिन्न रूपसे संस्कारके साथ सविकल्प समाधि को करते हैं, उनकी ही निर्विकल्प समाधि सिद्ध होती है ॥ ८७४ ॥

निर्विकल्पकसमाधिनिष्ठया तिष्ठतो भवति नित्यता ध्रुवम् ।
उद्भवाद्यपगतिर्निरर्गला नित्यनिश्चलनिरस्तनिर्वृतिः ॥ ८७५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निर्विकल्पकसमाधिनिष्ठया) निर्विकल्पक समाधिमें निष्ठाके द्वारा (तिष्ठतः) स्थित पुरुषकी (ध्रुवम्) निश्चय (नित्यता) नित्यता (उद्भवाद्यपगतिः) जन्म आदिका अभाव (निरर्गला) रुकावट रहित (नित्यनिश्चलनिरस्तनिर्वृतिः) नाशरहित दृढ़ असीम शान्ति (भवति) होती है ८७५

भावार्थ-जो निर्विकल्प समाधिकी पराकाष्ठाको पाजाता है उसका नित्य होजाना निश्चित है, उसका जन्म मरण आदि नहीं रहता वह और रुकावटरहित नित्य दृढ़ असीम शान्ति को पाता है ॥ ८७५ ॥

विद्वानहमिदमिति वा किञ्चिद् बाह्याभ्यान्तरवेदनशून्यः ।
स्वानन्दामृतसिन्धुनिमग्नस्तूष्णीमास्ते कश्चिदनन्यः ॥ ८७६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनन्यः) ब्रह्ममें एकताको पाया हुआ (कश्चित्) कोई (विद्वान्) तत्त्वज्ञानी (अहम्) मैं [सुखी, वा, दुःखी] सुखी या दुःखी हूँ (इदम्) यह (इति) इसप्रकार (वा) या (किञ्चिद्बाह्याभ्यन्तरवेदनशून्यः) किञ्चिन्मात्र भी भीतरी बाहरी दुःखके अनुभवसे शून्य (स्वानन्दामृतसिन्धुनिमग्नः) आत्मानन्दरूप अमृतके समुद्रमें गोते लगानेवाला [सन्] होता हुआ (तूष्णीम्) चुप (आस्ते) रहता है ॥ ८७६ ॥

भावार्थ-मैं सुखी या दुःखी हूँ अथवा यह वस्तु मुझे सुख या दुःख देनेवाली है ऐसा ज्ञान जिसको न भीतर है, न बाहर है वह तत्त्वज्ञानी पुरुष, आत्मानंदरूप अमृतके समुद्रमें गोता लगाता हुआ ब्रह्मसे अपनेको अभिन्न जानकर मौन रहता है

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

निर्विकल्पं परं ब्रह्म यत्तस्मिन्नेव निष्ठिताः ।
एते धन्या एव मुक्ता जीवन्तोऽपि बहिर्दृशाम् ॥ ८७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (परम्) सर्वोत्कृष्ट (ब्रह्म) ब्रह्म है) तस्मिन्, एव) उसमें ही (निष्ठिताः) निष्ठावाले(एते) ये (धन्याः) धन्य पुरुष (बहिर्दृशाम्) बाहरी दृष्टिवालोंमें (जीवन्तः, अपि) जीवित रहते हुए भी (मुक्ताः, एव) मुक्त ही हैं ॥ ८७७ ॥

भावार्थ-जिनकी निर्विकल्प परब्रह्ममें निष्ठा होगई है वे सब धन्य पुरुष बाह्य दृष्टि वालोंके सामने जीवित रहते हुए भी मुक्त ही हैं ॥ ८७७ ॥

बाह्यसमाधिप्रकारः ।

यथा समाधित्रितयं यत्नेन क्रियते हृदि ।
तथैव बाह्यदेशेऽपि कार्यं द्वैतनिवृत्तये ॥ ८७८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (हृदि) हृदयमें (यत्नेन) यत्नके साथ (समाधित्रितयम्) तीन समाधि (क्रियते) कीजाती हैं (तथा, एव) तैसे ही (द्वैतनिवृत्तये) द्वैतको दूर करनेके लिये (बाह्यदेशे, अपि) बाहरी देशमें भी(कार्यम्) करना चाहिये ॥ ८७८ ॥

भावार्थ-जैसे विचारवान् मनुष्य यत्नके साथ हृदयदेशमें दो प्रकारकी सविकल्प और एक निर्विकल्प इसप्रकार तीन समाधियोंका अनुष्ठान करते हैं, ऐसे ही द्वैतदृष्टिको दूर करनेके लिये देवप्रतिमा आदि बाहरी देशमें भी समाधिका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ८७८ ॥

तत्प्रकारं प्रवक्ष्यामि निशामय समासतः ।
अधिष्ठानं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ८७९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्प्रकारम्) उसकी रीतिको (समासतः) संक्षेपसे (प्रवक्ष्यामि) कहूँगा (निशामय) सुन (सच्चिदानन्दलक्षणम्) सत् चित् आनन्दस्वरूप (परं, ब्रह्म) परब्रह्म (अधिष्ठानम्) अधिष्ठान है ॥ ८७९ ॥

भावार्थ-उस समाधिकी रीतिको मैं संक्षेपमें कहता हूँ, सुनो-सत्-चित्-आनन्द स्वरूप परब्रह्म ही सबका अधिष्ठान है ॥ ८७९ ॥

तत्राध्यस्तमिदं भाति नानारूपात्मकं जगत् ।
सत्त्वं चित्त्वं तथाऽऽनन्दरूपं यद् ब्रह्मणस्त्रयम् ॥ ८८० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अध्यस्तजगतो रूपं नानारूपमिदं द्वयम् ।
एतानि सच्चिदानन्दनामरूपाणि पञ्च च ॥ ८८१ ॥
एकीकृत्योच्यते मूर्खैरिदं विश्वमिति भ्रमात् ।
शैत्यं श्वेतं रसं द्रव्यं तरङ्ग इति नाम च ॥ ८८२ ॥
एकीकृत्य तरङ्गोऽयमिति निर्दिश्यते यथा ।
आरोपिते नामरूपे उपेक्ष्य ब्रह्मणः सतः ॥ ८८३ ॥
स्वरूपमात्रग्रहणं समाधिर्बाह्य आदिमः ।
सच्चिदानन्दरूपस्य सकाशाद् ब्रह्मणो यतिः ॥८८४॥
नामरूपे पृथक् कृत्य ब्रह्मण्येव विलापयन् ।
अधिष्ठानं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥
यत् तदेवाहमित्येव निश्चितात्मा भवेद् ध्रुवम् ॥ ८८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्र) तिस अधिष्ठानमें (अध्यस्तम्) आरोपित (इदम्) यह (नामरूपात्मकम्) नाम और रूपस्वरूप (जगत्) संसार (भाति) भासता है (सत्त्वम्) सत्स्वरूप (चित्त्वम्) ज्ञानस्वरूप (तथा) तैसेही (आनन्दरूपम्) सुखस्वरूप (यत्) जो (ब्रह्मणः) परमात्माके (त्रयम्) तीनरूप हैं (अध्यस्तजगतः) आरोपित जगतके (इदम्) यह (नामरूपम्) नाम और रूप (द्वयम्) दो (रूपम्) प्रकार हैं (एतानि) इन (सच्चिदानन्दनामरूपाणि) सत्, चित्, आनन्द, नाम और रूप (पञ्च, च) पाँचोंको ही (एकीकृत्य) एकत्र मिलाकर (मूर्खैः) मूर्खोंके द्वारा (भ्रमात्) भ्रमसे (इदम्) यह (विश्वम्) जगत् है (इति) ऐसा (उच्यते) कहाजाता है (यथा) जैसे (शैत्यम्) शीतलता (श्वेतम्) सफेद (रसम्) रस (द्रव्यम्) द्रवता (तरङ्गः) तरङ्ग (इति) इस (नाम, च) नामको भी (एकीकृत्य) मिलाकर (अयम्) यह (तरङ्गः) तरङ्ग है (इति) ऐसा (निर्दिश्यते) कहाजाता है (सतः) सत्स्वरूप (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (आरोपिते) कल्पना कियेहुए (नामरूपे) नाम और रूपको (उपेक्ष्य) उपेक्षा करके (स्वरूपमात्रग्रहणम्) आत्मस्वरूपका ग्रहण (बाह्यः) बाहरी वस्तु से सम्बन्ध रखनेवाला) आदिमः) पहला (समाधिः) समाधि है (यतिः)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

संन्यासी (सच्चिदानन्दरूपस्य) सत् चित् आनन्दस्वरूप (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (सकाशात्) सकाशसे (नामरूपे) नाम और रूपको (पृथक् कृत्वा) अलग करके (ब्रह्मणि, एव) ब्रह्ममें ही (विलापयन्) विलीन करता हुआ (अधिष्ठानम्) भ्रमके आश्रय (सच्चिदानन्दम्) सत् चित् आनन्दस्वरूप (अद्वयम्) अद्वितीय (यत्) जो (परं ब्रह्म) परब्रह्म है (तत्, एव) वह ही (अहम्) मैं [अस्मि] हूँ (इति, एव) ऐसा ही (ध्रुवम्) अटल (निश्चयात्मा) दृढ़चित्त (भवेत्) होय ॥ ८८०-८८५ ॥

भावार्थ—उस ब्रह्मरूप अधिष्ठान (आधार) में यह नामरूपवाला जगत् भासता है सत्पना, चित्पना और आनन्दपना ये तीन ब्रह्मके रूप हैं। नाम और रूप ये दो अध्यस्त जगत्के रूप हैं। मूर्ख पुरुष सत्, चित्त आनन्दस्वरूप आनन्द नाम और रूप इन पाँचोंको मिलाकर भ्रममें पड़ेहुए इसको ही विश्व नामसे कहते हैं, जैसे शीतलता, स्वेतवर्ण, रस, पतलापन और तरङ्ग यह नाम इन सबको मिलाकर तरङ्ग नामसे बोलते हैं। ब्रह्मके कल्पित नामरूपकी उपेक्षा करके स्वरूपमात्रके बोधको बाहरी समाधि कहते हैं, यह पहली बाह्य समाधि है। संन्यासीको चाहिये कि—सत्-चित्-आनन्दस्वरूप ब्रह्मके समीपसे नाम और रूपको अलग करके उन को ब्रह्ममें ही विलीन करता हुआ सबका अधिष्ठानभूत, सच्चिदानन्द अद्वितीय मैं ही हूँ ऐसा अपने चित्तमें दृढ़ निश्चय करलेय ॥ ८८०-८८५ ॥

इयं भूर्न सन्नापि तोयं न तेजो,
न वायुर्न खं नापि तत्कार्यजातम् ।
यदेषामधिष्ठानभूतं विशुद्धं,
सदेकं परं सत्तदेवाहमस्मि ॥ ८८६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इदम्) यह (भूः) पृथिवी (सत्) ब्रह्म (न) नहीं है (तोयं, अपि) जल भी (न) नहीं है (तेजः तेज) (न) नहीं है (वायुः) वायु (न) नहीं है (खम्) आकाश (न) नहीं है (तत्कार्यजातं, अपि) इन पञ्चभूतोंका कार्यसमूह भी (न) नहीं है (यत्) जो (एषाम्) इनका (अधिष्ठानभूतम्) आधारभूत (विशुद्धम्) निर्मल (एकम्) एक (सत्) सत्स्वरूप (परम्) परब्रह्म है (तद्) वह (परं, सत्, एव) पर ब्रह्म ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥ ८८६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—यह दीखनेवाली पृथिवी ब्रह्म नहीं है, जल, तेज, वायु, आकाश और इन पृथिवी आदि पञ्चभूतोंके सकल कार्य भी ब्रह्म नहीं हैं, इन सबका आधारभूत विशुद्ध अद्वितीय जो परब्रह्म है, वही मैं हूँ, ॥ ८८६ ॥

न शब्दो न रूपं न च स्पर्शको वा तथा नो रसो नापि गन्धो न चान्यः।
यदेषामधिष्ठानभूतं विशुद्धं सदेकं परं सत्तदेवाहमस्मि ॥ ८८७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शब्दः) शब्द (न) नहीं है (रूपम्, च) रूप भी (न) नहीं है (वा) या (स्पर्शकः, अपि) स्पर्श भी (न) नहीं है (तथा) तैसे ही (रसः) रस (नो) नहीं है (गन्धः, अपि) गन्ध भी (न) नहीं है (अन्यः, च) और कोई भी (न) नहीं है (यत्) जो (एषाम्) इनका (अधिष्ठानभूतम्) आधारभूत (विशुद्धम्) केवल (सत्) नित्य (एकम्) अद्वितीय (परम्) उत्तम (सत्) ब्रह्म है (तत्) वह (सत्, एव) ब्रह्म ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥ ८८७ ॥

भावार्थ—शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गन्ध अथवा अन्य कोई द्रव्य भी ब्रह्म नहीं है, किन्तु इनका आधारभूत विशुद्ध, नित्य जो परब्रह्म है, मैं वही हूँ ॥ ८८७ ॥

न सद् द्रव्यजातं गुणा वा क्रिया वा न जातिर्विशेषो न चान्यः कदापि
यदेषामधिष्ठानभूतं विशुद्धं सदेकं परं सत्तदेवाहमस्मि ॥ ८८८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(द्रव्यजातम्) द्रव्योंका समूह (सत्) ब्रह्म (न) नहीं है (गुणाः) गुण (वा) या (क्रिया) क्रिया (न) नहीं है (जातिः) जाति (न) नहीं है (विशेषः) विशेष (च) और (अन्यः) अन्य (कदापि) कभी भी (न) नहीं है (यत्) जो (एषाम्) इनका (अधिष्ठानभूतम्) आधारभूत (विशुद्धम्) केवल (सत्) नित्य (एकम्) अद्वितीय (परम्) उत्तम (सत्) ब्रह्म है (तत्) वह (सत्, एव) ब्रह्म ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ८८८ ॥

भावार्थ—पृथिवी आदि नौ द्रव्य, रूप रस आदि चौबीस गुण, उत्क्षेपण आदि पाँच प्रकारकी क्रिया, घटत्व पटत्व आदि जाति तथा परमाणुओंका भेद बताने वाला विशेष पदार्थ अथवा और कोई पदार्थ भी ब्रह्म नहीं होसकता, किन्तु इन सब पदार्थोंका आधारभूत विशुद्ध अद्वितीय जो ब्रह्म है वही मैं हूँ ॥ ८८८ ॥

न देहो न चाक्षाणि न प्राणवायुर्मनो नापि बुद्धिर्न चित्तं ह्यहंधीः
यदेषामधिष्ठानभूतं विशुद्धं सदेकं परं सत्तदेवाहमस्मि ८८९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ—(देहः) शरीर (न) ब्रह्म नहीं है (अक्षाणि) इन्द्रियें (न) नहीं (च) और (प्राणवायुः) प्राणवायु (न) नहीं (मनः, अपि) मन भी (न) नहीं (बुद्धिः) बुद्धि (न) नहीं (चित्तम्) चित्त (अहंधीः) अहंबुद्धि [न] नहीं (हि) निश्चय (यत्) जो (एषाम्) इनका (अधिष्ठान-भूतम्) आधारभूत (विशुद्धम्) केवल (सत्) नित्य (एकम्) अद्वितीय (परम्) उत्तम (सत्) ब्रह्म है (तत्) वह (सत्, एव) ब्रह्म ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ॥

भावार्थ—देह, इन्द्रियें, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार आत्मा नहीं है किन्तु इनका अधिष्ठानस्वरूप, शुद्ध, अद्वितीय, सत्स्वरूप जो ब्रह्म है वह मैं ही हूँ ८८९

न देशो न कालो न दिग्वापि सत्स्या-
न्न वस्त्वन्तरं स्थूलसूक्ष्मादिरूपम् ।
यदेषामधिष्ठानभूतं विशुद्धं
सदेकं परं सत्तदेवाहमस्मि ॥ ८९० ॥

अन्वय और पदार्थ—(देशः) देश (सत्) ब्रह्म (न) नहीं है (कालः) काल (न) नहीं है (वा) या (दिक्, अपि) दिशा भी (न) नहीं है (स्थूलसूक्ष्मादिरूपम्) स्थूल सूक्ष्म आदि स्वरूप (वस्त्वन्तरम्) अन्य वस्तु (न) नहीं है (यत्) जो (एषाम्) इनका (अधिष्ठानभूतम्) आधारभूत (विशुद्धम्) केवल (एकम्) अद्वितीय (परम्) उत्तम (सत्) ब्रह्म है (तत्) वह (सत्, एव) ब्रह्म ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥ ८९० ॥

भावार्थ—देश, काल, दिशा या स्थूल तथा सूक्ष्मरूप और कोई वस्तु भी ब्रह्म नहीं है, किन्तु इन सबका आधारस्वरूप केवल, अद्वितीय, सत्स्वरूप जो परब्रह्म है, वही मैं हूँ ॥ ८९० ॥

एतद् दृश्यं नामरूपात्मकं योऽधिष्ठानं तद् ब्रह्म सत्यं सदेति ।
गच्छंस्तिष्ठन् वा शयानोऽपि नित्यं कुर्याद् विद्वान् बाह्यदृश्यानुविद्धं

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (विद्वान्) ज्ञानी (नित्यम्) सदा (गच्छन्) चलता हुआ (तिष्ठन्) बैठा हुआ (वा) या (शयानः, अपि) सोता हुआ भी (बाह्यदृश्यानुविद्धम्) बाहरी दृश्यके सम्बन्धवाले (एतत्) इस (नामरूपात्मकम्) नामरूपमय (दृश्यम्) जगत्को (कुर्यात्) करता है (तत्) प्रसिद्ध (अधिष्ठानम्) अधिष्ठान भूत (सत्) सत्स्वरूप (सत्यम्) यथार्थ (ब्रह्म) ब्रह्म (एति) पाता है ८९१

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-जो ज्ञानी पुरुष सदा चलतेमें, बैठतेमें या सोतेमें बाहरी वस्तुओंसे सम्बन्धवाले इस नामरूपात्मक दृश्य जगत्को अधिष्ठानभूत सत्य सत्स्वरूप ब्रह्मरूप देखता है, वह ब्रह्मस्वरूप मैं ही हूँ ॥ ८९१ ॥

अध्यस्तनामरूपादिप्रविलापेन निर्मलम् ।
अद्वैतं परमानन्दं ब्रह्मैवाऽस्मीति भावयेत् ॥ ८९२ ॥

अन्वय और पदार्थ-[यतिः] संन्यासी (अध्यस्तनामरूपादिप्रविलापेन) आरोपित नाम रूप आदिका विलीन करके (निर्मलम्) शुद्ध (अद्वैतम्) द्वैतहीन (परमानन्दम्) असीम सुखस्वरूप (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (भावयेत्) चिन्तवन करे ॥ ८९२ ॥

भावार्थ-साधक यति, नाम और रूप आदिको अधिष्ठानमें विलीन करके अद्वितीय आनन्दस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ, ऐसा चिन्तवन करे ॥ ८९२ ॥

निर्विकारं निराकारं निरञ्जनमनामयम् ।
आद्यन्तरहितं पूर्णं ब्रह्मैवाहं न संशयः ॥ ८९३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (निर्विकारम्) विकारशून्य (निराकारम्) आकाररहित (निरञ्जनम्) निर्लेप (अनामयम्) रोगरहित (आद्यन्तरहितम्) जन्म और मरणसे रहित (पूर्णम्) पूर्ण (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही [अस्मि] हूँ (संशयः) सन्देह (न) नहीं है ॥ ८९३ ॥

भावार्थ-मैं निर्विकार, निराकार, निर्लेप, नीरोग, उत्पत्ति और नाशशून्य पूर्ण ब्रह्म हूँ, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८९३ ॥

निष्कलङ्कं निरातंकं त्रिविधच्छेदवर्जितम् ।
आनन्दमक्षरं मुक्तं ब्रह्मैवास्मीति भावयेत् ॥ ८९४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निष्कलंकम्) शुद्ध (निरातङ्कम्) निर्भय (त्रिविधच्छेदवर्जितम्) तीन प्रकारके परिच्छेदसे शून्य (आनन्दम्) सुखरूप (अक्षरम्) अविनाशी (मुक्तम्) बन्धनशून्य (ब्रह्म,एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (भावयेत्) चिन्तवन करे ॥ ८९४ ॥

भावार्थ-मैं शुद्ध सद्भाव, निर्भय, देश काल और वस्तुकी सीमामें न बंधा हुआ आनन्दस्वरूप, अविनाशी और संसार बन्धनसे रहित ब्रह्म ही हूँ, ऐसी भावना करे ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

निर्विशेषं निराभासं नित्यमुक्तमविक्रियम् ।
प्रज्ञानैकरसं सत्यं ब्रह्मैवास्मीति भावयेत् ॥ ८६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निर्विशेषम्) विशेषशून्य (निराभासम्) आभासरहित (नित्यमुक्तम्) सदा मुक्त (अविक्रियम्) निर्विकार (प्रज्ञानैकरसम्) एकमात्र ज्ञानस्वरूप (नित्यम्) सत्यस्वरूप (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसी (भावयेत्) भावना करे ॥ ८६५ ॥

भावार्थ-मैं निर्विशेष, आभासरहित, नित्यमुक्त, निर्विकार, अद्वितीय, ज्ञानरूप, सत्यस्वरूप परब्रह्म ही हूँ, ऐसी भावना करे ॥ ८६५ ॥

शुद्धं बुद्धं तत्त्वसिद्धं परं प्रत्यगखण्डितम् ।
स्वप्रकाशं पराकाशं ब्रह्मैवास्मीति भावयेत् ॥ ८६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शुद्धम्) शुद्ध (बुद्धम्) बोधरूप (तत्त्वसिद्धम्) तत्त्वज्ञानसे निश्चित (परम्) श्रेष्ठ (प्रत्यक्) व्यापक (अखण्डितम्) पूर्ण (स्वप्रकाशम्) प्रकाशस्वभाव (पराकाशम्) परमाकाशरूप (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (भावयेत्) विचार करे ॥ ८६६ ॥

भावार्थ मैं शुद्ध, बुद्ध, तत्त्वज्ञानसे प्राप्य, उत्तम, व्यापक, अखण्ड, स्वप्रकाश महाकाशरूप परब्रह्म ही हूँ, ऐसा चिन्तवन करे ॥ ८६६ ॥

सुसूक्ष्ममस्तितामात्रं निर्विकल्पं महत्तमम् ।
केवलं परमाद्वैतं ब्रह्मैवास्मीति भावयेत् ॥ ८६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुसूक्ष्मम्) परमसूक्ष्म (अस्तितामात्रम्) सत्तामात्र (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (महत्तमम्) परम महान् (केवलम्) शुद्ध (परमाद्वैतम्) परम अद्वैतरूप (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (भावयेत्) चिन्तवन करे ॥ ८६७ ॥

भावार्थ-मैं परम सूक्ष्म, सत्तारूप, विकल्पशून्य, परम महान्, शुद्ध, द्वैतके लेशसे शून्य परब्रह्मस्वरूप हूँ, ऐसी भावना करे ॥ ८६७ ॥

इत्येवं निर्विकारादिशब्दमात्रसमर्पितम् ।
ध्यायतः केवलं वस्तु लक्ष्ये चित्तं प्रतिष्ठति ॥ ८६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इत्येवम्) इसप्रकार (निर्विकारादिशब्दमात्रसमर्पितम्) निर्विकार आदि शब्दमात्रसे जाने हुए (केवलम्) शुद्ध (वस्तु) पदार्थ

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

को (ध्यायतः) ध्यान करनेवालेका (लक्ष्ये) लक्ष्य पदार्थ ब्रह्ममें (चित्तम्) अन्तःकरण (प्रतिष्ठति) प्रतिष्ठित होता है ॥ ८९८ ॥

भावार्थ—ऊपर कही रीतिसे निर्विकार आदि शब्दोंसे जाने हुए शुद्ध ब्रह्म वस्तुका ध्यान करनेवालेका अन्तःकरण लक्ष्यमें जम जाता है ॥ ८९८ ॥

ब्रह्मानन्दरसावेशादेकीभूय तदात्मना ।
बुद्धेर्या निश्चलावस्था स समाधिरकल्पकः ॥ ८९९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ब्रह्मानन्दरसावेशात्) ब्रह्मसुखरूप रसमें आसक्ति होनेसे (तदात्मना) उस ब्रह्मरूपसे (एकीभूय) इकट्ठी होकर (बुद्धेः) बुद्धिकी (या) जो (निश्चलावस्था) स्थिर अवस्था है (सः) वह (अकल्पकः) निर्विकल्प (समाधिः) समाधि है ॥ ८९९ ॥

भावार्थ—ब्रह्मानन्दरूप रसका स्वाद पड़ जानेसे उस ब्रह्मके रूपमें एकाकार हुई बुद्धिकी निश्चल वृत्ति निर्विकल्प समाधि कहलाती है ॥ ८९९ ॥

उत्थाने वाप्यनुत्थानेऽप्यप्रमत्तो जितेन्द्रियः ।
समाधिषट्कं कुर्वीत सर्वदा प्रयतो यतिः ॥ ९०० ॥

अन्वय और पदार्थ—(अप्रमत्तः) सावधान (जितेन्द्रियः) इन्द्रियोंको जीतनेवाला (यतिः) संन्यासी (प्रयतः) प्रयत्न करता हुआ (उत्थाने) जाग्रत् में (वा) या (अनुत्थाने, अपि) शयनमें भी (सर्वदा) सदा (समाधिषट्कम्) छः प्रकारकी समाधिको (कुर्वीत) करे ॥ ९०० ॥

भावार्थ—संन्यासी सावधान जितेन्द्रिय और संयत होकर जागतेमें या सोतेमें छः प्रकारकी समाधिका अनुष्ठान करे ॥ ९०० ॥

विपरीतार्थधीर्यावन्न निःशेषं निवर्त्तते ।
स्वरूपस्फुरणं यावन्न प्रसिद्ध्यत्यनर्गलम् ॥
तावत्समाधिषट्केन नयेत कालं निरन्तरम् ॥ ९०१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यावत्) जब तक (विपरीतधीः) उल्टी बुद्धि (निःशेषम्) निर्मूलरूपसे (न) नहीं (निवर्त्तते) दूर होती है (यावत्) जबतक (स्वरूपस्फुरणम्) स्वरूपका प्रकाश (अनर्गलम्) रुकावटरहित (न) नहीं (प्रसिध्यति) सिद्ध होता है (तावत्) तब तक (समाधिषट्केन) छः प्रकारकी समाधिसे (निरन्तरम्) निरन्तर (कालम्) समयको (नयेत्) बितावे ॥ ९०१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—जब तक देह आदिमें आत्मज्ञानरूप विपरीत बुद्धि रहे और जबतक विना रुकावटका स्वरूपस्फुरण न होय तब तक छः प्रकारकी समाधि करता हुआ समयको वितावे ॥ ६०१ ॥ प्रमादत्याग:

न प्रमादोऽत्र कर्त्तव्यो विदुषा मोक्षमिच्छता।
प्रमादे जृम्भते माया सूर्यापाये तमो यथा ॥ ६०२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मोक्षम्) मोक्षको (इच्छता) चाहनेवाले (विदुषा) विद्वान्को (प्रमादः) प्रमाद (न) नहीं (कर्त्तव्यः) करना चाहिये (प्रमादे) प्रमाद होने पर (सूर्यापाये) सूर्यके अस्त होने पर (तमः, यथा) अन्धकारकी समान (माया) अविद्या (जृम्भते) फैलती है ॥ ६०२ ॥

भावार्थ—मुक्ति चाहनेवाले विद्वान्को समाधिके विषयमें प्रमाद नहीं करना चाहिये, क्योंकि—जैसे सूर्यके अस्त होजाने पर अन्धकार प्रकट होकर फैलजाता है, ऐसे ही प्रमाद(असावधानी)करनेसे अज्ञान प्रकट होकर घेर लेता है ॥ ६०२ ॥

स्वानुभूतिं परित्यज्य न तिष्ठन्ति क्षणं बुधाः।
स्वानुभूतौ प्रमादो यः स मृत्युर्न यमः सताम् ॥ ६०३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(बुधाः) विचारवान् (स्वानुभूतिम्) आत्माके अनुभवको (परित्यज्य) त्यागकर (क्षणम्) क्षण भर (न) नहीं (तिष्ठन्ति) स्थित होते हैं (स्वानुभूतौ) आत्माके अनुभवमें (यः) जो (प्रमादः) प्रमाद है (सः) वह (सताम्) सत्पुरुषोंका (मृत्युः) मृत्यु है (यमः) यम (न) नहीं ॥ ६०३ ॥

भावार्थ—विचारवान् पुरुष आत्माके अनुभवको छोड़कर क्षण भर भी नहीं रहते हैं, क्योंकि—सत्पुरुषोंका मृत्यु यम (काल) नहीं है, किन्तु आत्मानुभवमें प्रमाद करना ही उनकी मृत्यु है ॥ ६०३ ॥

अस्मिन् समाधौ कुरुते प्रयासं यस्तस्य नैवास्ति पुनर्विकल्पः।
सर्वात्मभावोऽप्यमुनैव सिद्ध्येत् सर्वात्मभावः खलु केवलत्वम् ६०४

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (अस्मिन्) इस (समाधौ) समाधिमें (प्रयासम्) यत्नको (कुरुते) करता है (तस्य) उसको (पुनः) फिर (विकल्पः) विरोधी अवस्था (न, एव) कदापि नहीं (अस्ति) है (सर्वात्मभावः, अपि) सकल वस्तुओंमें आत्मभाव भी (अमुना, एव) इस समाधिके द्वारा ही (सिद्ध्येत्) सिद्ध होता है (खलु) निश्चय (केवलत्वम्) शुद्धस्वरूपता (सर्वात्मभावः) सकल पदार्थोंमें आत्मभाव है ॥ ६०४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—जो समाधि साधनमें लगे रहते हैं उनको फिर सन्देह भरे विचार-रूप विकल्प नहीं उठते हैं, केवल इस समाधिसे ही सकल पदार्थोंमें आत्मदर्शन होता है, आत्माकी शुद्धस्वरूपता ही सर्वात्मभाव है॥ ६०४ ॥

सर्वात्मभावो विदुषो ब्रह्मविद्याफलं विदुः ।
जीवन्मुक्तस्य तस्यैव स्वानन्दानुभवः फलम् ॥ ६०५ ॥

अन्वय और पदार्थ—[पण्डिताः] पण्डित (विदुषः) विद्वान्का (सर्वात्मभावः) सर्वात्मभाव (ब्रह्मविद्याफलम्) ब्रह्मविद्याका फल है [इति] ऐसा (विदुः) जानते हैं (तस्य, एव) उस ही (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्तका (स्वानन्दानुभवः) आत्मसुखका अनुभव (फलम्) फल है ॥ ६०५ ॥

भावार्थ—विद्वानोंने मुमुक्षुके सर्वात्मभावको ब्रह्मज्ञानका फल माना है और जीवन्मुक्त पुरुषका फल आत्मानन्दका अनुभव है ॥ ६०५ ॥

योऽहंममेत्याद्यसदात्मगाहको ग्रन्थिर्लयं याति स वासनामयः ।
समाधिना नश्यति कर्मबन्धो ब्रह्मात्मबोध प्रतिबन्ध इष्यते ६०६

अन्वय और पदार्थ (यः) जो (अहंममेत्याद्यसदात्मगाहकः) मैं मेरा इत्यादि अनात्मपदार्थमें आत्मबुद्धि करानेवाली (वासनामयः) संस्कारयुक्त (ग्रंथिः) गाँठ है (सः) वह (लयम्) लयको (याति) प्राप्त होजाती है (समाधिना) समाधिके द्वारा (कर्मबन्धः) कर्मबन्धन (नश्यति) नष्ट होजाता है (अप्रतिबन्धः) अबाध (ब्रह्मात्मबोधः) ब्रह्मसे अभिन्न आत्मज्ञान (इष्यते) इच्छा किया जाता है ॥ ६०६ ॥

भावार्थ—मैं मेरा इत्यादि अनात्मपदार्थोंमें आत्मबुद्धिरूप जो वासनामयी गाँठ है वह समाधिके द्वारा विलीन होजाती है, समाधिसे कर्मका बन्धन नष्ट होजाता है और प्रतिबन्ध शून्य ब्रह्म जीवात्माका अभेदज्ञान उत्पन्न होजाता है॥ ६०६ ॥

एष निष्कण्टकः पन्था मुक्तेर्ब्रह्मात्मना स्थितेः ।
शुद्धात्मनां मुमुक्षूणां यत्सदेकत्वदर्शनम् ॥ ६०७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(शुद्धात्मनाम्) निर्मल चित्तवाले (मुमुक्षूणाम्) मुमुक्षुओंका (यत्) जो (सदेकत्वदर्शनम्) सत्स्वरूप ब्रह्मके साथ अभेदभावका दर्शन है (एषः) यह (ब्रह्मात्मना) ब्रह्मस्वरूपसे (स्थितेः) स्थितिरूप (मुक्तेः) मुक्तिका (निष्कण्टकः)बाधारहित (पन्थाः) मार्ग है ॥ ६०७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—शुद्धचित्त मुक्तिके अभिलापी पुरुषोंका सत्स्वरूपसे ब्रह्म और जीवकी एकताका दर्शन ही मूलस्वरूपसे स्थितिरूप मुक्तिका निष्कण्टक मार्ग (उपाय) है ॥ ६०७ ॥

तस्मात् त्वञ्चाप्यप्रमत्तः समाधीन् कृत्वा ग्रन्थिं साधु निर्दाह्य युक्तः।
नित्यं ब्रह्मानन्दपीयूषसिन्धौ मज्जन् क्रीडन् मोदमानो रमस्व ६०८

अन्वय और पदार्थ—(तस्मात्) तिससे (त्वं, च, अपि) तू भी (अप्रमत्तः) सावधान [सन्] होता हुआ (समधीन्) समाधियोंको (कृत्वा) करके (साधु) भले प्रकार (ग्रंथिम्) गाँठको (निर्दाह्य) जला कर (युक्तः) योगी [सन्] होता हुआ (नित्यम्) सदा (ब्रह्मानन्दपीयूपसिन्धौ) ब्रह्मसुखरूप अमृतके सिन्धुमें (मज्जन्) गोता लगाता हुआ (क्रीडन्) क्रीडा करता हुआ (मोदमानः) आनन्दित होता हुआ (रमस्व) रमण कर ॥ ६०८ ॥

भावार्थ इसलिये तू भी सावधान होकर छः प्रकारकी समाधियोंका अनुष्ठान करता हुआ उत्तम प्रकारसे काम क्रोध आदिकी गाँठको जला डाल और योगयुक्त होकर सदा ब्रह्मानन्दरूप अमृतसागरमें गोता लगाता हुआ क्रीडा कर और आनन्द पाता हुआ रमण कर ॥ ६०८ ॥

योगः।

निर्विकल्पसमाधिर्यो वृत्तिर्नैश्चल्यलक्षणा।
तमेव योग इत्याहुर्योगशास्त्रार्थकोविदाः ॥ ६०९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (निर्विकल्पसमाधिः) विकल्पशून्य समाधि है (नैश्चल्यलक्षणा) स्थिरतारूप (वृत्तिः) वृत्ति है (योगशास्त्रार्थकोविदाः) योगशास्त्रके तात्पर्यको जाननेवाले (तं, एव) उसको ही (योगः, इति) योग इस नामसे (आहुः) कहते हैं ॥ ६०९ ॥

भावार्थ—चित्तवृत्तिकी स्थिरतारूप जो निर्विकल्प समाधि है, योगशास्त्रके ज्ञाता पण्डित इसको ही योग कहते हैं ॥ ६०९ ॥

अष्टावङ्गानि

अष्टावङ्गानि योगस्य यमो नियम आसनम्।
प्राणायामस्तथा प्रत्याहारश्चापि च धारणा ॥ ६१० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ध्यानं समाधिरित्येव निगदन्ति मनीषिणः ।
सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः ॥ ६११ ॥
यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ।
सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः ॥ ६१२ ॥
नियमो हि परानन्दो नियमात् क्रियते बुधैः ।
सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम् ॥ ६१३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यमः) यम (नियमः) नियम (आसनम्) आसन (प्राणायामः) प्राणायाम (तथा) तैसे ही (प्रत्याहारः) प्रत्याहार (अपि, च) और (धारणा) धारणा (ध्यानम्) ध्यान (समाधिः) समाधि (इति, एव) ये ही (योगस्य) योगके (अष्टौ) आठ (अङ्गानि) अङ्ग (मनीषिणः) विद्वान् (निगदन्ति) कहते हैं (सर्वम्) सब (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (विज्ञानात्) जाननेसे (इन्द्रियसंयमः) इन्द्रियोंका वशमें होना (अयम्) यह (यमः, इति) यम इस नाम वाला (संप्रोक्तः) कहा है [असौ] यह (मुहुर्मुहुः) बार २ (अभ्यसनीयः) अभ्यास करने योग्य है (सजातीयप्रवाहः) समानजाति प्रत्ययकी अविच्छिन्न धारा (च) और (विजातीयतिरस्कृतिः)विरुद्ध जातिवाले प्रत्ययका त्याग (हि) निश्चय (नियमः) नियम [कथ्यते] कहलाता है(बुधैः) विद्वानों करके (नियमात्) नियमसे (परानन्दः) परम आनन्द (क्रियते किया जाता है (यस्मिन्) जिसमें (सुखेन, एव) अनायास ही (अजस्रम्) निरन्तर (ब्रह्मचिन्तनम्) ब्रह्मका चिन्तवन (भवेत्) होता है ॥ ६१०-६१३ ॥

भावार्थ—विद्वानोंने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योगके अङ्ग कहे हैं, ये सब वस्तु ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं, ऐसे ज्ञानसे इन्द्रियसमूहका संयम होता है और यह यम कहलाता है, इस यम का बार २ अभ्यास करना चाहिये। विजातीय प्रत्ययप्रवाहको त्यागकर सजातीय विज्ञानधाराका नाम नियम है, विद्वान् पुरुष इस नियमका अनुष्ठान करके परम-सुखका अनुभव करते हैं, जिसमें अनायास ही निरन्तर ब्रह्मचिन्तवन हुआ करता है ॥

आसनं तद्विजानीयाद्यादितरसुखनाशनम् ।
चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् ॥ ६१४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(चित्तादिसर्वभावेषु) चित्त आदि सकल पदार्थोंमें (ब्रह्मत्वेन, एव) ब्रह्मरूपसे ही (भावनात्) भावना करनेके कारण [यत्] जो (इतरसुखनाशनम्) बाहरी सुखका नाश है (तत्) उसको (आसनम्) आसन (विजानीयात्) जानें ॥ ६१४ ॥

भावार्थ-चित्त अहंकार आदि सकल पदार्थोंको ब्रह्मरूपसे चिन्तवन करके जो बाहरी सुखका नाश होता है उसको आसन कहते हैं ॥ ६१४ ॥

निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ।
निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरणः ॥ ६१५ ॥

अन्वय और पदार्थ-[यः] जो (सर्ववृत्तीनाम्)सकल वृत्तियोंका (निरोधः) रोकना है (सः) वह (प्राणायामः) प्राणायाम (उच्यते) कहाजाता है (प्रपञ्चस्य) प्रपञ्चका (निषेधनम्) निषेध करना (रेचकाख्यः) रेचक नामका (समीरणः) वायु है ॥ ६१५ ॥

भावार्थ-चित्तकी सकल वृत्तियोंके निरोधका नाम प्राणायाम है, प्रपञ्चके ब्रह्म में लयका नाम रेचक वायु है ॥ ६१५ ॥

ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरीरितः ।
ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः ॥ ६१६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) ऐसी (या) जो (वृत्तिः) चित्तकी अवस्था है [सः] वह (पूरकः) पूरक नामका (वायुः) वायु (ईरितः) कहा है (ततः) तदनन्तर (तद्वृत्तिनैश्चल्यम्) ब्रह्म-वृत्तिकी निश्चलता [तथा] तैसे ही (प्राणसंयमः)प्राणवायुकी स्थिरता(कुम्भकः) कुम्भक [उच्यते] कहलाता है ॥ ६१६ ॥

भावार्थ-मैं ही ब्रह्म हूँ, ऐसी चित्तवृत्तिको पूरक वायु कहते हैं और मैं ही ब्रह्म हूँ, इस वृत्तिकी स्थिरता तथा प्राणवायुके संयमको कुम्भक कहते हैं ॥ ६१६ ॥

अयञ्चापि प्रबुद्धानामज्ञानां प्राणपीडनम् ।
विषयेष्वात्मतां त्यक्त्वा मनसाश्चिति मज्जनम् ॥ ६१७ ॥
प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुमुक्षुभिः ।
यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् ॥ ६१८ ॥
यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् ।
मनसो धारणञ्चैव धारणा सा परामता ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः ॥ ६१९ ॥
ध्यानशब्देन विख्याता परमानन्ददायिनी ।
निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ॥ ६२० ॥
वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिर्ध्यानसंज्ञकः ।
समाधौ क्रियमाणे तु विघ्ना आयान्ति वै बलात् ॥ ६२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्, अपि) यह कुम्भक ही (प्रबुद्धानाम्) ज्ञानियों का (च) और (अज्ञानाम्) ज्ञानहीनोंका (प्राणपीडनम्) प्राणवायुका निरोधक है (विषयेषु) विषयोंमें (आत्मताम्) आत्मभावनाको (त्यक्त्वा) त्यागकर (मनसः) मनका (चिति) ब्रह्ममें (मज्जनम्) स्थापन करना (सः) वह (प्रत्याहारः) प्रत्यहार (विज्ञेयः) जानना (मुमुक्षुभिः) मुमुक्षुओंको (अभ्यसनीयः) अभ्यास करने योग्य है (यत्र यत्र) जहाँ जहाँ (मनः) मन (याति) जाता है (तत्र) तहाँ (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (दर्शनात्) दर्शन होनेसे (मनसः) मनका (धारणं,च, एव) कहीं स्थापन करना ही (सा) वह (परा) श्रेष्ठ (धारणा) धारणा (मता) मानी गई है (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (अस्मि) हूँ (इति) इस (सद्वृत्त्या) श्रेष्ठ वृत्तिके द्वारा (निरालम्बतया) निराधार भावसे (स्थितिः) स्थित होना (ध्यानशब्देन) ध्यान शब्दसे (विख्याता) प्रसिद्ध है (परमानन्ददायिनी) परम आनन्दकी देनेवाली है (निर्विकारतया) निर्विकार-भावसे (ब्रह्माकारतया) ब्रह्मंकारतारूप (वृत्त्या) वृत्तिके द्वारा (पुनः) फिर (सम्यक्) उत्तमतासे (वृत्तिविस्मरणम्) उस वृत्तिको भूल जाना (ध्यानसंज्ञकः) ध्यान नामक (समाधिः) समाधि [उच्यते] कहा जाता है (समाधौ, क्रियमाणे) समाधिके किये जाने पर (हि) निश्चय (विघ्नाः) विघ्न (बलात्) बलात्कारसे (आयान्ति) आते हैं ॥ ६१७-६२१ ॥

भावार्थ-यह कुम्भक ही ज्ञानी और अज्ञानियोंके प्राणवायुको रोकता है; शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें आत्मबुद्धिको त्यागकर मनके चैतन्यमें स्थापनको प्रत्याहार कहते हैं, मुमुक्षुओंको इस प्रत्याहारका अभ्यास करना चाहिये। जिस २ स्थानमें मन जाय तहाँ तहाँ ही ब्रह्मके साक्षात्कारके हेतु मनके स्थापनको उत्तम धारणा कहते हैं। मैं ही ब्रह्म हूँ, ऐसी श्रेष्ठ वृत्तिके द्वारा मनकी निराश्रय स्थितिको ध्यान कहते हैं, यह ध्यान परम आनन्द देता है। विकाररहित ब्रह्माकार वृत्तिके द्वारा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विषयाकार वृत्तिको पूर्णतदा भूल जानेको समाधि कहते हैं, इसको ध्यान (ध्यान की पराकाष्ठा) कहते हैं समाधिके होनेपर अनेकों विघ्न बलात्कारसे आजाते हैं ॥

अनुसन्धानराहित्यमालस्यं भोगलालसम्।
भयः तमश्च विक्षेपस्तेजः स्पन्दश्च शून्यता ॥ ९२२ ॥

अन्वय और पदार्थ (अनुसन्धानराहित्यम्) ब्रह्मका अन्वेषण न करना (आलस्यम्) आलस्य (भोगलालसम्) भोगकी इच्छा (भयम्) भय(च) और (तमः) अज्ञान (विक्षेपः) चित्तकी चञ्चलता (तेजःस्पन्दः) उत्तापके द्वारा स्पन्दन (च) और (शून्यता) शून्यत्व [एते, योगविघ्नाः, सन्ति] ये योगके विघ्न हैं ॥ ९२२ ॥

भावार्थ—ब्रह्मके विषयमें अनुसन्धान न करना, आलस्य, भोगकी वासना भय, अज्ञान, चित्तकी चञ्चलतारूप विक्षेप, तेजसे पसीनेका टपकने लगना और शून्यता ये कितने ही योगके विघ्न हैं ॥ ९२२ ॥

एवं यद्विघ्नबाहुल्यं त्याज्यं तद् ब्रह्मविज्जनैः।
विघ्नानेतान् परित्यज्य प्रमादरहितो वशी ॥
समाधिनिष्ठया ब्रह्म साक्षाद्भवितुमर्हसि ॥ ९२३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एवम्) इसप्रकार (यत्) जो (विघ्नबाहुल्यम्) विघ्नोंकी अधिकता है (तत्) उसको (ब्रह्मविज्जनैः) ब्रह्मवेत्ता पुरुषों को (त्याज्यम्) त्याग देना चाहिये [त्वम्] तू (एतान्) इन (विघ्नान्) विघ्नोंको (परित्यज्य) त्यागकर (प्रमादरहितः) प्रमादसे शून्य (वशी) जितेन्द्रिय[सन्] होता हुआ (समाधिनिष्ठया) समाधिकी नि के द्वारा (साक्षात्, ब्रह्म) साक्षात् ब्रह्म (भवितुम्) होनेको (अर्हसि) योग्य है ॥ ९२३ ॥

भावार्थ—ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंका कर्त्तव्य है, कि-वे ऐसे अनेकों विघ्नोंसे न घबड़ावें, किन्तु इनके पार होजायँ. हे शिष्य ! तू इन सब विघ्नोंको त्यागकर प्रमाद शून्य और जितेन्द्रिय रहता हुआ समाधिकी उन्नति करके साक्षात् ब्रह्म होसकता है

शिष्यस्य स्वानुभवः ।

इति गुरुवचनात् श्रुतिप्रमाणात् परमवगम्य स्वतत्त्वमात्मबुद्ध्या ।
प्रशमितकरणः समाहितात्मा क्वचिदचलाकृतिरात्मनिष्ठितोऽभूत् ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-[शिष्यः] शिष्य (इति) इसप्रकार (श्रुतिप्रमाणात्) वेदके प्रमाणसे (गुरुवचनात्) गुरुके उपदेशसे (आत्मबुद्ध्या) अपनी बुद्धिके द्वारा (परम्) श्रेष्ठ (स्वतत्त्वम्) आत्मतत्त्वको (अवगम्य) जानकर (प्रशमित-करणः) शान्त हुई हैं इन्द्रियें जिसकी ऐसा (क्वचित्) कदाचित् (अचलाकृतिः) स्थिर आकार वाला [च] और (आत्मनिष्ठितः) आत्मपरायण (समाहितात्मा) सावधानचित्त(अभूत्) हुआ ॥ ६२४ ॥

भावार्थ-शिष्य इस प्रकार वेदके प्रमाणसे, गुरुके उपदेशसे और अपने उत्पन्न हुए ज्ञानसे उत्तम आत्मतत्त्वको जानकर शान्त इन्द्रिय, आत्मपरायण और कदाचित् समाहितचित्त होगया ॥ ६२४ ॥

बहुकालं समाध्याय स्वस्वरूपे च मानसम् ।
उत्थाय परमानन्दाद् गुरुमेत्य पुनर्मुदा ॥ ६२५ ॥
प्रमाणपूर्वकं धीमान् सगद्गदमुवाच ह ।
नमो नमस्ते गुरवे नित्यानन्दस्वरूपिणे ॥ ६२६ ॥
मुक्तसङ्गाय शान्ताय त्यक्ताहन्त्वाय ते नमः ।
दयाधाम्ने नमो भूम्ने महिम्नः पारमस्य ते ॥
नैवास्ति यत्कटाक्षेण ब्रह्मैवाऽभवमद्वयम् ॥ ६२७ ॥

अन्वय और पदार्थ- धीमान्) बुद्धिमान् शिष्य (बहुकालम्) चिर-काल तक (स्वस्वरूपे) आत्मस्वरूपमें (मानसम्) मनको (समाधाय) समाहित करके (च) और (परमानन्दात्) परम सुखसे (उत्थाय) उठकर (मुदा) हर्ष के साथ (पुनः) फिर (गुरुम्,एत्य) गुरुके पास आकर (प्रणामपूर्वकम्) प्रणाम करके (सगद्गदम्) रोमाञ्चित होकर (उवाच,ह) बोला (नित्यानन्द-स्वरूपिणे) नित्य सुखस्वरूप (गुरवे) गुरु (ते) आपको (नमोनमः) बारर प्रणाम है (मुक्तसङ्गाय)_ सङ्गशून्य (शान्ताय) शान्त (त्यक्ताहन्त्वाय) अह-ङ्काररहित (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः) प्रणाम है (दयाधाम्ने) दयाके धाम (भूम्ने) ब्रह्मरूपके अर्थ (नमः) प्रणाम है (ते) तुम्हारे (अस्य) इस (महि-म्नः) प्रभावकी (पारम्) सीमा (न,एव) कदापि नहीं (अस्ति) है (यत्-कटाक्षेण) जिनके कटाक्षसे (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म,एव) ब्रह्म ही (अभवम्) होगया ॥ ६२५-६२७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-बुद्धिमान् पुरुष चिरकाल तक आत्मस्वरूपमें मनको समाहित करके उठने पर परम आनन्दको पानेके कारण हर्षमें भराहुआ गुरुदेवके पास जाकर प्रणाम करे और गद्गद कण्ठ होकर उनसे कहे, कि-हे गुरो ! नित्यानन्दस्वरूप आपको प्रणाम है। असङ्ग, शान्त और अहङ्कारशून्य आपको प्रणाम है। दयाके मन्दिर ब्रह्मस्वरूप आपको प्रणाम है, जिन गुरुदेवके कृपाकटाक्षसे मैं अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप हुआ हूँ ऐसे आपकी महिमाका पार नहीं पाता॥ ६२५-६२७ ॥

किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम् ।
यन्मया पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा ॥ ६२८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(किम्) क्या (करोमि) करूँ (क्व) कहाँ (गच्छामि) जाऊँ (किम्) क्या (गृह्णामि) ग्रहण करूँ (किम्) क्या (त्यजामि) छोड़ूँ (यत्) क्योंकि (मया) मेरे द्वारा (विश्वम्) विश्व (महाकल्पाम्बुना, यथा) महाप्रलयके जल करके जैसे अथवा बड़ी भारी सङ्कल्परूप जलकी धारा करके जैसे (पूरितम्) पूर्ण होरहा है ॥ ६२८ ॥

भावार्थ-मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? क्या लूँ ? क्या छोड़ूँ ? क्योंकि-इस विश्वमें मैं ऐसे व्याप रहा हूँ, जैसे इसमें सङ्कल्परूप जलकी धारा भरी रहती है अथवा जैसे प्रलयकालमें बड़ाभारी जलका प्रवाह भरजाता है ॥ ६२८ ॥

मयि सुखबोधपयोधौ महति ब्रह्माण्डबुद्बुदसहस्रम्
मायामयेन मरुता भूत्वा भूत्वा पुनस्तिरोहन्ति ॥ ६२९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(महति) महान् (सुखबोधपयोधौ) आनन्दानुभवके समुद्र (मयि) मुझमें (ब्रह्माण्डबुद्बुदसहस्रम्) ब्रह्माण्डरूप सहस्रों बुदबुद (मायामयेन) मायामय (मरुता) पवनके द्वारा (भूत्वा, भूत्वा) हो होकर (पुनः) फिर (तिरोहन्ति) अन्तर्धान होजाते हैं ॥ ६२९ ॥

भावार्थ-महान् आनन्दानुभवके सागररूप मुझ (आत्मा) में ब्रह्माण्डरूप सहस्रों जलके बुलबुले मायामयी हवासे वार २ उत्पन्न होकर विलीन होजाते हैं ॥६२९॥

नित्यानन्दस्वरूपोऽहमात्माऽहं त्वदनुग्रहात् ।
पूर्णोऽहमनवद्योऽहं केवलोऽहञ्च सद्गुरो ॥६३०॥

अन्वय और पदार्थ —(सद्गुरो) हे श्रेष्ठ गुरुदेव ! (अहम्) मैं (त्वदनुग्रहात्) आपकी कृपासे (नित्यानन्दस्वरूपः) सदासुखस्वरूप हूँ (अहम्) मैं

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(आत्मा) ब्रह्मस्वरूप हूँ (अहम्) मैं (पूर्णः) परिपूर्ण हूँ (अहम्) मैं (अनवद्यः) प्रशंसाके योग्य हूँ (अहम्) मैं (केवलः) शुद्ध हूँ ॥ ६३० ॥

भावार्थ-हे गुरुदेव ! मैं आपकी कृपासे नित्य मुक्तस्वरूप, आनन्दस्वरूप, पूर्ण, अनिन्दनीय और शुद्धस्वभाव हूँ ॥ ६३० ॥

अकर्ताहमभोक्ताहमविकारोऽहमक्रियः ।
आनन्दघन एवाहमसङ्गोऽहं सदाशिवः ॥ ६३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (अकर्ता) कर्तापनसे रहित हूँ (अहम्) मैं (अभोक्ता) भोक्तापनसे रहित हूँ (अहम) मैं (अविकारः) निर्विकार हूँ [अहम्] मैं (अक्रियः) क्रियारहित हूँ (अहम्) मैं (आनन्दघनः, एव) आनन्दकी मूर्ति ही हूँ (अहम्) मैं (असङ्गः) सङ्गरहित (सदाशिवः) सदा कल्याणमय हूँ ॥ ६३१ ॥

भावार्थ-मैं अकर्ता, अभोक्ता, निर्विकार, निष्क्रिय, मुक्तस्वरूप, असङ्ग और सदा कल्याणमय हूँ ॥ ६३१ ॥

त्वत्कटाक्षवरचान्द्रचन्द्रिकापातधूतभवतापजश्रमः ।
प्राप्तवानहमखण्डवैभवानन्दमात्मपदमक्षयं क्षणात् ॥ ६३२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्वत्कटाक्षवरचान्द्रचन्द्रिकापातधूतभवतापजश्रमः) आपके कटाक्षरूप श्रेष्ठ चन्द्रमा की चाँदनी पड़नेसे जिसका संसारके तापसे उत्पन्न हुआ श्रम दूर होगया है ऐसा (अहम्) मैं (क्षणात्) क्षणभरमें (अखण्डवैभवानन्दम्) जिसमें पूर्ण ऐश्वर्यका आनन्द है ऐसे (अक्षयम्) अविनाशी (आत्मपदम्) आत्मस्वरूपको (प्राप्तवान्) पागया ॥ ६३२ ॥

भावार्थ हे गुरो ! आपके कृपाकटाक्षरूप श्रेष्ठ चन्द्रमाकी चाँदनीके पड़नेसे संसारके संतापसे उत्पन्न हुई मेरी सब भ्रान्ति (व्याकुलता) जाती रही और मैंने क्षणभरमें ही पूर्ण ऐश्वर्यके आनंदसे भरे अविनाशी आत्मपदको पालिया ॥

छायया स्पृष्टमुष्णम्वा शीतं वा दुष्टु सुष्टु वा ।
न स्पृशत्येव यत्किञ्चित् पुरुषं तद्विलक्षणम् ॥ ६३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(छायया) छायाके द्वारा (स्पृष्टम्) छुआ हुआ (उष्णम्) गरम (वा) या (शीतम्) ठण्डा (वा) या (दुष्टु) बुरा (सुष्टु) अच्छा (यत्किञ्चित्) जो कुछ है [तत्] वह (तद्विलक्षणम्) उससे विलक्षण (पुरुषम्) पुरुषको (न) नहीं (स्पृशति) स्पर्श करता है ॥ ६३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ–जिसको छायाने छुआ है, जो गरम है या ठंडा है, जो बुरा है या भला है ऐसा कुछ भी, इन शीत आदिसे विपरीत धर्मवाले पुरुषको स्पर्श नहीं कर सकता ॥ ६३३ ॥

न साक्षिणं साक्ष्यधर्मा न स्पृशन्ति विलक्षणम् ।
अविकारमुदासीनं गृहधर्माः प्रदीपवत् ॥ ६३४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(गृहधर्माः) घरके धर्म (प्रदीपवत्) दीपकको जैसे (साक्ष्यधर्माः) जो साक्षीके धर्म नहीं हैं वे (साक्षिणम्) साक्षीको (न) नहीं (स्पृशन्ति) स्पर्श करते हैं (अविकारम्) विकार शून्य (उदासीनम्) उदासीन [आत्मानम्] आत्माको (न) नहीं [स्पृशन्ति] स्पर्श करते हैं ॥ ६३४॥

भावार्थ–जैसे स्थानके धर्म दीपकको स्पर्श नहीं करते तैसे ही जो साक्षीके धर्म नहीं हैं वह विलक्षण विकाररहित उदासीन साक्षीको स्पर्श नहीं कर सकते ।६३४।

रवेर्यथा कर्मणि साक्षिभावो वह्नेर्यथा वायसि दाहकत्वम् ।
रज्जोर्यथारोपितवस्तुसङ्गस्तथैव कूटस्थचिदात्मनो मे ॥ ६३५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (रवेः) सूर्यका (कर्मणि) कर्ममें (साक्षिभावः) साक्षीपन है (वा) या (यथा) जैसे (अयसि) लोहेमें (वह्नेः) अग्निका (दाहकत्वम्) दाहकपना है (यथा) जैसे (रज्जोः) रस्सीको (आरोपितवस्तुसङ्गः) आरोपित वस्तुका सम्बन्ध है (तथा, एव) तैसे (कूटस्थचिदात्मनः) कूटस्थ चैतन्यस्वरूप (मे) मुझे [सङ्गः] सङ्ग है ॥ ६३५ ॥

भावार्थ–जैसे सूर्य प्राणियोंके कर्मोंका साक्षीमात्र है, जैसे लोहेमें अग्निकी दाहकता है, अथवा जैसे रस्सी सर्प आदि कल्पित वस्तुका सङ्ग है, कूटस्थ चैतन्यस्वरूप मेरा भी संसारसे ऐसा ही सम्बन्ध है ॥ ६३५ ॥

इत्युक्त्वा स गुरुं स्तुत्वा प्रश्रयेण कृतानतिः ।
मुमुक्षोरुपकाराय प्रष्टव्यांशमपृच्छत ॥ ६३६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इति) इसप्रकार (उक्त्वा) कहकर (गुरुं,स्तुत्वा) गुरुकी स्तुति करके (प्रश्रयेण) विनयके साथ (कृतानतिः) किया है प्रणाम जिसने ऐसा (सः) वह (मुमुक्षोः) मुक्ति चाहनेवालेके (उपकाराय) उपकार के लिये (प्रष्टव्यांशम्) पूछने योग्य भागको (अपृच्छत) पूछता हुआ ६३६

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—शिष्यने इसप्रकार कहकर और गुरुकी स्तुति करके विनयके साथ नम्र होकर मुमुक्षुके उपकारके लिये पूछने योग्य बात पूछी ॥ ६३६ ॥

जीवन्मुक्तस्य भगवन्ननुभूतेश्च लक्षणम् ।
विदेहमुक्तस्य च मे कृपया ब्रूहि तत्त्वतः ॥ ६३७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भगवन्) हे ऐश्वर्यसम्पन्न ! (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्तके (च) और (अनुभूतेः) अनुभवके (च) और (विदेहमुक्तस्य) विदेहमुक्त के (लक्षणम्) लक्षणको (कृपया) कृपा करके (मे) मेरे अर्थ (ब्रूहि) कहिये ॥ ६३७ ॥

भावार्थ-हे भगवन् ! मेरे ऊपर कृपा करके जीवन्मुक्तका अनुभवका और विदेह मुक्तका लक्षण कहिये ॥ ६३७ ॥

ज्ञानभूमिकालक्षणम् ।

श्रीगुरुरुवाच

वक्ष्ये तुभ्यं ज्ञानभूमिकाया लक्षणमादितः ।
ज्ञाते यस्मिंस्त्वया सर्वं ज्ञातं स्यात्पृष्टमद्य यत् ॥ ६३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रीगुरुः) श्रीगुरु (उवाच) बोले (तुभ्यम्) तेरे अर्थ (ज्ञानभूमिकायाः) ज्ञानभूमिकाके (लक्षणम्) लक्षणको (आदितः) आदिसे (वक्ष्ये) कहूँगा (यस्मिन्, ज्ञाते) जिसको जान लेने पर (त्वया) तुझ करके (अद्य) आज (यत्) जो (पृष्टम्) पूछागया [तत्] वह (सर्वम्) सब (ज्ञातम्) जाना हुआ (स्यात्) होगा ॥ ६३८ ॥

भावार्थ—गुरुने उत्तर दिया, कि-मैं तुझसे ज्ञानकी भूमिकाका लक्षण प्रारम्भसे कहूँगा, जिसको जान लेने पर तूने आज जो प्रश्न किया है वह सब समझ में आजायगा ॥ ६३८ ॥

ज्ञानभूमिः शुभेच्छा स्यात्प्रथमा समुदीरिता ।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसी ॥ ६३९ ॥
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका ।
पदार्थभावना षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥ ६४० ॥

अन्वय और पदार्थ—(शुभेच्छा) शुभेच्छा नाम वाली (ज्ञानभूमिः) ज्ञानकी भूमिका (प्रथमा) पहली (स्यात्) होगी (द्वितीया) दूसरी (विचारणा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विचारणा नामवाली (तृतीया, तु) तीसरी तो (तनुमानसी) तनुमानसी नाम वाली (समुदीरिता) कही है (चतुर्थी) चौथी (सत्त्वापत्तिः) सत्त्वपत्ति नाम वाली (स्यात्) होगी (ततः) तदनन्तर [पञ्चमी] पाँचवीं (असंसक्ति-नामिका) असंसक्ति नामवाली (षष्ठी) छठी (पदार्थाभावना) पदार्थाभावना नामवाली है (सप्तमी) सातवीं (तुर्यगा) तुर्यगा नामवाली (स्मृता) कही है ॥

भावार्थ—पहिली ज्ञानभूमि शुभेच्छा नामकी है, दूसरी विचारणा नामसे और तीसरी तनुमानसी नामसे कही है, चौथीका नाम सत्त्वापत्ति, पाँचवी असंसक्ति छठी पदार्थाभावना और सातवीं तुर्यगा भूमिका कहलाती है ॥६३६-६४०॥

शुभेच्छा

स्थितः किं मूढ एवास्मि प्रेक्ष्योऽहं शास्त्रसज्जनैः।
वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छा चोच्यते बुधैः ॥ ६४१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(शास्त्रसज्जनैः) शास्त्रके विषयमें सज्जनता रखनेवाले पुरुषों करके (प्रेक्ष्यः) दृष्टि रखने योग्य (अहम्) मैं (किम्) क्या (मूढः, एव) मूढ़ ही (स्थितः) विद्यमान हूँ (इति) इसप्रकार (वैराग्यपूर्वम्) वैराग्य के साथ (इच्छा) वासना (बुधैः) पण्डितों करके (शुभेच्छा) शुभेच्छा नाम-वाली (उच्यते) कही जाती है ॥ ६४१ ॥

भावार्थ—मेरे ऊपर शास्त्रके जाननेवाले सज्जन पुरुष दृष्टि रखते हैं तो भी क्या मैं मूर्ख ही हूँ वैराग्यके साथ ऐसी इच्छाको पण्डित शुभेच्छा कहते हैं ६४१

विचारणा

शास्त्रसज्जनसम्पर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम्।
सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा ॥ ६४२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(शास्त्रसज्जनसम्पर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम्) वेदादि शास्त्र, साधु पुरुषोंके साथ सम्बन्ध और वैराग्यके अभ्यासके साथ (या) जो (सदाचारप्रवृत्तिः) सदाचारकी इच्छा है (सा) वह (विचारणा) विचारणा (प्रोच्यते) कहीजाती है ॥ ६४२ ॥

भावार्थ—वेदादिका अभ्यास करनेवाले साधुपुरुषोंके साथ सहवास और वैराग्यके साथ जो सदाचार करनेमें प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, पण्डितोंने उसको विचारणा कहा है ॥ ६४२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तनुमानसी

विचारणाशुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेषु रक्तता ।
यत्र सा तनुतामेति प्रोच्यते तनुमानसी ॥ ६४३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जिस अवस्थामें (विचारणाशुभेच्छाभ्याम्) विचारणा और शुभेच्छाके द्वारा (इन्द्रियार्थेषु) इन्द्रियोंके विषयोंमें (रक्तता) अनुराग (क्षीणताम्) क्षीणताको (एति) प्राप्त होता है (सा) वह (तनुमानसी) तनमानसी (प्रोच्यते) कही जाती है ॥ ६४३ ॥

भावार्थ--जिस अवस्थामें विचारणा और शुभेच्छा नामवाली भूमिकाओं के द्वारा इन्द्रियोंके विषयोंमें अनुराग क्षीण होता है वह तनुमानसी भूमिका कहलाती है ॥ ६४३ ॥

सत्त्वापत्तिः ।

भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेऽर्थविरतेर्वशात् ।
सत्त्वात्मनि स्थिते शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहृता ॥ ६४४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भूमिकात्रितयाभ्यासात्) तीनों भूमिकाओंके अभ्यास से (चित्ते) चित्तके (अर्थविरतेः, वशात्) पदार्थोंमें वैराग्यके कारणसे (शुद्धे) शुद्ध (सत्त्वात्मनि, स्थिते) सत्त्व स्वरूप आत्मामें स्थित होनेपर (सत्त्वापत्तिः) सत्त्वापत्ति (उदाहृता) कही है ॥ ६४४ ॥

भावार्थ-शुभेच्छा, विचारणा और तनुमानसी इन तीनों भूमिकाओंके अभ्यास से विषय वासना दूर होकर चित्तके शुद्ध और सत्त्वगुण प्रधान आत्मामें जमजाने पर सत्त्वापत्ति नाम वाली पाँचवीं भूमिका कहलाती है ॥ ६४४ ॥

संसक्तिनामिका

दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसर्गफला तु या ।
रूढसत्त्वचमत्कारा प्रोक्ता संसक्तिनामिका ॥ ६४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(दशाचतुष्टयाभ्यासात्) ऊपर कही चारों भूमिकाओं के अभ्याससे (या तु) जो तो (असंसर्गफला) असंसर्गफलवाली (रूढसत्त्वचमत्कारा) जिसमें सत्त्वगुणका चमत्कार चढ़गया है [सा] वह (संसक्तिनामिका) संसक्ति नामवाली (प्रोक्ता) कही है ॥ ६४५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—ऊपर कही हुई चारों भूमिकाओंका अभ्यास होजानेसे किसीके साथ भी संसर्ग (मिलना जुलना) करनेकी इच्छा नहीं होती और सत्त्वगुणका चमत्कार दीखने लगता है, ऐसी अवस्था संसक्तिनामिका पाँचवीं भूमिका कहलाती है ॥ ६४५ ॥

पदार्थभावना

भूमिकापञ्चकाभ्यासात्स्वात्मारामतया भृशम् ।
आभ्यन्तराणां बाह्यानां पदार्थानामभावनात् ॥ ६४६ ॥
परप्रयुक्तेन चिरप्रयत्नेनावबोधनम् ।
पदार्थभावना नाम षष्ठी भवति भूमिका ॥ ६४७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भूमिकापञ्चकाभ्यासात्) पूर्वोक्त पाँच भूमिकाओंके अभ्याससे (स्वात्मारामतया) आत्मामें अनुरागके कारण (आभ्यन्तराणाम्) भीतर के (बाह्यानाम्) बाहरके (पदार्थानाम्) पदार्थोंके (भृशम्) अत्यन्त (अभावनात्) चिन्तवन न करने से (परप्रयुक्तेन) दूसरेके प्रेरणा करेहुए (चिरप्रयत्नेन) चिरकालके प्रयत्नसे (अवबोधनम्) ज्ञान [सः] वह (पदार्थभावना नाम) पदार्थभावना नामवाली (षष्ठी) छठी (भूमिका) भूमिका (भवति) होती है ॥ ६४६–६४७ ॥

भावार्थ—ऊपर कही हुई पाँच भूमिकाओंके अभ्याससे आत्मामें अनुराग जमः जाता है तब प्रायः भीतरके या बाहरके किसी पदार्थका भी चिन्तवन नहीं रहता है, उस समय दूसरेकी प्रेरणासे बडेभारी यत्नसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह पदार्थभावना नामकी छठी भूमिका है ॥ ६४६–६४७ ॥

तुर्यगा

षड्भूमिकाचिराभ्यासाद्भेदस्यानुपलम्भनात् ।
यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः ॥ ६४८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(षड्भूमिकाचिराभ्यासात्) छहों भूमिकाओंका चिरकाल तक अभ्यास करनेसे (भेदस्य) द्वैतकी (अनुपलम्भनात्) प्रतीति न होने से (यत्) जो (स्वभावैकनिष्ठत्वम्) स्वभावकी एकरूपमें स्थिति [भवति] होती है (सा) वह (तुर्यगा) तुर्यगा नामकी (गतिः) भूमिका (ज्ञेया) जाननी ॥ ६४८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-ऊपर कही छहों ज्ञानभूमिकाओंका चिरकाल पर्यन्त अभ्यास करनेसे द्वैत भान नहीं रहता है, ऐसी एकभावसे स्थितिको पण्डित पुरुष तुर्यगा नामक सातवीं ज्ञानभूमिका कहते हैं ॥ ६४८ ॥

जाग्रज्जाग्रत्

इदं ममेति सर्वेषु दृश्यभावेष्वभावना ।
जाग्रज्जाग्रदिति प्राहुर्महान्तो ब्रह्मवित्तमाः ॥ ६४९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(महान्तः) महानुभाव (ब्रह्मवित्तमाः) ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुरुष (सर्वेषु) सब (दृश्यभावेषु) दृश्य पदार्थोंमें (इदम्) यह (मम) मेरा है (इति) इसप्रकार (अभावना) चिन्तवन न करना (जाग्रज्जाग्रत्) जाग्रज्जाग्रत् है (इति) ऐसा (प्राहुः) कहते हैं ॥ ६४९ ॥

भावार्थ-सकल दीखनेवाले पदार्थों में यह वस्तु मेरी है, ऐसी भावना न करनेको श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता जाग्रज्जाग्रत् कहते हैं ॥ ६४९ ॥

जाग्रत्स्वप्नः

विदित्वा सच्चिदानन्दे मयि दृश्यपरम्पराम् ।
नामरूपपरित्यागो जाग्रत्स्वप्नः समीर्यते ॥ ६५० ॥

अन्वय और पदार्थ-(सच्चिदानन्दे) सत् चित् आनन्दस्वरूप (मयि) मुझमें (दृश्यपरम्पराम्) दृश्य परम्पराको (विदित्वा) जानकर (नामरूपपरित्यागः) नामरूपको त्यागदेना (जाग्रत्स्वप्नः) जाग्रत्स्वप्न(समीर्यते)कहाजाता है॥

भावार्थ-सत्-चित् आनन्दरूप मुझमें (आत्मामें) दृश्यसमूहको अध्यस्त (कल्पित) जानकर नाम और रूपके त्याग देनेका नाम जाग्रत्स्वप्न है ॥६५०॥

जाग्रत्सुषुप्तिः

परिपूर्णचिदाकाशे मयि बोधात्मतां विना ।
न किञ्चिदन्यदस्तीति जाग्रत्सुषुप्तिः समीर्यते ॥ ६५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(परिपूर्णचिदाकाशे) परिपूर्ण चैतन्यरूप आकाशमें (मयि) मुझमें (बोधात्मतां, विना) ज्ञानस्वरूपताके सिवा (अन्यत्) और (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (अस्ति) है (इति) यह (जाग्रत्सुषुप्तिः) जाग्रत्सुषुप्ति (समीर्यते) कहीजाती है ॥ ६५० ॥

भावार्थ-परिपूर्ण चिदाकाशरूप मुझमें (आत्मामें) ज्ञानस्वरूपताके सिवाय और कुछ नहीं है, इस भावनाका नाम जाग्रत्सुषुप्ति है ॥ ६५१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वप्नजाग्रत्

मूलाज्ञानविनाशने कारणाभासचेष्टितैः ।
बन्धो न मेऽस्ति स्वल्पोऽपि स्वप्नजाग्रदितीर्यते ॥ ९५२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मूलाज्ञानविनाशने) मूल अज्ञानके नाश करके (कारणाभ्यासचेष्टितैः) कारणसा प्रतीत होनेवालेकी चेष्टाओंके द्वारा (मे) मेरा (अतिस्वल्पः, अपि) बहुत थोडा भी (बन्धः) बन्धन (न) नहीं है(इति) यह (स्वप्नजाग्रत्) स्वप्नजाग्रत् (ईर्यते) कहलाता है ॥ ९५२ ॥

भावार्थ—मूल अज्ञानका विनाश होजाने करके कारणाभासकी चेष्टाओंसे मेरा अणुमात्र भी बन्धन नहीं है, ऐसे ज्ञानको स्वप्नजाग्रत् नामसे कहते हैं ॥ ९५२ ॥

स्वप्नस्वप्नः

कारणाज्ञाननाशाद्यद् द्रष्टृदर्शनदृश्यता ।
न कार्यमस्ति तद्ज्ञानं स्वप्नस्वप्नः समीर्यते ॥ ९५३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(कारणाज्ञाननाशवत्) कारणरूप अज्ञानके नाशसे (द्रष्टृदर्शनदृश्यता) दर्शनकर्त्ता, दर्शनक्रिया और दर्शनकी विषयता (कार्यम्) कार्य (न) नहीं (अस्ति) है [इति] इसप्रकारका (यत्) जो (ज्ञानम्) ज्ञान है (तत्) वह (स्वप्नस्वप्नः) स्वप्नस्वप्न (समीर्यते) कहाजाता है ॥ ९५३ ॥

भावार्थ—कारण स्वरूप मूल अविद्याका नाश होजाने पर द्रष्टा, दर्शन और दृश्यपनारूप कार्य नहीं रहता है ऐसा ज्ञान ' स्वप्नस्वप्न ' कहलाता है ॥९५३॥

स्वप्नसुप्तिः

अतिसूक्ष्मविमर्शेन स्वधीवृत्तिरचञ्चला ।
विलीयते यथा बोधे स्वप्नसुप्तिरितीर्यते ॥ ९५४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यदा) जब (अतिसूक्ष्मविमर्शेन) अत्यन्तसूक्ष्म विचार के द्वारा (अचञ्चला) स्थिर (स्वधीवृत्तिः) अपनी चित्तवृत्ति (बोधे) ज्ञानमें (विलीयते) विलीन होजाती है [तदा] तब (स्वप्नसुप्तिः) स्वप्नसुप्ति (इति) ऐसा (ईर्यते) कही जाती है ॥ ९५४ ॥

भावार्थ—अत्यन्त सूक्ष्म विचारके द्वारा जब अपने चित्तकी स्थिर वृत्ति ज्ञानमें विलीन होजाती है तो उस अवस्थाको स्वप्नसुप्ति कहते हैं ॥ ९५४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सुप्तिजाग्रत्-

चिन्मयाकारमतयो धीवृत्तिप्रसरैर्गतः ।
आनन्दानुभवो विद्वन् सुप्तिजाग्रदितीर्यते ॥ ६५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विद्वन्) हे ज्ञानी [यस्य] जिसकी (चिन्मयाकार-मतयः) चिन्मयाकार चित्तवृत्तियें हैं (धीवृत्तिप्रसरैः) बुद्धिवृत्तिके विस्तारोंसे (गतः) प्राप्त (आनन्दानुभवः) आनन्दका अनुभव है (सुप्तिजाग्रत्) सुप्तिजाग्रत् (इति) ऐसा (ईर्यते) कहाता है ॥ ६५५ ॥

भावार्थ-हे विद्वन् ! जिसकी बुद्धिकी वृत्तियोंने चिन्मय आकार धारण कर लिया है और जो अपनी बुद्धि वृत्तिके द्वारा केवल आनन्दका अनुभव करता है उसकी अवस्था 'सुप्तिजाग्रत्' कहलाती है ॥ ६५५ ॥

सुप्तिस्वप्नः ।

वृत्तौ चिरानुभूतान्तरानन्दानुभवस्थितौ ।
समात्मतां यो यात्येष सुप्तिस्वप्न इतीर्यते ॥ ६५६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चिरानुभूतान्तरानन्दानुभवस्थितौ) चिरकाल पर्यंत अनुभव किये हुए आत्मानन्दके स्वादसे जिसमें स्थिरता प्राप्त हुई ऐसी (वृत्तौ) वृत्तिमें (यः) जो पुरुष (समात्मताम्) आत्मरूपताको (एति) प्राप्त होता है (एषः) यह (सुप्तिस्वप्नः) सुप्तिस्वप्न (इति) ऐसा (ईर्यते) कहाजाता है ॥

भावार्थ-चिरकाल पर्यन्त आत्मानन्दके अनुभवसे जिसके चित्तकी वृत्तिमें स्थिरता आजाती है और जो आत्मस्वरूपमें स्थिर रहता है, उसकी इस अवस्था को 'सुप्तिस्वप्न' कहते हैं ॥ ६५६ ॥

सुप्तिसुप्तिः

दृश्यधीवृत्तिरेतस्य केवलीभावभावना ।
परं बोधैकतावाप्तिः सुप्तिसुप्तिरितीर्यते ॥ ६५७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतस्य) इसकी [या] जो (दृश्यधीवृत्तिः) दृश्य-विषयक चित्तकी वृत्ति (केवलीभावभावना) विशुद्धताका चिन्तवन (परम्) केवल (बोधैकतावाप्तिः) ज्ञानके साथ अभेदभावकी प्राप्ति [अस्ति] है [सा] वह (सुप्तिसुप्तिः) सुप्तिसुप्ति (इति) ऐसा (ईर्यते) कही जाती है ॥ ६५७ ॥

भावार्थ-इस पुरुषकी दृश्यके विषयकी बुद्धिवृत्ति आत्माकी विशुद्धताका चिन्तवन करके केवल ज्ञानके साथ अभिन्न होजाती है ऐसी अवस्थाको 'सुप्ति-सुप्ति' कहते हैं ॥ ६५७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तुर्याख्या

परब्रह्मवदाभाति निर्विकारैकरूपिणी ।
सर्वावस्थासु धारैका तुर्याख्या परिकीर्त्तिता ॥ ६५८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सर्वावस्थासु) सकल अवस्थाओंमें (परब्रह्मवत्) परब्रह्मकी समान (निर्विकारैकरूपिणी) निर्विकारस्वरूप (एका) एक (धारा) धारा (आभाति) भासती है (तुर्याख्या) तुर्या नामवाली (परिकीर्त्तिता) कही है ॥

भावार्थ—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति सब अवस्थाओंमें परब्रह्मकी समान निर्विकार एकरूपा जो ज्ञानधारा भासती है वह 'तुर्याख्या' कहलाती है ॥६५८॥

इत्यवस्थासमुल्लासं विमृशन् मुच्यते सुखी ।
शुभेच्छात्रितयं भूमिभेदाभेदयुतं स्मृतम् ॥ ६५९ ॥

अन्वय और पदार्थ—[योगी] योगी (इति) इसप्रकार (अवस्थासमुल्लासम्) अवस्थाओंके विकाशको (विमृशन्) विचारता हुआ (सुखी) सुखयुक्त [भवति] होता है (मुच्यते) मुक्त होजाता है (शुभेच्छात्रितयम्) शुभेच्छा आदि तीन (भूमिभेदाभेदयुतम्) अवस्थाके भेद अभेदसे युक्त (स्मृतम्) कही हैं ॥६५९॥

भावार्थ—योगी इसप्रकार इन ज्ञानकी अवस्थाओंके विकाशका विचार करके सुख पाता हुआ मुक्त होजाता है, शुभेच्छा, विचारणा और तनुमानसी ये तीन भूमिकायें भेद अभेदके साथ कही हैं ॥६५९॥

यथावद्भेदबुद्ध्येदं जाग्रज्जाग्रदितीर्यते ।
अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते च प्रशमं गते ॥ ६६० ॥
पश्यन्ति स्वप्नवल्लोकं तुर्यभूमिसुयोगतः ।
पञ्चमीं भूमिमारुह्य सुषुप्तिपदनामिकाम् ॥ ६६१ ॥
शान्ताशेषविशेषांशास्तिष्ठदद्वैतमात्रके ।
अन्तर्मुखतया नित्यं षष्ठीं भूमिमुपाश्रितः ॥ ६६२ ॥
परिशान्ततया गाढनिद्रालुरिव लक्ष्यते ।
कुर्वन्नभ्यासमेतस्यां भूम्यां सम्यग् विवासनः ॥६६३॥
तुर्यावस्थां सप्तभूमिं क्रमादाप्नोति योगिराट् ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (यथावत्) यथायोग्य (भेदबुद्ध्या) भेदज्ञानके द्वारा (जाग्रज्जाग्रत्) जाग्रज्जात् (इति) यह (ईर्यते) कहाजाता है [चित्ते] चित्तके (अद्वैते) अद्वितीय ब्रह्ममें (स्थैर्यम्) स्थिरताको (आयाति) पाजाने पर (च) और (द्वैते) भेदके (प्रशमं, गते) शान्त होजाने पर (तुर्यभूमिसुयोगतः) तुरीय अवस्थाके सुयोग से (लोकम्) लोकको (स्वप्नवत्) स्वप्नकी समान (पश्यन्ति) देखते हैं (सुषुप्तिपदनामिकाम्) सुषुप्ति अवस्था नामवाली (पञ्चमीम्) पाँचवीं (भूमिम्) भूमिकाको (आरुह्य) चढ़कर (शान्ताशेषविशेषांशः) शान्त होगये हैं सम्पूर्ण विशेष भाग जिसके ऐसा (अद्वैतमात्रके) केवल अद्वैत ब्रह्ममें (तिष्ठेत्) स्थित होय (अन्तर्मुखतया) चित्तके अन्तर्मुखी होनेके कारण (नित्यम्) निरन्तर (षष्ठीम्) छठी (भूमिम्) भूमिकाको (उपाश्रितः) आश्रय किये हुए (परिशान्ततया) सकल विपर्योंसे निवृत्त होजानेके कारण (गाढनिद्रालुः, इव) गाढ निद्रामें पड़ा हुआसा (लक्ष्यते) दीखता है (योगिराट्) योगिराज (एतस्याम्) इस (भूम्याम्) भूमिकामें (अभ्यासम्) अभ्यासको (कुर्वन्) करता हुआ (सम्यक्) भले प्रकारसे (विवासनः) वासनाशून्य [भूत्वा] होकर (क्रमात्) क्रमसे (तुर्यावस्थाम्) तुरीयावस्थारूप (सप्तभूमिम्) सप्तमी भूमिकाको (आप्नोति) प्राप्त होता है ॥ ६६०-६६३ ॥

भावार्थ—ये शुभेच्छा आदि तीन भूमियें भेदबुद्धिके द्वारा ग्रहण कीजाने पर इनको पण्डित पुरुष 'जाग्रज्जाग्रत्' कहते हैं। अद्वैत ब्रह्ममें चित्तकी स्थिरता हो जाने पर और द्वैतके शान्त होजाने पर योगी पुरुष चतुर्थ भूमिकाके सुयोगसे लोकको स्वप्नकी समान मिथ्या देखते हैं। योगी सुषुप्तिपद नामवाली पाँचवीं भूमिकामें चढ़ कर पञ्चभूत आदि सब प्रकारके विशेषोंसे हटता हुआ शुद्ध अद्वैतमें स्थित होता है। निरन्तर चित्तके अन्तर्मुख रहनेके कारण छठी भूमिकाका आश्रय लेने वाला योगिराज निवृत्तिके कारण गाढ निद्रामें सोये हुएकी समान प्रतीत होता है। योगिराज सातवीं भूमिकामें अभ्यास करके सम्यक् प्रकारसे वासनाशून्य होता हुआ क्रमसे तुर्याख्या कहिये मोक्ष नाम वाली सातवीं भूमिकामें पहुँचजाता है ६०-६३

विदेहमुक्तः।

विदेहमुक्तिरेवात्र तुर्यातीतदशोच्यते ॥ ६६४ ॥
यत्र नासन्न सच्चापि नाऽहं नाऽप्यनहंकृतिः।
केवलं क्षीणमनन आस्तेऽद्वैतेऽतिनिर्भयः॥ ६६५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यकुम्भ इवाम्बरे ।
अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे ॥ ६६६ ॥
यथास्थितमिदं सर्वं व्यवहारवतोऽपि च ।
अस्तं गतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६६७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अत्र) यहाँ (विदेहमुक्तिः, एव) विदेहमुक्ति ही (तुर्यातीतदशा) तुर्यातीतदशा (उच्यते) कहलाती है (यत्र) जिस अवस्थामें [योगी] योगी (असत्, न) असत् नहीं (च) और (सत्, अपि) सत् भी (न) नहीं (अहम्) अहङ्कार (न) नहीं (अनहंकृतिः, अपि) अनहङ्कार भी (न) नहीं (केवलम्) केवल (अद्वैते) अद्वितीय ब्रह्ममें (अतिनिर्भयः) परम निर्भय (क्षीणमननः) नष्ट होगया है मनन जिसका ऐसा (आस्ते) रहता है (अम्बरे) आकाशमें (शून्यकुम्भ इव) खाली घड़ेकी समान (अन्तःशून्यः) भीतरसे खाली (बहिःशून्यः) बाहरसे खाली (अर्णवे) समुद्रमें (पूर्णकुम्भ इव) भरे हुए घड़े की समान (अन्तःपूर्णः) भीतरसे भरा हुआ (बहिःपूर्णः) बाहरसे भरा हुआ (यथास्थितम्) जैसे स्थित है तैसे ही (इदम्) यह (सर्वम्) सब (व्यवहारवतः, अपि) व्यवहारवालेका भी (स्थितम्) स्थित (व्योम) आकाश (अस्तम्) अस्तको (प्राप्तम्) प्राप्तहोगया है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ६६४ ॥ ६६७ ॥

भावार्थ—विदेहमुक्ति तुरीया दशा कहलाती है जिस अवस्थामें योगी न सत् होता है न असत् होता है, न अहङ्कार होता है और न अनहङ्कार होता है, किन्तु मनन क्षीण होजानेके कारण परमनिर्भय होकर शुद्ध ब्रह्ममें स्थित होता है, वह आकाशमें धरे हुए खाली घड़की समान भीतरसे भी खाली और बाहरसे भी खाली तथा स द्रमें पड़े हुए घड़ेकी समान भीतरसे भी भरा हुआ और बाहरसे भी भरा हुआ यथास्थित इन सब व्यवहारोंको करके भी जिसके लिये आकाश भी अस्तंगत होता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ६६४-६६७ ॥

नोदेति नास्तमायाति सुखदुःखे मनःप्रभा ।
यथा प्राप्तस्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६६८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यस्य) जिसके (सुखदुःखे) सुखदुःखरूप (मनःप्रभा) मनका धर्म (न) नहीं (उदेति) उदित होता है (न) नहीं (अस्तं, आयाति)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अस्तको प्राप्त होता है [यस्य] जिसकी (यथाप्राप्तस्थितिः) जैसी आजाय तैसी ही स्थिति [भवति] होती है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहलाता है ॥ ९६८ ॥

भावार्थ-जिसके मनकी सुखदुःखरूप प्रभा (किरण) न उदित होती है और न अस्त होती है, जो जैसी आजाय तैसी ही दशामें रहता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है ।

यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते ।
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९६९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सुषुप्तिस्थः) सुषुप्तिमें स्थित (यः) जो (जागर्त्ति) जागता है (यस्य) जिसकी (जाग्रत्) जाग्रत् अवस्था (न) नहीं (विद्यते) है (यस्य) जिसका (बोधः) ज्ञान (निर्वासनः) वासनाशून्य है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ९६९ ॥

भावार्थ-जो सुषुप्ति अवस्थामें रहकर भी जागता रहता है और जिसकी जाग्रत् अवस्था नहीं है तथा जिसका ज्ञान वासनाशून्य है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥

रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि ।
योऽन्तर्व्योमवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (रागद्वेषभयादीनाम्) राग द्वेष भय आदि के (अनुरूपम्) अनुकूल (चरन्, अपि) आचरण करता हुआ भी (अन्तः) भीतर (व्योमवत) आकाशकी समान (अत्यच्छः) अत्यन्त निर्मल है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ९७० ॥

भावार्थ-जो राग द्वेष और भय आदिके अनुकूल (मानो राग द्वेष आदिके वशमें है इसप्रकार) व्यवहार करता हुआ भी अन्तःकरणमें आकाशकी समान परमनिर्मल है वह जीवित अवस्थामें ही मुक्त कहलाता है ॥ ९७० ॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कुर्वतः) करतेहुए (वा) या (अकुर्वतः, अपि) न करते हुए भी (यस्य) जिसका (अहंकृतः) अहंकारका किया हुआ (भावः) भाव (न) नहीं है (यस्य) जिसकी (बुद्धिः) बुद्धि (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होती है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहलाता है ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ-कार्य करनेमें या न करनेमें न जिसको अहंकार है और न जिसकी बुद्धि लिप्त होती है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ९७१ ॥

यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि शीतलः ।
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (समस्तार्थजालेषु) सकल विषयजालोंमें (व्यवहारी, अपि) व्यवहार करनेवाला होकर भी (शीतलः) स्थिर है (परार्थेषु, इव) पराये प्रयोजनोंको साधनेमें जैसे (पूर्णात्मा) पूर्ण चित्त लगा रहा है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ९७२ ॥

भावार्थ—जो सकल विषयजालमें व्यवहार करके भी ऐसे स्थिर भावसे स्थित रहता है मानो पराये प्रयोजन सिद्ध करनेमें तत्पर है वह जीवन्मुक्त कहलाता है

द्वैतवर्जितचिन्मात्रे पदे परमपावने ।
अक्षुब्धश्चित्तविश्रान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-[यः] जो (द्वैतवर्जितचिन्मात्रे) द्वैतरहित चैतन्यस्वरूप (परमपावने) परमपवित्र (पदे) पदमें (अक्षुब्धचित्तविश्रान्तः) निर्मल चित्तसे विश्राम पारहा है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥

भावार्थ-जो चित्तकी स्थिरताके कारण, परमपवित्र, प्राप्त करने योग्य द्वैतरहित चैतन्यस्वरूप ब्रह्ममें विश्राम पारहा है वह जीवन्मुक्त कहाजाता है ॥९७३॥

इदं जगदयं सोऽयं दृश्यजातमवास्तवम् ।
यस्य चित्ते न स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इदम्) यह (जगत्) भूतल (अयम्) यह पदार्थ (सः) वह (अयम्) यह (अवास्तवम्) मिथ्या (दृश्यजातम्) दृश्य पदार्थोंका समूह (यस्य) जिसके (चित्ते) चित्तमें (न) नहीं (स्फुरति) फुरता है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ९७४ ॥

भावार्थ-यह जगत्, वह वस्तु, यह वह पदार्थ-इसप्रकारका मिथ्या दृश्य पदार्थोंका समूह जिसके चित्तमें नहीं फुरता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ९७४

चिदात्माऽहं परात्माऽहं निर्गुणोऽहं परात्परः ।
आत्ममात्रेण यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (चिदात्मा) चैतन्यस्वरूप हूँ (अहम्) मैं (परात्मा) परमात्मस्वरूप हूँ (अहम्) मैं (निर्गुणः) गुणशून्य (परात्परः) श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ हूँ [इति] इसप्रकार (यः) जो (आत्ममात्रेण) शुद्ध आत्मस्वरूपसे (तिष्ठेत्) स्थित होय (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ९७५ ॥

भावार्थ-मैं चैतन्यस्वरूप हूँ, मैं परमात्मा हूँ, मैं गुणहीन और ब्रह्मादिकोंसे भी श्रेष्ठ हूँ, ऐसी भावना करके जो शुद्ध आत्मस्वरूपसे स्थित होता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ९७५ ॥

देहत्रयातिरिक्तोऽहं शुद्धचैतन्यमस्म्यहम् ।
ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (देहत्रयातिरिक्तः) स्थूल सूक्ष्म और कारणशरीरसे पृथक् (अहम्) मैं (शुद्धचैतन्यम्) शुद्ध चैतन्य (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (यस्य) जिसका (अन्तः) अन्तःकरण है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ९७६ ॥

भावार्थ-मैं स्थूल सूक्ष्म और कारणशरीरसे जुदा हूँ, मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, जिसके चित्तकी ऐसी भावना है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ९७६

यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः ।
परमानन्दपूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिसका (देहादिकम्) देह आदि (न) नहीं (अस्ति) है (यस्य) जिसका [अहम्] मैं (ब्रह्म) ब्रह्म हूँ (इति) ऐसा (निश्चयः) निश्चय है (यः) जो (परमानन्दपूर्णः) परम आनन्दपूर्ण है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहा जाता है ॥ ९७७ ॥

भावार्थ-जिसका देह इन्द्रिय आदिमें अभिमान नहीं है, जिसने अपने ब्रह्मरूप होनेका निश्चय करलिया है और जो परमसुखसे परिपूर्ण है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ९७७ ॥

अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मेति निश्चयः ।
चिदहं चिदहञ्चेति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९७८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म (अस्मि) हूँ (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म (अस्मि) हूँ (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म हूँ [यस्य] जिसका (इति) ऐसा (निश्चयः) निश्चय होता है (अहम्) मैं (चित्) चेतन हूँ (अहम्) मैं (चित्) ज्ञानस्वरूप हूँ (इति) ऐसा [यस्य, निश्चयः भवति] जिसका निश्चय होता है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (उच्यते) कहाजाता है ॥ ६७८ ॥

भावार्थ—मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, जिसको ऐसा निश्चय होगया है वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

जीवन्मुक्तिपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते।
विशत्यदेहमुक्तित्वं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥ ६७९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जीवन्मुक्तिपदम्) जीवन्मुक्त अवस्थाको (त्यक्त्वा) त्यागकर (स्वदेहे) अपने शरीरके (कालसात्कृते) कालके वशीभूत होनेपर [ज्ञानी] ज्ञानवान् (पवनः) पवन (अस्पन्दतां, इव) स्थिरताको जैसे (अदेहमुक्तित्वम्) विदेहमुक्तिपदमें (विशति) प्रवेश करता है ॥ ६७९ ॥

भावार्थ-जब इस ज्ञानीका शरीर कालकवलित होजाता और यह जीवन्मुक्ति अवस्थाको छोड़देता है उस समय जैसे वायु स्थिर होजाय इसप्रकार विदेहमुक्त पदमें प्रवेश करता है ॥ ६७९ ॥

ततस्तत्संबभूवासौ यद् गिरामप्यगोचरम्।
यत् शून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदाञ्च यत् ॥ ६८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तदनन्तर (यत्) जो (गिरां, अपि) वाणियों का भी (अगोचरम्) अविषय है (यत्) जो (शून्यवादिनाम्) शून्यवादियों का (शून्यम्) शून्य है (च) और (यत्) जो (ब्रह्मविदाम्) ब्रह्मज्ञानियोंका (ब्रह्म) ब्रह्म है (असौ) यह (तत्) वह (संबभूव) होगया ॥ ६८० ॥

भावार्थ-तदनन्तर वह योगी जो वाणियोंका अगोचर है, जो शून्यवादियों का शून्य है और जो ब्रह्मवादियोंका ब्रह्म है, उस ही ब्रह्मस्वरूपको पाजाता है ६८०,

विज्ञानं विज्ञानविदां मलानाञ्च मलात्मकम्।
पुरुषः सांख्यदृष्टीनामीश्वरो योगवादिनाम् ॥ ६८१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शिवः शैवागमस्थानां कालः कालैकवादिनाम् ।
यत्सर्वशास्त्रसिद्धान्तं यत्सर्वहृदयानुगम् ॥
यत्सर्वं सर्वगं वस्तु तत् तत्त्वं तदसौ स्थितः ॥ ९८२ ॥

अन्वय और पदार्थ -(यत्) जो (विज्ञानविदाम्) विज्ञानवेत्ताओंका (विज्ञानम्) विज्ञान है (च) और (मलानाम्) मलिन चित्तवालोंका (मलम्) मलस्वरूप है (सांख्यदृष्टीनाम्) सांख्यज्ञानियोंका (पुरुषः) पुरुष है (योगवादिनाम्) योगियोंका (ईश्वरः) ईश्वर है (शैवागमस्थानाम्) शैवशास्त्र पर श्रद्धा रखनेवालोंका (शिवः) शिव है (कालैकवादिनाम्) एक कालको ही माननेवालोंका (कालः) काल है (यत्) जो (सर्वशास्त्रसिद्धान्तम्) सब शास्त्रों का सिद्धान्त है (यत्) जो (सर्वहृदयानुगम्) सबके हृदयोंके अनुकूल है (यत्) जो (सर्वम्) सर्वरूप है (सर्वगम्) सर्वत्र विराजमान (वस्तु) पदार्थ है (तत्) वह (तत्त्वम्) यथार्थ वस्तु है (असौ) यह (तत्) उसरूपसे (स्थितः) स्थित है ॥ ९८१ ॥ ९८२ ॥

भावार्थ—विज्ञानवादी जिसको विज्ञान कहते हैं, मलिनचित्तवाले जिसको मलस्वरूप मानते हैं, सांख्य शास्त्रवाले जिसको पुरुष कहते हैं, योगशास्त्रवाले जिसको ईश्वर कहते हैं, शैवशास्त्रको माननेवाले जिसको शिव कहते हैं, जो कालवादियों का काल है, जो सकल शास्त्रका सिद्धान्त है, जो सबके हृदयोंमें स्थित है, जो सर्वस्वरूप और सर्वत्र विराजमान है, वही यथार्थ वस्तु है, यह योगी विदेहमुक्त अवस्थामें उसके ही रूपमें स्थित होता है ॥ ९८१—९८२ ॥

ब्रह्मैवाहं चिदेवाहमेवं वापि न चिंत्यते ।
चिन्मात्रेणैव यस्तिष्ठेद्विदेहो मुक्त एव सः ॥ ९८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही हूँ (अहम्) मैं (चित्, एव) ज्ञानस्वरूप ही हूँ (एवं, वा, अपि) इसप्रकार भी (न) नहीं (चिन्त्यते) चिन्तवन किया जाता है (यः) जो (चिन्मात्रेण, एव) चैतन्यस्वरूपसे ही (तिष्ठेत्) स्थित होय (सः) वह (विदेहः) देहशून्य (मुक्तः, एव) मुक्त ही है ॥ ९८३ ॥

भावार्थ-मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, जो ऐसा भी चिन्तवन नहीं करता और जो केवल चैतन्यरूपसे स्थित रहता है वह ही विदेहमुक्त है ॥ ९८३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यस्य प्रपञ्चभानं ब्रह्माकारमपीह न ।
अतीतातीतभावो यो विदेहो मुक्त एव सः ॥ ६८४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इह) इस संसारमें (यस्य) जिसको (प्रपञ्च-भानम्) जगत्के विषयका ज्ञान (न) नहीं है (ब्रह्माकारं, अपि) ब्रह्माकार-ज्ञान भी (न) नहीं है (यः) जो (अतीतातीतभावः) धर्म वा संस्कारसे रहित है (सः) वह (विदेहः) देहरहित (मुक्तः, एव) मुक्त ही है ॥ ६८४ ॥

भावार्थ-जिसको संसारके विषयका ज्ञान नहीं है, जिसको ब्रह्माकार बोध भी नहीं है, जिसके धर्म और संस्कार विलीन होगये हैं वह ही विदेहमुक्त है ६८४

चित्तवृत्तेरतीतो यश्चित्तवृत्त्यावभासकः ।
चित्तवृत्तिविहीनो यो विदेहो मुक्त एव सः ॥ ९८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (चित्तवृत्तेः) चित्तकी वृत्तिके (अतीतः) पार है (यः) जो (चित्तवृत्त्या) चित्तकी वृत्तिके द्वारा (अवभासकः)प्रकाशक है (यः) जो (चित्तवृत्तिविहीनः) चित्तकी वृत्तिसे रहित है (सः) वह (विदेहः) देहशून्य (मुक्तः, एव) मुक्त ही है ॥ ६८५ ॥

भावार्थ-जो चित्तकी वृत्तिके पार है, जो चित्तकी वृत्तिके द्वारा प्रकाश करता है अथवा चित्तकी वृत्तिका प्रकाशक है और जो चित्तकी वृत्तिसे विहीन है वह ही विदेहमुक्त है ॥ ६८५ ॥

जीवात्मेति परात्मेति सर्वचिन्ताविवर्जितः ।
सर्वसंकल्पहीनात्मा विदेहो मुक्त एव सः ॥ ६८६ ॥

अन्वय और पदार्थ-[यः] जो (जीवात्मा, इति) जीवात्मा है इसप्रकार की (परात्मा, इति) परमात्मा है इसप्रकारकी (सर्वचिन्ताविवर्जितः) सकल चिन्ताओंसे रहित (सर्वसंकल्पहीनात्मा) सकल-संकल्प-शून्यस्वरूप है (सः,एव) वह ही (विदेहः) देहरहित (मुक्तः) मुक्त है ॥ ६८६ ॥

भावार्थ-यह जीवात्मा है, यह परमात्मा है, ऐसी चिन्तासे जो शून्य है, जिस के चित्तमें कोई संकल्प उठता ही नहीं वही विदेहमुक्त है ॥ ६८६ ॥

ओंकारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः ।
अवस्थात्रयहीनात्मा विदेहो मुक्त एव सः ॥ ६८७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्वय और पदार्थ-[यः] जो (ओंकारवाच्यहीनात्मा) ॐकारका वाच्य नहीं है (सर्ववाच्यविवर्जितः) सकल पदार्थोंके वाच्यसे रहित है (अवस्थात्रयहीनात्मा) तीनों अवस्थाओंसे अतीत है (सः, एव) वह ही (विदेहः) देहरहित (मुक्तः) मुक्त है ॥ ६८७ ॥

भावार्थ-जो प्रणवका वाच्य नहीं है, सकल पदार्थोंके वाच्यसे रहित है और जो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंके पार है, वह ही विदेहमुक्त है॥६८७॥

अहिनिर्ल्वयनी सर्पनिर्मोको जीववर्जितः ।
वल्मीके पतितस्तिष्ठेत् तं सर्पो नाभिमन्यते ॥ ६८८ ॥
एवं स्थूलञ्च सूक्ष्मञ्च शरीरं नाभिमन्यते।
प्रत्यग्ज्ञानशिखिध्वस्ते मिथ्याज्ञाने सहेतुके ॥ ६८६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहिनिर्ल्वयनीसर्पनिर्मोकः) साँपकी छोडी हुई कैंचुली (वल्मीके) वमई पर (पतितः, तिष्ठेत्) पड़ी रहती है (तम्) उसको (सर्पः) साँप (न) नहीं (अभिमन्यते) अपनी करके मानता है (एवम्) ऐसे ही (सहेतुके) कारणसहित (मिथ्याज्ञाने) मिथ्याज्ञानके (प्रत्यग्ज्ञानशिखिध्वस्ते) आत्मज्ञानरूप अग्निसे भस्म होजाने पर (स्थूलम्) स्थूल (च) और (सूक्ष्मम्, च) सूक्ष्म भी (शरीरम्) शरीरको (न, अभिमन्यते) अपना नहीं मानता है ॥ ६८८ ॥ ६८६ ॥

भावार्थ-जैसे साँपकी कैंचुली छोड़ देने पर जीवहीन दशामें वमई पर पड़ी रहती है, साँप उसको अपनी मानकर अभिमान नहीं करता, ऐसे ही आत्मज्ञानरूप अग्निसे जब अविद्यारूप कारणसहित मिथ्याज्ञान भस्म होजाता है उस समय ज्ञानी स्थूल और सूक्ष्म शरीरमें अभिमान नहीं करता है ॥६८८॥६८६॥

नेति नेतीत्यरूपत्वादशरीरो भवत्ययम् ।
विश्वश्च तैजसश्चैव प्राज्ञश्चेति च ते त्रयम् ॥ ६६० ॥
विराड् हिरण्यगर्भश्च ईश्वरश्चेति ते त्रयम् ।
ब्रह्माण्डं चैव पिण्डाण्डं लोका भूरादयः क्रमात् ॥ ६६१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वस्वोपाधिलयादेव लीयन्ते प्रत्यगात्मनि ।
तूष्णीमेव ततस्तूष्णीं तूष्णीं सत्यं न संशयः ॥ ६६२ ॥

अन्वय और पादार्थ-(अयम्) यह (न-इति, न-इति) यह आत्मा नहीं है, यह आत्मा नहीं है (इति) इस प्रकार (अरूपत्वात्) रूपहीन होनेसे (अशरीरः) शरीररहित (भवति) होता है (विश्वः, च) देवता मनुष्य आदि भी (तैजसः, च) व्यष्टि सूक्ष्म शरीरोपहित चैतन्य भी (प्राज्ञः, च, एव) और जीव भी (एते) ये (ते) वे (त्रयम्) तीनों (विराट्) व्यष्टि स्थूल शरीरका अभिमानी (च) और (हिरण्यगर्भः) हिरण्यगर्भ (च) और (ईश्वरः) परमेश्वर (इति) इसप्रकार (ते) वे (त्रयम्) तीन (ब्रह्माण्डम्) ब्रह्माण्ड (च) और (पिण्डाण्डं, एव) पिण्डाण्ड भी (भूरादयः) भू आदि (लोकाः) लोक (क्रमात्) क्रमसे (स्वस्वोपाधिविलयात्, एव) अपनी २ उपाधिका लय होनेसे ही (प्रत्यगात्मनि) परमात्मामें (लीयन्ते) लीन होजाते हैं (ततः) तदनन्तर (तूष्णीम्) मौन (तूष्णीम्) मौन (तूष्णीं, एव) मौन ही [भवति] होता है (किञ्चन) कुछ (सत्यम्) सत्य (न) नहीं होता है ॥ ६६० — ६६२ ॥

भावार्थ-यह आत्मा नहीं है, यह आत्मा नहीं है, इसप्रकार ज्ञानी शरीर आदिके अभिमानसे शून्य होजाता है। विश्व, तैजस, प्राज्ञ ये तीन, विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर ये तीन तथा ब्रह्माण्ड, पिण्डाण्ड और भू आदि लोक ये अपनी २ उपाधियोंका लय होजानेके कारण प्रत्यगात्मामें लीन होजाते हैं तदनन्तर मौन होजाता है, क्योंकि—उस समय प्रत्यगात्माके सिवाय और कुछ सत्य नहीं प्रतीत होता है ॥ ६६० — ६६२ ॥

कालभेदो वस्तुभेदो देशभेदः स्वभेदकः ।
किञ्चिद्भेदो न तस्यास्ति किञ्चिद्वापि न विद्यते ॥ ६६३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) उसका (कालभेदः) कालके साथ भेद (वस्तुभेदः) वस्तुके साथ भेद (देशभेदः) देशके साथ भेद (स्वभेदकः) अपना भेदक (किञ्चिद्भेदः) कुछ भी भेद (न) नहीं (अस्ति) है (वा) या (किञ्चित्, अपि) कुछ भी (न) नहीं (विद्यते) है ॥ ६६३ ॥

भावार्थ—उस विदेहमुक्त पुरुषका काल, वस्तु, देश वा आत्माके साथ भेद करानेवाला कुछ नहीं होता है तथा और किसी प्रकारका भी भेद नहीं होता है ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जीवेश्वरेति वाक्ये च वेदशास्त्रेष्वहं त्विति ।
इदं चैतन्यमेवेत्यहं चैतन्यमित्यपि ॥ ६६४ ॥
इति निश्चयशून्यो यो विदेहो मुक्त एव सः ।
ब्रह्मैव विद्यते साक्षाद् वस्तुतोऽवस्तुतोऽपि च ॥ ६६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (वेदशास्त्रेषु) वेद और शास्त्रोंमें (जीवेश्वरेतिवाक्ये च) जीव ईश्वर ऐसे वाक्यमें भी (इति) इस प्रकार (इदम्) यह (चैतन्यं, एव) चैतन्य ही हूँ (अहम्) मैं (चैतन्यम्, इत्यपि) चैतन्य भी (अहम्) मैं हूँ (यः) जो (इति) ऐसे (निश्चयशून्यः) निश्चयसे शून्य है (स, एव) वह ही (विदेहः) देहशून्य (मुक्तः) मुक्त है (वस्तुतः) वस्तुरूपसे भी (साक्षात्) प्रत्यक्ष (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (विद्यते) है ॥ ६६४ ॥ ६६५ ॥

भावार्थ—मैं वेद और शास्त्रमें जीव और ईश्वरका निरूपण करनेवाले वाक्य में चैतन्यस्वरूप हूँ, चैतन्य भी मेरा ही स्वरूप है, जो ऐसे निश्चयसे शून्य है वही विदेहमुक्त है, वस्तुतः अथवा अवस्तुतः वह साक्षात् ब्रह्मस्वरूपमें स्थित है ॥ ६६४ ॥ ६६५ ॥

तद् विद्याविषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखात्मकम् ।
शान्तश्च तदतीतञ्च परं ब्रह्म तदुच्यते ६६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तद्) वह (सत्यज्ञानसुखात्मकम्) सत्य ज्ञान आनन्द स्वरूप (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्याविषयम्) ज्ञानका विषय (शान्तम्) शान्त (च) और (तदतीतं, च) उसके अतीत भी है (तत्) वह (परं, ब्रह्म) परब्रह्म (उच्यते) कहाजाता है ॥ ६६६ ॥

भावार्थ-सत्य-ज्ञान-आनन्दस्वरूप ब्रह्म विद्याका विषय है परब्रह्म शान्त है, इस अवस्थामें वह अतीत कहलाता है ॥ ६६६ ॥

सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापन्हव एव हि ।
न विद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मैव तद्विना ॥ ६६७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अध्यात्मशास्त्राणाम्) आत्माका वर्णन करनेवाले शास्त्रोंका (हि) निश्चय (सर्वापन्हवः, एव) सकल पदार्थोंका अपने २ कारण में लय ही (सिद्धान्तः) सिद्धान्त है (इह) इस संसारमें (शान्तम्) शान्तरूप

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

(ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही है (तद्विना) उसके विना (अविद्या) अविद्या (न) नहीं (माया) माया (नो) नहीं (अस्ति) है ॥ ९९७ ॥

भावार्थ-सकल पदार्थोंका अपन्हव (अपने कारणमें लय करना) ही सकल अध्यात्मशास्त्रोंका सिद्धान्त है, शान्त अद्वितीय ब्रह्मके सिवाय अविद्या कुछ भी नहीं है ॥ ९९७ ॥

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ।
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माऽप्येति सनातनम् ॥ ९९८ ॥

अन्वय और पदार्थ-[ज्ञानी] ज्ञानवान् (स्वेषु) अपने (प्रियेषु) प्रिय पदार्थोंमें (सुकृतम्) पुण्यको (च) और (अप्रियेषु) अप्रिय पदार्थोंमें (दुष्कृतम्) पापको (विसृज्य) छोड़कर (ध्यानयोगेन) ध्यानयोगके द्वारा (सनातनम्) नित्य (ब्रह्म) ब्रह्मको (अप्येति) प्राप्त होता ॥ ९९८ ॥

भावार्थ—ज्ञानी प्रिय पदार्थोंमें पुण्यको और अप्रिय पदार्थोंमें पापको छोड़कर ध्यानयोगके द्वारा सनातन ब्रह्मको पाजाता है ॥ ९९८ ॥

यावद्यावच्च सद्बुद्धे स्वयं सन्त्यज्यतेऽखिलम् ।
तावत्तावत्परानन्दः परमात्मैव शिष्यते ॥ ९९९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सद्बुद्धे) हे श्रेष्ठबुद्धि वाले (यावत् यावत्) जितना जितना करके (अखिलम्) सब (सन्त्यज्यते) छूटता जाता है (तावत् तावत्) उतना २ (परानन्दः) परम आनन्दस्वरूप (परमात्मा, एव) परमात्मा ही (शिष्यते) शेष रहता है ॥ ९९९ ॥

भावार्थ-हे बुद्धिमान् शिष्य ! इस सकल प्रपञ्चमेंसे जितने २ भागका त्याग होता जाता है, उतना २ ही परमानन्दस्वरूप परब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है ॥ ९९९ ॥

यत्र यत्र मृतो ज्ञानी परमाक्षरवित्सदा ।
परे ब्रह्मणि लीयेत न तस्योत्क्रान्तिरिष्यते ॥ १००० ॥

अन्वय और पदार्थ-(परमाक्षरवित्) परब्रह्मका ज्ञाता (ज्ञानी) ज्ञानवान (यत्र यत्र) जहाँ जहाँ (मृतः) मरणको प्राप्त [भवेत्] होगा (परे ब्रह्मणि) परब्रह्ममें (लीयेत) लीन होजायगा (तस्य) उसका (उत्क्रान्तिः) उत्क्रमण (न) नहीं (इष्यते) इच्छा कियाजाता है ॥ १००० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—परब्रह्मका ज्ञाता पुरुष चाहे कहीं भी मरे, सदा परब्रह्ममें ही लीन होता है, उसका उत्क्रमण (कर्मफल भोगनेको लोकान्तरमें जाना) नहीं मानागया है ॥ १००० ॥

यद्यत्स्वाभिमतं वस्तु तत्त्यजन् मोक्षमश्नुते ।
असंकल्पेन शस्त्रेण छिन्नं चित्तमिदं यदा ॥ १००१ ॥
सर्वं सर्वगतं शान्तं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं शिष्यस्तु छिन्नसंशयः ॥ १००२ ॥
ज्ञातज्ञेयः संप्रणम्य सद्गुरोश्चरणाम्बुजम् ।
स तेन समनुज्ञातो ययौ निर्मुक्तबन्धनः ॥ १००३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत् यत्) जो जो (स्वाभिमतम्) अपनेको प्यारा (वस्तु) पदार्थ [भवेत्] हो (तत्) उसको (त्यजन्) त्यागता हुआ (मोक्षम्) मोक्षको (अश्नुते) पाता है (यदा) जब (असङ्कल्पेन) सङ्कल्पशून्यतारूप (शस्त्रेण) शस्त्रके द्वारा (इदम्) यह (चित्तम्) मन (छिन्नम्) नष्ट [भवति] होता है (तदा) तब (सर्वम्) सर्वरूप (सर्वगतम्) सर्वगत (शान्तम्) शान्त (ब्रह्म) ब्रह्म (सम्पद्यते) होजाता है (शिष्यः) शिष्य (इति) इसप्रकार (गुरोः) गुरुके (वाक्यम्) वाक्यको (श्रुत्वा, तु) सुन कर तो (छिन्नसंशयः) कटगया है सन्देह जिसका ऐसा [अभूत्] होगया (ज्ञातज्ञेयः) जान लिया है जानने योग्य वस्तुको जिसने ऐसा (सः) वह (सद्गुरोः) श्रेष्ठ गुरुके (चरणाम्बुजम्) चरण कमलको (सम्प्रणम्य) भले प्रकार प्रणाम करके (निर्मुक्तबन्धनः) छूटगया है बन्धन जिसका ऐसा [सन्] होता हुआ (ययौ) चला गया ॥ १०१-१०३ ॥

भावार्थ—ज्ञानी अपनेको प्रिय लगनेवाली वस्तुको त्यागकर मुक्ति पाजाता है जब संकल्पशून्यतारूप शस्त्रके द्वारा यह चित्त छिन्न २ होकर नष्ट होजाता है उस समय ज्ञानी सर्वात्मक सर्वव्यापी शान्त ब्रह्म होजाता है, शिष्य गुरुकी इस बातको सुनकर निःसन्देह होगया और जानने योग्य विषयको जानकर गुरुकी आज्ञा लेता हुआ उनके चरणकमलको प्रणाम करके बन्धनशून्य होगया ॥ १००१-१००३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गुरुरेष सदानन्दसिन्धौ निर्मग्नमानसः ।
पावयन् वसुधां सर्वां विचचार निरुत्तरः ॥ १००४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(एषः) यह (गुरुः) गुरु (सदानन्दसिन्धौ) सर्वदा आनन्दसमुद्रमें (निर्मग्नमानसः) मग्न किया है चित्तको जिसने ऐसा (सर्वाम्) सब (वसुधाम्) पृथिवीको (पावयन्) पवित्र करता हुआ (निरुत्तरः) मौनभावसे (विचचार) विचरता हुआ ॥ १००४ ॥

भावार्थ—गुरुदेव परमानन्द समुद्रमें निमग्नचित्त होकर सकल पृथिवीको पवित्र करते हुए मौन धारण कर स्वच्छन्दरूपसे विचरने लगे ॥ १००४ ॥

इत्याचार्यस्य शिष्यस्य संवादेनात्मलक्षणम् ।
निरूपितं मुमुक्षूणां सुखबोधोपपत्तये ॥ १००५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इति) इसप्रकार (आचार्यस्य) गुरुके [च] और (शिष्यस्य) शिष्यके (सम्वादेन) संवादके द्वारा (मुमुक्षूणाम्) मोक्षाभिलाषियोंके (सुखबोधोपपत्तये) सुखपूर्वक ज्ञान पानेके लिये (आत्मलक्षणम्) आत्माका लक्षण (निरूपितम्) वर्णन करदिया ॥ १००५ ॥

भावार्थ—इसप्रकार आचार्य और शिष्यके संवादके द्वारा मुमुक्षु पुरुषोंको अनायास ज्ञानप्राप्ति होनेके लिये आत्मस्वरूपका वर्णन करदिया ॥ १००५ ॥

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रहनामकः ।
ग्रन्थोऽयं हृदयग्रन्थिविच्छित्त्यै रचितः सताम् ॥ १००६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयम्) यह (सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रहनामकः) सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह नामवाला (ग्रन्थः) ग्रन्थ (सताम्) सत्पुरुषोंकी (हृदयग्रन्थिविच्छित्त्यै) हृदयकी गाँठको नष्ट करनेके लिये (रचितः) रचागया है ॥ १००६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावार्थ—साधु पुरुषोंके हृदयमेंकी काम-क्रोधादिरूप ग्रन्थियोंका नाश करने लिये यह "सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह" नामका ग्रन्थ रचा गया है ॥ १००६ ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ सर्ववेदान्तसिद्धांतसारसंग्रहः मुरादाबादनिवासि—गौड़वंश्यभारद्वाजगोत्र-पंडित-भोलानाथात्मज-रामस्वरूपशर्मकृत-सान्वय-पदार्थभाषानुवादसहितः समाप्तः
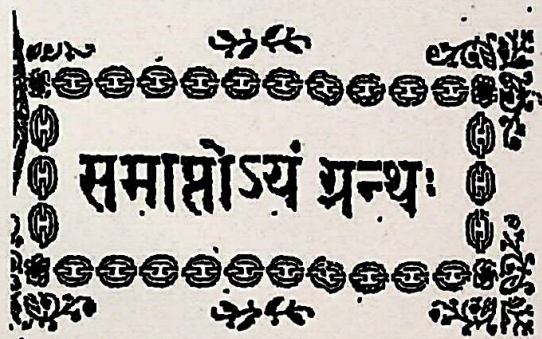
मिलने का पता—
सनातनधर्म छापाखाना,
मुरादाबाद

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri